में अन्तर घेरे के विस्तार का है। परिवार की परिधि में केवल सम्बन्धियों को ही लिया जाता है और राष्ट्र की परिधि में कोटि-कोटि देशवासियों को। दोनों में समानता यह है कि घेरे के भीतर रहने वालों की संयुक्त सम्पत्ति होती है और उसका समान उपभोग किया जाता है।

समाजवादी ढाँचे के वे समर्थक, जो पिता-पुत्र इकट्ठे नहीं रह सकते अथवा जिनमें पति-पत्नी अपनी-अपनी पृथक्-पृथक सम्पत्ति के भोक्ता हैं, समाजवादी ढाँचे के अर्थ क्या समझते हैं, जानना मनोरंजक होगा। जहाँ बड़ी आय वाला पुत्र अपने पिता के साथ उस आय का भोग करना नहीं चाहता अथवा जहाँ धनी माता-पिता की लड़की अपनी सम्पत्ति अपने निर्धन पति से पृथक् रखना चाहती है, वहाँ कोई अपने पड़ोसी से अथवा नगरवासी से कैसे अपनी योग्यता से उत्पन्न आय बाँटकर प्रयोग कर सकता है। 'सोशिलिस्टिक पैटर्न ऑफ सोसायटी, का आह्वान करने वालों के घरेलू जीवन उनके उद्देश्यों पर प्रकाश डालने वाले होंगे।

लेखक का यह मत है कि राष्ट्र के समाजवादी ढाँचे मे सयुक्त-परिवार ईंटों का कार्य करेंगे। यह प्रथा वह भावना उत्पन्न करेगी जिससे राष्ट्र के उत्पादक अग व्यय करने वाले अगों को खाने-पहिरने के लिए देने के लिए स्वत. तैयार हो जावेंगे। उनसे ऐसा कराने के लिए दण्ड विधान अथवा जेलखानों तथा कन्सेन्ट्रेशन कैम्पों की आवश्यकता नहीं होगी।

सयुक्त-परिवार और राष्ट्र के समाजवादी ढाँचे को चलाने के लिए प्रजातन्त्रवादी प्रपच उपयुक्त नहीं हो सकता। प्रजातन्त्र राज्य में सगठित दलों का होना अत्यावश्यक है। परिवार जैसी सस्था में यदि ससदीय दलों की भाँति दल बन जायें तो परिवार उन्नति कर के स्थान कलह के केन्द्र बन जायेंगे। परिवार का पुरखा कोई अनुभवी, बुद्धिमान, वृद्ध, सन्तुलित विचार रखने वाला व्यक्ति हो

आवश्यक है। इस प्रकार-यदि राष्ट्र का निर्माण समाजवादी ढाँचे पर बनाना है तो इसके सञ्चालन के लिए पार्टियों के टिकट पर निर्वाचित सरकार, उपयुक्त नहीं हो सकती। पार्टी-राज्य में देश की सम्पत्ति राष्ट्र की सम्पत्ति न रहकर एक पार्टी की सम्पत्ति बन जायेगी और सत्तारूढ़ पार्टी, इस भय से कि वह कहीं आगामी निर्वाचन में पदच्युत न हो जाये, अपने काल में देश की सम्पत्ति को अधिक-से-अधिक लूटने का यत्न करेगी अथवा भोग करने में लगी रहेगी।

इसी प्रकार संयुक्त-परिवार और समाजवादी ढाँचे वाले राष्ट्र की सफलता के लिए यह भी आवश्यक है कि इसकी परिधि के भीतर आने और इससे बाहर जाने की स्वतन्त्रता हो। इन परिधियों के भीतर किसी को बलपूर्वक बाँधकर रखने से तो लाभ के स्थान हानि की ही संभावना है।

संयुक्त-परिवार के सदस्यों को बाँधकर रखने के लिए परस्पर स्नेह की भावना कार्य करती है। इसी प्रकार राष्ट्र को एक रखने के लिए राष्ट्रीय भावना अत्यावश्यक है।

यह भी लेखक का मत है कि ऐसे परिवार अथवा ऐसे राष्ट्र के सञ्चालन के लिए आस्तिक पुरुष ही हो सकते हैं। लेखक का आस्तिकवाद से अर्थ, सातवें आसमान पर बैठे, आठ-दस हाथ तथा आँखों वाले, शेषनाग की शैया पर लेटे हुए इत्यादि किसी सबके पिता पालनकर्ता में विश्वास से नहीं है। 'गुण्ठन' में परिवार को नियन्त्रण में रखने वाले भगवतस्वरूप को लेखक ने किसी देवी-देवता का उपासक नहीं बनाया। इस पर भी उसको एक आस्तिक का रूप दिया है। वह किसी किये हुए कर्म के फल के मिलने को मानता है। वह मानता है कि कोई आत्मा नाम की वस्तु है, जो मनुष्य के एक जन्म को दूसरे जन्म से बाँधती है।

हिन्दू-समाज ने तो संयुक्त-परिवार को सफल बनाकर दिखा

दिया था। देश में अनेकों परिवार, इस प्रकार फलते-फूलते रहे हैं। यदि वर्तमान काल में यह चल नहीं रहा तो इसमें मुख्य कारण युरोपीय भौतिकवाद का इस समाज में घुस आना है। इस भौतिकवाद की उपस्थिति में क्या राष्ट्र में भी समाजवादी ढाँचा लाया जा सकेगा और कुछ काल तक रखा जा सकेगा, विश्वास नहीं आता।

'गुण्ठन' उपन्यास के रूप में कितना सफल रहा है, पाठकों के देखने और जानने की बात है। इतना बताना उचित ही है कि यद्यपि अब भी कई हिन्दू-परिवार देश में चल रहे हैं, तो भी इस पुस्तक में लिखे पात्र, स्थान और घटनायें काल्पनिक ही हैं।

—गुरुदत्त

पूर्वार्द्ध

एक

किसी माता-पिता के लिए जीवन की सब से अधिक आनन्दप्रद घड़ी वह होती है, जब वे अपनी सन्तान को साफ, सुथरी, स्वस्थ, सुखी और सब प्रकार से सम्मानित देखते हैं। एक सम्राट की भाँति, जो प्रजा को धन-धान्य से सम्पन्न, सुख-सुविधा से युक्त और निर्भय देखता है, वे भी अपनी सन्तान को वैसे ही देख सुख अनुभव करते हैं। वे जानते हैं कि यह उनके जीवन-भर के परिश्रम का फल है। ये हैं, जो वे निर्माण करने में सफल हुए हैं। ये सुन्दर हैं, सबल है, स्वस्थ हैं, सुखी हैं और लोक में सम्मानित हैं, ऐसा विचार ही उन को आनन्दित करने में पर्याप्त होता है।

भगवतस्वरूप के मन की यही अवस्था होती थी, जब वह अपने काम से सायंकाल घर आता और सब बाल-बच्चों को अपने चारों ओर एकत्रित कर उनसे बातचीत, हँसी-ठट्ठा और विनोद करता था। यह उसने एक नियम-सा बना लिया था कि रात को वह परिवार के साथ

बैठकर भोजन करता और इस प्रकार, जहाँ उसका चित्त प्रसन्न होता, वहाँ बच्चे इतने समय पिता की सगत में रहते ।

गृहणी सुशीला देवी अपने पति के सुख-दुःख की भागीदार थी। वह निश्चित समय पर भोजन तैयार कर, अपने पति की न केवल स्वय प्रतीक्षा करती, प्रत्युत सब बच्चों को साफ-सुथरे कपड़े पहिना, इस अवसर के लिए तैयार रखती ।

भगवतस्वरूप अब अटतालीस वर्ष की आयु का था और यह कार्यक्रम तेईस वर्षों से, जब से उसका विवाह हुआ था चल रहा था। उस समय भगवतस्वरूप के माता-पिता जीवित थे। आरम्भ में तो उनको अपने लडके का यह कार्य कुछ लज्जा-हीन कृत्य प्रतीत हुआ था। उसकी मा ने कहा था —

"क्या कहते हो भगवती, बहू को? उसको लज्जा लगती है, इस प्रकार तुम्हारे लिये सज-धज कर बैठने पर।"

पुत्र हँस पडा। उसने कहा, "लज्जा की कौन बात है मा! उसके पास अच्छे-अच्छे कपड़े हैं। वे पहिनने के लिये ही तो हैं। फिर जब मैं आता हूँ तो उससे अच्छा अवसर उनके पहिनने का और कब हो सकता है?"

"क्या लाभ होगा इससे? कभी मुहल्ले-टोले में जाना हो, किसी के घर खुशी गमी में जाना हो अथवा मा के घर जाना हो, तब तो कपड़े पहिनने ही होते हैं। इस समय उनको पहिनकर खराब करने से क्या लाभ है?"

"यह बात तो मुझ को समझ नहीं आई, मा! कपड़े लाकर दूँ मैं और पहिन कर वह दिखाये मुहल्ले-टोले मे। नहीं मा! यह नहीं होगा। मा के घर जायेगी तो वे कपड़े पहिनकर जायेगी, जो इसकी मा ने दिये हैं। उनको यह सँभालकर रख छोड़े। मै तो इसको उन कपडों में देखना चाहता हूँ, जो मैंने लाकर दिये हैं और उनमें भी जो सबसे बढ़िया हैं।"

भगवतस्वरूप का पिता साधु-स्वभाव का व्यक्ति था। वह घर की वातों में हस्तक्षेप नहीं करता था और जब भगवतस्वरूप की मा उत्तर नहीं दे सकी तो यह प्रथा ही बन गई। जिस समय भगवतस्वरूप काम से आकर कपड़े बदल खाने के लिये आता, तब उसकी स्त्री सुशीला देवी अपने सबसे बढिया कपडो मे और भूषणों से अलंकृत उसके लिए भोजन लाती। कभी-कभी उसकी मा भी उसके समीप आ बैठती और सब भोजन करते। इस समय वे कभी घर के सम्बन्ध की, कभी देश-विदेश की और कभी इतिहास की बाते करते।

एक दिन सुशीला ने, जब वे रात के विश्राम के लिये जाने वाले थे, कहा, "मा जी अभी तक भी आपके इकट्ठे भोजन करने के व्यवहार पर प्रसन्न नहीं हुई।"

"शील!" वह इसी प्रकार अपनी स्त्री को बुलाया करता था, "क्या तुम भी प्रसन्न नहीं हो?"

"मुझ को तो कोई कष्ट नहीं होता। अब तो स्वभाव पड गया है। सायंकाल का भोजन तैयार कर मुख-हाथ धो, कंघी करने बैठ जाती हूँ। ठीक साढे आठ बजे कपडे पहिन तैयार हो जाती हूँ और आपके लिए खाना ले आती हूँ।"

"पर मै तो कष्ट की बात नहीं पूछ रहा। मै तो यह जानना चाहता हूँ कि तुम को मेरे पास आकर बैठने में अप्रसन्नता होती है क्या?"

"जब आप मुझको देखकर सन्तोष अनुभव करते हैं तो मन आनन्द से भर जाता है। भला अप्रसन्न होने की बात इसमें कैसे हो सकती है?"

"तो मा की बात छोडो। वे अब बडी आयु की हो गई हैं। उनको कोई भी नवीन विचार अब सुगमता से समझ नहीं आ सकता।"

इस प्रकार यह प्रथा चली थी और अब उसको तेईस वर्ष हो गये थे। सायंकाल के भोजन का समय घर में एक मेले पर जाने के समान

होता था। भोजन के लिये सब ऐसे तैयार होते थे, जैसे वे किसी के विवाहोत्सव पर जाने वाले हैं।

भगवतस्वरूप की नौकरी विवाह के पूर्व ही लग चुकी थी। उस समय घर में रोटी चौके में ही पीढे पर बैठकर खाई जाती थी। चौका छोटा सा था और एक समय एक व्यक्ति ही वहाँ बैठकर खा सकता था। भोजन के समय के अतिरिक्त यदि कुछ खाना होता था तो हाथ में लेकर बाहर कमरे में खड़े-खड़े ही खाया जा सकता था।

नौकर होने पर पहली बात, जो उसने की वह चौके के बाहर बैठकर रोटी खाने की थी। चौके के बगल मे एक कमरा था, जो रात को सोने के लिए प्रयोग में लाया जाता था। उसने इसको भोजन करने का कमरा बना लिया। बाजार से एक चटाई ले आया और उस पर बैठकर भोजन करने लगा। मा ने कहा, "बेटा! रोटी चौके से बाहर जाते-जाते ठण्डी हो जाती है।"

"आधे मिनट मे क्या ठण्डी होगी माँ?"

"चौके से बाहर खाने में क्या मिलता है तुम को?"

"भीतर जगह बहुत तग है।"

"तो यहाँ कौन बीस प्राणी हैं खाने वाले? एक ही तो हो। तुम्हारे पिता तो प्रात काल सात बजे दुकान पर जाते हैं और रात को दस बजे दुकान से लौटते हैं।"

"पर मा! और प्राणी भी तो आवेंगे।"

"जब आवेंगे तब विचार कर लेंगे।"

"उनके लिये स्थान बनाऊँगा, तभी तो आवेंगे।"

मा हँसकर चुपकर रही। बाहर का कमरा 'डाईनिंग हॉल' बन गया। फिर धीरे-धीरे उसमें उन्नति होने लगी। वह मैट्रिक पास ही था और एक अंग्रेजी फर्म में साधारण क्लर्क की नौकरी पा गया था। पचास रुपये मासिक ही वेतन था, इस कारण मकान में परिवर्तन बहुत धीरे-धीरे हो सके थे। इस पर भी जब उसका विवाह हुआ तब उसके

घर में पीतल के बर्तनों के अतिरिक्त कुछ 'क्रॉकरी' भी आ चुकी थी। इस समय सुशीला देवी आई। भाग्य की बात थी कि उसके आने के साथ ही उसके वेतन में उन्नति भी होने लगी। वह फर्म में अकाउन्टैंट नियुक्त हो गया।

प्रातः नौ बजे उसको काम पर जाना होता था। इस कारण प्रातः-काल का खाना तो बहुत थोडा होता था और जल्दी-जल्दी में खाया जाता था। मध्याह्न का आहार वह कार्यालय में कर लिया करता था। सायकाल का भोजन वह अपने घर पर परिवार मे करने का हठ करता था।

आवश्यकता के अनुसार आय बढती गई और उसके साथ धीरे-धीरे घर का प्रबन्ध सुधरता गया। सुशीला आई और उसके साथ बच्चे भी आने लगे। अब तक पॉच बच्चे हो चुके थे। भगवतस्वरूप के माता-पिता का देहान्त हो चुका था। वे अपनी कमाई का बहुत-सा भाग नकद रुपयों के रूप में छोड गये थे, जिससे भगवतस्वरूप अपने पुराने मकान का नव-निर्माण करा सका था।

भगवतस्वरूप अभी भी उसी फर्म में नौकर था और उसमें अब मैनेजर के रूप में काम करता था। उसको अब छः सौ रुपया वेतन मिलता था। मालिक उसकी ईमानदारी और मेहनत से काम करने पर बहुत प्रसन्न थे और उसको सदैव उन्नति की आशा बनी रहती थी। घर, सब प्रकार से सुखकारक फर्निचर और धन-धान्य से युक्त था।

सबसे बडा लडका विनोद एम० ए० में पढता था। उससे छोटा भूषण इन्टरमीडिएट मे। इससे छोटी तीन लडकियॉ थीं। कान्ता नवमी श्रेणी मे, कला पॉचवीं में और शोभा अभी स्कूल में भर्ती हुई ही थी। बच्चों के अतिरिक्त घर में एक नौकरानी थी। नाम था मेलो। वह घर में सफाई और कपड़े धोने, लोहा करने इत्यादि का काम करती थी। रसोईघर का काम सुशीला स्वय करती थी।

जब से भगवतस्वरूप की नौकरी लगी थी, तब से ही वह अपने

जीवन की सफलता का आधार आय और व्यय के सन्तुलन मे ही समझता था। वह, बहुत विचार के पश्चात् आय का चालीस प्रतिशत भोजन के लिये, पन्द्रह प्रतिशत बच्चो की पढाई और अन्य मिश्रित खर्चों पर, पन्द्रह प्रतिशत कपडो पर, पन्द्रह प्रतिशत जेब-खर्चा, दस प्रतिशत बैंक मे और पॉच प्रतिशत मकान की मरम्मत और सजावट के लिये खर्च करता था। जब वेतन पचास रुपया था, तब भी और अब जब यह छः सौ रुपया था, तब भी वह इसी अनुपात से खर्च चला रहा था। इस प्रकार काम बहुत आनन्दपूर्वक चल रहा था।

परन्तु सब दिन एक समान नहीं चलते। निर्जीव वस्तुओ को आप जहाँ भी उठाकर रखदे, वही रखी रह जावेगी। सजीवो का व्यवहार इस प्रकार चल नहीं सकता। एक नियन्त्रण मे बधा रहना उनके स्वभाव के प्रतिकूल है। कितना भी लाभदायक प्रबन्ध क्यो न हो, एक सजीव, सब काल के लिये, उसको अपना नहीं सकता।

भगवतस्वरूप के परिवार मे भी परिवर्तन आया। जिस स्मृतिकार ने यह नियम बनाया था कि लडकी दूसरे घर मे विवाही जावे, उसने परिवार भग करने का बीजारोपण कर दिया था। यह बीज भगवत-स्वरूप के घर मे भी बोया गया।

विनोद ने एम० ए० पास किया और एक स्थानीय कॉलेज मे प्रोफे-सर लग गया। वह लडको को अर्थशास्त्र पढाता था। हिन्दू समाज मे लडका काम पर लगा कि सगाइयॉ आने लगीं। यही विनोद के साथ होने लगा।

स्त्रियॉ सुशीला के पास आने लगीं, पुरुष भगवतस्वरूप के पास जाने लगे और लडकियो ने विनोद पर सीधे डोरे डालने आरम्भ कर दिये। बात घर की 'कौंसिल' में उपस्थित हुई।

सुशीला ने रात के भोजन के समय बात चला दी। विनोद वार्ता-

लाप मे अपना नाम सुनकर सतर्क हो गया। "मधु की माँ कई दिन से आ रही है। वह विनोद के विषय मे कहती थी।"

"क्या कहती थी?" भगवतस्वरूप ने पूछा।

"कहती थी कि विनोद बहुत अच्छा लडका है और मधु अब सज्ञान हो गई है।"

"हाँ।"

"मधु दसवीं कक्षा पास कर चुकी है और घर के काम-काज में बहुत निपुण है।"

"और इधर लाला सुखदेवराज अपनी लडकी के लिए कह रहे हैं।"

"कौन सुखदेव राज?"

"अकाउन्टैंट जनरल के दफ्तर मे सुपरिन्टैंडेण्ट हैं। पिछले विनोद के जन्म-दिवस पर आये थे और जिस लडकी के विषय में कहते हैं, वह उस दिन उनके साथ थी।"

"ओह, जयन्ति! उसकी माँ भी तो आती रहती है।"

"क्यो विनोद! क्या इच्छा है?"

सायंकाल परिवार के एकत्रित होने से, सबको परस्पर निस्संकोच बात करने का अभ्यास सा हो गया था। इस कारण विनोद ने कह दिया, "पिताजी! प्रोफेसर रैड्डी की लडकी को मै भली भाँति जानता हूँ और वह बहुत अच्छी है।"

इस प्रकार बात समाप्त ही समझी गई। भगवतस्वरूप ने कहा, "विनोद! विवाह तुमने करना है, इस कारण मुख्य सम्मति तुम्हारी ही होगी। इस पर भी कई बातें विचारणीय हैं। उसमें हमारी राय लेनी आवश्यक है।"

"कौनसी बात विचारणीय है, पिताजी?"

"लडकी मद्रासी परिवार मे पली है। वह पंजाबी परिवार को स्वीकार करेगी अथवा नहीं?"

"विवाह होते ही हम पृथक् परिवार की नींव डालेंगे।"

"तब तो मेरे और तुम्हारी माता के विचार करने को बहुत कम रह गया है। केवल एक बात शेष है।"

"क्या, पिताजी?"

"जब तुम दोनों ने इतना कुछ पहले ही निश्चय कर लिया है, तो यह भी तो विचार किया होगा कि एक मास में कितनी बार मिलने आया करोगे?"

"जितनी बार माताजी उसके पास जाया करेंगी।"

"देखो विनोद!" सुशीला ने कुछ उद्विग्न होकर कहा, "तुम अब तेईस वर्ष के हो गये हो और जब से पैदा हुए हो हम नित्य तुमसे मिलते रहते हैं। जब विवाह के पश्चात् इतने ही काल तक तुम हमसे मिल लोगे, तब तुम हमसे बराबरी की बात सोचना।"

"मैं तो उसकी बात कह रहा हूँ, माँ!"

"मैं उससे मिलकर क्या करूँगी? हम तुम्हारी बात कह रहे हैं।"

भगवतस्वरूप हँस पड़ा। उसने कहा, "एक बार इस कमरे में उस आलने पर चिड़िया ने घोंसला बना लिया था। चिड़िया ने अंडे दिये। अंडों में बच्चे हुए। चिड़िया मुख में चोगा ढूँढकर लाती और बच्चों को खिलाती। बच्चे बड़े हो गये। एक दिन जब चिड़ा-चिड़ी बच्चों के लिए खाना ढूँढने गये हुए थे, बच्चे फुर्र कर उड़ गये। वे फिर नहीं लौटे। घोंसला खाली देख चिड़ा चिड़ी विस्मय में देखते रह गए। वे चुर्र-चुर्र कर उनको बुलाते रहे। पश्चात् कुछ काल तक शोक-मुद्रा में खाली घोंसले को देखते रहे और फिर वे भी घोंसला छोड़कर उड़ गये।"

सुशीला इस कथा को सुन मुस्कराई और बोली, "मैं न तो चिड़िया हूँ और न ही विनोद चिड़िया का बच्चा।"

"माँ!" विनोद ने दृढ़ता से कहा, "संसार में ऐसा ही हो रहा है। हम उससे बाहर नहीं हो सकते।"

"तो बात निश्चय हो गई समझ लें?" भगवतस्वरूप ने प्रश्न-भरी

दृष्टि से विनोद की ओर देखकर पूछा।

"मेरे और नलिनी के भीतर तो बात निश्चय हो चुकी है। उसने अपने माता-पिता से बात कहनी है।"

"तो उसको कहो कि वह भी बात कर ले। हमारी ओर से तुमको पूर्ण स्वतन्त्रता है। यदि इस प्रबन्ध में कुछ विघ्न पड़े तो बताना कि हम इसमें क्या सहायता कर सकते हैं।"

चौबीस वर्ष के विवाहित जीवन में सुशीला के लिए यह पहला अवसर था, जब उसकी रुचि के विपरीत बात हो रही थी। एकान्त में सुशीला ने भगवतस्वरूप से विनोद के व्यवहार पर शोक प्रकट किया। इस पर भगवतस्वरूप ने कहा, "ओ, भोली शील! जीवन में सुख उसको मिलना है, जो लचकदार बनकर रहता है और समय के घात-प्रतिघात को ऐसे सहता है, जैसे रबड़ का गेंद।"

"इसको आप सफलता कहते हैं क्या?"

"नहीं, इसको सफलता तो नहीं कहा जा सकता। यह सफलता प्राप्त करने में साधन है। सफलता तो सुख-प्राप्ति है। जैसे एक रबड़ का टुकड़ा दबाने से दब जाता है और दबाव हटाने से पुनः अपने स्वरूप में आ जाता है, वैसे ही एक मनुष्य को बन जाना चाहिए।"

"यह अपने लिए तो ठीक है, परन्तु यदि विनोद को कोई कष्ट हुआ तो फिर मुझको भी दुःख होगा।"

"यदि तुम्हारे भाग्य में दुःख भोगना ही लिखा है तो कैसे टाल सकोगी उसको?"

"आप के कहने का अर्थ तो यह हुआ कि पुरुषार्थ कोई वस्तु नहीं है?"

"मैंने अपने विचार से पुरुषार्थ ही किया है, जो मैंने उसको पूर्ण स्वतन्त्रता दे दी है। इस प्रकार मैं उसको सुखी रखने का यत्न कर रहा हूँ।"

"आपने इस विवाह को रोकने का यत्न क्यों नहीं किया?"

"इसलिए कि मुझको पता नहीं कि यह विवाह उसके लिए दुःख-

दायक होगा । यदि पता होता तो अवश्य रोकता ।"

"मुझको तो इसमे अनिष्ट दिखाई दे रहा है ।"

"और तुमने अपनी नाराजगी प्रकट कर दी है । इससे अधिक और क्या कर सकती हो ?"

विनोद से यह चर्चा रात के भोजन के समय हुई थी । दूसरे बच्चे भी इस वार्तालाप को सुन रहे थे और वे भी इससे प्रभावित हुए थे । भूषण और कान्ता ने इसको सुना था और समझा था । उन्होने इसका अर्थ अपनी अपनी बुद्धि अनुसार लगाया था ।

भूषण इञ्जीनियरिंग कॉलेज मे प्रवेश पाने का यत्न कर रहा था । उसने मुगलपुरा इञ्जीनियरिंग कॉलेज मे प्रार्थना-पत्र भेजा हुआ था । उसको इसमे प्रवेश पा जाने की पूर्ण आशा थी ।

कान्ता मैट्रिक पास कर चुकी थी और माता-पिता से कॉलेज मे प्रवेश लेने की स्वीकृति माग रही थी ।

दोनो के मन मे एक बात समा चुकी थी कि उनके माता-पिता उनकी सम्मति का मान करते हैं । उनका विनोद को यह कहना कि उनकी ओर स उसको विवाह करने की पूर्ण स्वतन्त्रता है, भूषण और कान्ता को बहुत भला प्रतीत हुआ था ।

कान्ता ने कहा, "मैं गवर्नमेण्ट कॉलेज मे प्रवेश-पत्र भरकर दे आई हूँ ।"

"तो प्रवेश पा गई हो ?"

"अभी निर्णय नहीं हुआ । कल 'इन्टरव्यू' होगा । पीछे प्रवेश-स्वीकृति होगी ।"

"तो तुमने निर्णय कर लिया है कि तुम पढोगी ?"

"हाँ पिताजी ! यदि वहाँ प्रवेश न पा सकी तो फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज मे तो अवश्य प्रवेश पाजाऊँगी । वहाँ भी प्रवेश-पत्र भरकर दे आई हूँ ।"

"तुम्हारी उत्कट इच्छा है तो कौन रोक सकता है ? इस पर भी मैं

पूछता हूँ कि पढकर क्या करोगी ?"

"मैं 'लिट्रेचर' पढूँगी। एम० ए० 'इंग्लिश लिट्रेचर' में करूँगी।"

"फिर क्या होगा ?"

"इसको अभी तो बता नहीं सकती। शायद प्रोफेसर बन जाऊँ।"

"अच्छी बात। यह स्मरण रखो कान्ता ! कि जो तुमको खाने-पीने को देता है, उसके भी साधनों की सीमा है।"

"मुझको बहुत कम धन की आवश्यकता पडेगी और मैं जानती हूँ कि इतना तो आप के पास है ही।"

"तुमने मेरी बैंक की पास-बुक देखी है क्या ?"

"वह खुली मेज पर पडी रहती है। हम सबने देखी है।"

"पर तुमने मेरे जीवन का बजट नहीं देखा।"

"वह भी आपने बनाया है क्या ?"

"हाँ।"

"कहाँ रखा है वह ?"

"ढूँढो, वह भी मिल जायगा।"

भूषण मुगलपुरा कॉलेज में प्रवेश पा गया, कान्ता फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज मे भर्ती हो गई और नलिनी से विनोद का विवाह निश्चित हो गया।

एक बात भगवतस्वरूप को पता नहीं थी। प्रोफेसर रैड्डी क्रिश्चियन था। उसके परिवार का रहन-सहन यूरोपियन ढग का था। इण्डियन क्रिश्चियन परिवारो की लडकियों को अपने लिये पति स्वयं ढूँढने पडते हैं। इस कारण उनके माता-पिता लडकियों को इसके योग्य बना देते हैं कि वे अपने जीवन-साथी ढूँढ सकें और जब वे अपनी खोज में सफल हो जाती हैं तो फिर माता-पिता को मीन-मेख निकालने की आवश्यकता नहीं रहती।

जब नलिनी ने अपने माता-पिता को बताया कि विनोद, प्रोफेसर ऑफ इकॉनोमिक्स से उसका विवाह हो रहा है, तो सबने प्रसन्नता प्रकट की। केवल एक समस्या सामने आई कि विवाह किस विधि से होगा। प्रोफेसर रैड्डी रोमन कैथोलिक थे। नलिनी की मा कट्टर विचारों की स्त्री थी। नलिनी स्वय भी माँ मरियम के आशीर्वाद पर बहुत विश्वास रखती थी। इस कारण इसके विषय में तो सब एकमत थे कि विवाह गिरजाघर में होगा। प्रोफेसर साहब विनोद को अपना दामाद बनाने के लिये, उसके ईसाई होने से अधिक उत्सुक थे। कहने लगे, "देखो! विवाह होना अधिक आवश्यक है। उसका ईसाई होना इतना आवश्यक नही। यह काम तो पीछे भी हो जावेगा।"

परन्तु विनोद को गिरजाघर मे जाकर विवाह करने पर राजी करना कठिन नहीं था। भगवतस्वरूप के घर पर अन्य अनेकों विषयो पर बातचीत होनेपर भी धर्म-कर्म तथा मत-मतान्तर की बातें नही होती थी। कभी किसी धार्मिक पर्व पर सुशीला किसी मन्दिर मे चली भी जाती थी तो उस पर कभी भी किसी का ध्यान नही गया था। यह सुशीला की अपनी निज की बात समझी जाती थी। भगवतस्वरूप अपने को हिन्दू मानता था, परन्तु उसने कभी इस बात पर विचार नही किया था कि वह ऐसा क्यो है? अपने मन में वह यह समझता था कि वह एक हिन्दू का पुत्र होने से हिन्दू है। इस प्रकार वह यह भी समझता था कि उसकी सन्तान भी हिन्दू की सन्तान होने से हिन्दू ही होगी। इस कारण विनोद ने जब अपने विवाह की तिथि, स्थान, विधि अपने माता-पिता को बताई तो उनको कुछ विशेष बुरी प्रतीत नही हुई। कुछ प्रचलित रीति से विपरीत जान, उन्होने पूछा, "गिरजाघर मे क्यो?"

"वे ईसाई हैं।"

"कौन, रैड्डी?"

"हाँ।"

"मैंने तो समझा था कि वे हिन्दू हे। हमारे कार्यालय में भी एक

वैंकेटारमण रैड्डी है। वह तिलक लगाता है। मास, अंडा, मछली नहीं खाता। बहुत साफ पवित्र रहता है।"

"पर ये के० जोजफ रैड्डी हैं और उसकी बेटी नलिनी जोजफ है।"

"तो तुम विवाह करोगे ?"

"मैं तो आपको उस दिन का कार्यक्रम बता रहा हूँ। शुक्रवार को सायं पाँच बजे सब गिरजाघर में एकत्रित हो जावेंगे। वहाँ छः बजे विवाह संस्कार समाप्त होगा। वहाँ से हम सब मजंग रोड पर, जहाँ मैंने मकान किराये पर लिया है, जायेंगे। वहाँ दावत होगी और पीछे हम एक सप्ताह के लिये डलहौजी चले जावेंगे। इतने दिन की छुट्टी मैंने ले ली है।"

भगवतस्वरूप इस प्रबन्ध से सन्तुष्ट नहीं था। उसको इस सब कार्यक्रम मे कोई भी बात ऐसी दिखाई नहीं दी, जिसको वह अपने पडोस में देखता रहता था। सुशीला के मन में भी अपने पुत्र के विवाह पर का जो चित्र बना हुआ था, उसमे बाजे थे, बरात थी, औरतों द्वारा सुहागगीत, वेदी, फेरे, सप्तपदी, मिठाइयाँ, पूरी हलुवा इत्यादि बातें थीं, जिनको वह दूसरों के घर, विवाहों पर देख चुकी थी। उसमें मुहल्ले की औरतों का भूषण-वस्त्रों से अलंकृत हो आना, उनका बधाईयाँ देना और नई बहू को शकुन और आशीर्वाद देना था। इस चित्र में गिरजाघर और मजग रोड वाली कोठी में भोज कदापि नहीं था। इससे उसको कुछ ऐसा अनुभव हो रहा था कि किसी दूर के परिचित के घर कोई कार्य हो रहा है और वहाँ उन्होने जाना है।

विनोद ने अपने पिता के नाम से निमन्त्रण-पत्र छपवाकर अपने और माता-पिता के मित्रो और सम्बन्धियो में बँटवा दिये। पहले तो लोग समझ ही नहीं सके कि यह किस का विवाह है और किसने उनको गिरजाघर में निमन्त्रण दिया है। धीरे-धीरे लोग समझे तो चकित रह गये। कई लोग आये और भगवतस्वरूप को भला-बुरा कह गये। स्त्रियाँ सुशीला से लड पड़ीं और कह गई कि वे विवाह पर नहीं आवेंगी।

एक पड़ोसी महाशय ब्रह्मानन्द थे। आर्य समाज में आते-जाते थे। वे आये तो भगवतस्वरूप के स्थान विनोद से बहस करने लगे —

"प्रोफेसर साहब! तो आप ईसाई हो गये हैं?"

"नहीं तो।"

"तो यह ईसाई ढग से विवाह क्यों कर रहे हैं?"

"विवाह मे ईसाई ढग क्या और हिन्दू ढग क्या। विवाह तो विवाह ही है। शेष आडम्बर-मात्र है। मन प्रसन्न करने के लिये जो मन आये कर लो।"

"तो आप हिन्दू ढग से विवाह कर अपना मन प्रसन्न कर लीजिये।"

"मैं इसको मूर्खता मानता हूँ।"

"तो मूर्खों की लडकी से विवाह कर रहे हैं आप?"

विनोद निरुत्तर हो गया। उसको समझ तो आ गई कि वह जिस लडकी से विवाह कर रहा है, वह इस विषय में तो मूर्ख है ही। उसने कहा था कि जब तक वर्जिन के सामने उनका नकाह नही पढा जायेगा, तब तक उसकी आत्मा उसको कोसती रहेगी। वह इसको अज्ञानता मानता था। इस अज्ञान मे पडी हुई लडकी से विवाह कर वह अच्छी बात नही कर रहा। आत्मा मे उठ रही इस पुकार को उसने, नलिनी के सुन्दर स्वरूप और अंग्रेजी बोलने के शिष्ट ढग को स्मरण कर दबा दिया। उसने कहा, "महाशय जी! यह हमारे परिवार की बात है। इसमें आपको कुछ भी कहने का अधिकार नही है।"

"ठीक है। यदि यह आपके परिवार की बात थी तो आपने मुझको निमन्त्रण क्यों भेजा था? मै तो उसको पढकर ही श्रीमान् से पूछने चला आया हूँ।"

"तो मैं निमन्त्रण वापिस ले लेता हूँ।"

"अच्छी बात है। मैं घर जाकर लौटा दूँगा।"

विनोद ने समझा कि उसने महाशय जी का दिमाग ठिकाने लगा

दिया है। यह बातचीत भगवतस्वरूप सुन रहा था। उसने एक बात विनोद को कही, "मैं समझता था कि मेरा लडका यूनिवर्सिटी में प्रथम रहकर बहुत ही समझदार हो गया है। परन्तु आज देख रहा हूँ कि तुम युक्तिहीन बातें भी कर सकते हो।"

"पिता जी! जाने दीजिये इन अनपढ अथवा अर्द्ध-शिक्षितों की बातों को। कौन इनसे मगजपच्ची करता? मैंने निमन्त्रण वापिस मांगकर उसको अपने स्थान का ज्ञान करवा दिया है। हम उसके पूर्ण परिवार को मोल ले सकते हैं। वह मैट्रिक तक पढकर अपने गुरुओं से भी अधिक पढों को शिक्षा देने आया था।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ बेटा! निमन्त्रण तो तुमने भेजा नहीं और वापिस लेने में बहुत तेज हो।"

"तो किसने भेजा है?"

"उसके नीचे तो मेरा नाम छपा है। नियम से मैं आमन्त्रित करने वाला हूँ। तुमने निमन्त्रण की बात उठते ही मुझको उत्तर देने का अवसर देना चाहिये था।"

"तो आप क्या कहते?"

"मै कहता, महाशय जी! भूल अथवा ठीक, जो भी हम कर रहे है, वह तो अब हो गई। इस पर भी आप यदि आवेंगे तो अपना अहोभाग्य मानूँगा।"

"यह व्यर्थ की खुशामद है।"

"सो तो तुम अपनी होने वाली स्त्री की कर रहे हो। इसी कारण हम को अपने मित्र तथा परिचितों की खुशामद करनी पड रही है।"

"पिताजी! एक नहीं आवेगा तो न सही।"

भगवतस्वरूप चुप कर रहा। विवाह हुआ। विवाह और भोज पर नलिनी के सम्बन्धी और विनोद के कुछ मित्र पहुँचे। भगवतस्वरूप और विनोद की माता, बहन और भाई गिरजाघर में तो गये, परन्तु भोज में सम्मिलित नहीं हुए। सुशीला ने कह दिया कि वहाँ नहीं जायेगी।

गिरजाघर से वर-वधू जब निकले तो विनोद की माता ने मंगल-सूत्र (सोने की कण्ठी) बहू के गले में बाँध दी और यह आशीर्वाद दिया, "भगवान् तुमको चिरजीव करे और सौभाग्यवती रखे।"

भगवतस्वरूप अपनी पत्नी और बच्चों के साथ टाँगे में सवार होकर घर आ गया। उनके सम्बन्धियों में से वहाँ कोई नहीं गया। एक दो ने आकर शकुन दिया तो उन्होंने अस्वीकार कर दिया।

विनोद विवाह के पश्चात् कभी-कभी माता-पिता से मिलने आया करता था। कभी अपने साथ नलिनी को भी लाया करता था। भगवत-स्वरूप ने सुशीला को और अपनी लडकियों को कह रखा था कि घर आये का कभी अनादर नहीं करना चाहिए। इस कारण सब नलिनी से बहुत शिष्टाचारयुक्त व्यवहार करते थे। नलिनी इससे सन्तुष्ट थी। विनोद को भी कभी कुछ कहने का अवसर नहीं मिला।

कभी-कभी विवाह के विषय पर भी बातचीत हो जाती थी। एक दिन विनोद ने कह दिया, "पिताजी! मेरा अपने विवाह पर केवल तीन सौ रुपया व्यय हुआ है। दस रुपये, 'मैरेज फी', पचास गिरजा-घर को चन्दा, डेढ सौ रुपया भोज पर, एक सौ रुपये के नलिनी के कपड़े, बस। यदि आपके ढंग पर विवाह होता तो चार-पाँच हजार तो व्यय हो ही जाता।"

"तो हम लोग कमाते किसलिए हैं?"

"पर मेरी कमाई में तो हमारा निर्वाह भी नहीं होता। अढाई सौ वेतन पाता हूँ। उसमें से नब्बे रुपये तो कोठी का किराया दे देता हूँ। एक कोठी का माली है, जो तीस रुपया महीना लेता है। एक नौकर है, जो बाजार से सामान खरीदकर लाता है और चालीस रुपया महीना पाता है। एक रसोइया है, पचास उसको देता हूँ। कोठी में पानी बिजली का खर्चा तीस रुपया महीना पडता है। इस प्रकार मेरा अढाई

सौ रुपया तो इन बातों में ही समाप्त हो जाता है। खाने-पहिरने के लिए नलिनी को 'कॉन्वैंट ऑफ मेरी' स्कूल में नौकरी करनी पडती है। वहाँ से वह दो सौ रुपया महीना लाती है तो निर्वाह होता है।"

भगवतस्वरूप ने मुस्कराकर कहा, "कोई सस्ते किराये का मकान क्यों नहीं ले लेते।"

"शहर के गन्दे मकानों में नलिनी को रहने का अभ्यास नहीं है। इस पर भी मुझको विश्वास है कि एक वर्ष के भीतर ही हमारा हाथ खुल जायगा। मैं एक पुस्तक लिख रहा हूँ। आशा है कि वह यूनिवर्सिटी में पढाई के लिए स्वीकार हो जावेगी और एक निरन्तर आय का स्रोत खुल जाएगा।"

"ठीक है। परमात्मा तुम्हारी सहायता करेगा।"

"पर कुछ सहायता तो आप भी कर सकते हैं?"

"क्या?"

"यदि आप एक सौ रुपया मासिक की सहायता कुछ काल के लिए दे दें तो हमारी गाडी चल जाएगी। इतना तो आप मानेंगे ही कि पाँच हजार आपका मैंने बचा दिया है।"

भगवतस्वरूप ने कह दिया, "भूषण का दो सौ रुपये महीने का खर्चा हो गया है। कान्ता को भी पचास रुपया महीना देना ही पडता है। हमारे पास तो बचता कुछ नहीं।"

"इस पर भी आपका पाँच-छः हजार रुपया तो बचा ही है। कहीं मधु या जयन्ति से विवाह होता तो कितना रुपया व्यर्थ फूँकने वाले थे आप?"

उत्तर सुशीला ने दिया, "तुमने अपने मनपसन्द का विवाह किया है, क्यों? मनपसन्द में युक्ति नहीं होती। इसी प्रकार हम बाजे-गाजे से विवाह करते, केवल अपनी इच्छा से। इसमें भी कोई युक्ति नहीं। हमारे मन पसन्द की बात हुई नहीं और हम ने खर्च किया नहीं। अब भूषण के विवाह पर खर्च करेंगे और उसमें अपने मनपसन्द की बात कर लेंगे।"

"तो मुझको आप से कुछ आशा नहीं करनी चाहिए न ?"

"आशा तो रखनी ही चाहिए।" भगवतस्वरूप ने कहा, "परन्तु यह हमारी अपनी इच्छा पर पूर्ण होगी। अभी तो इच्छा नहीं हो रही।"

"आपकी वह इच्छा कैसे होगी ?"

"तुम इतने पढे लिखे विद्वान् हो। लडकों को पटाते भी हो। तुम मालूम करो कि तुम को कुछ देने की इच्छा हमारे मन में कैसे हो सकती है ?"

"मुझ को तो कुछ समझ आ नहीं रहा। विवाह तो हो गया। अब वह लौट नहीं सकता। इसके अतिरिक्त मै आप का पुत्र भी तो हूँ।"

"यत्न करो कि तुम्हारी माता तुम्हारी सिफारिश मेरे पास करे।"

विनोद समझ नहीं सका। वह चला गया तो सुशीला ने अपने पति से पूछा, "क्या चाहते हैं आप विनोद से ?"

"वह बुद्धू है। देखो शील! जो स्वय अपने खर्च को आय के भीतर नहीं कर सकता, वह किसी से सहायता पाने का अधिकार नहीं रखता। मैंने सकेत से उसको कहा है कि सस्ते मकान में रहना सीखो। उसको समझ नहीं आई।"

भूषण समीप बैठा था और सब कुछ सुन रहा था। उसने कहा, "पिताजी! जब वे अपने खर्च को आय के अन्तर्गत कर लेंगे तो फिर सहायता की आवश्यकता ही नहीं रहेगी।"

"सहायता तो किसी असम्भावित कठिनाई आने पर ली या दी जा सकती है। बढे हुए खर्च को पूरा करने के लिए दिया धन सहायता नहीं, पैन्शन कहाती है। मैं उसको पैन्शन नहीं देना चाहता।"

भूषण समझ गया। इस पर भी सुशीला को इससे सन्तोष नहीं हुआ। मा का हृदय पुत्र की कठिनाई देख कर पसीज गया। उसने कहा, "विवाह मे जितना खर्च करना था, उतना तो आप दे ही सकते हैं।"

"विवाह में खर्च करने के लिए मैंने सात हजार पृथक् कर रखा था।

उसमें से तुम ने चार सौ की कण्ठी तो उसको दे ही दी है। लगभग चार सौ रुपया हम सब के कपड़ों पर खर्च हो गया था। शेष छः हजार दो सौ रुपया मेरे पास इस खाते का है। तुम चाहो तो मैं दे सकता हूँ।"

"बेटा कष्ट में है। उसको यह रुपया दे देना चाहिए। इसके समाप्त होने तक वह अपनी आय को बढ़ाने का यत्न करेगा।"

"देखो शील! मैं तुम्हारी बात को टाल नहीं सकता। मैं यह रुपया दे दूँगा परन्तु सहायता का यह ढंग ठीक नहीं है।"

"क्यों?"

"उसका अपने खर्चे का बजट अयुक्तिसंगत है।"

"जिस समाज की लड़की से उसका विवाह हुआ है, उस समाज के रहन-सहन का स्तर हम हिन्दुओं से ऊँचा है, इसका विचार भी तो करना चाहिए।"

"विचार किस को करना चाहिए? क्या यह उस समाज का काम नहीं, जिसकी लड़कियाँ अपने समाज से बाहर विवाह करने पर विवश हो रही हैं? अथवा क्या यह विनोद के विचार करने का विषय नहीं, जिसके मन में अपने समाज से बाहर विवाह करने की इच्छा उत्पन्न हुई है?"

"विवाह तो भगवान् के घर में निश्चित् होते हैं न?"

"तो यह बात कि विनोद का जीवन-स्तर नलिनी के जीवन-स्तर के बराबर है, अथवा नहीं, भगवान् के विचार करने की बात नहीं है क्या?"

"देखिये जी। मेरा मन कहता है कि विनोद की कुछ तो सहायता करनी ही चाहिए।"

"अच्छी बात। मैं तुम को कल रुपया ला दूँगा। तुम जितना चाहो जाकर दे आना।"

अगले दिन भगवतस्वरूप ने छः हजार दो सौ रुपये बैंक से निक-लवा कर सुशीला को दे दिये और कहा, "अब जैसे मन करे कर लो।"

सुशीला को अपने पति से ऐसी ही आशा थी। उसने जब-जब भी किसी बात के लिए आग्रह किया था, वह मानी गई थी। इस पर भी वह यत्न करती रहती थी कि किसी व्यर्थ की बात के लिए हठ न करे। विनोद के विषय में वह समझती थी कि वह जैसे उसका पुत्र है, वैसे ही अपने पिता का भी। इस कारण उसके लिए आग्रह करना, अपने परिवार के लिए आग्रह करना है। इसमें उसका निजी कोई स्वार्थ नहीं।

भगवतस्वरूप के विचार में मतभेद का विषय इस प्रकार था कि वह इस रुपये को अपने विचार के अनुसार व्यय करना चाहता था और उसकी स्त्री का आग्रह था कि यह रुपया विनोद के लिए रखा गया था, इस कारण उसको दे दिया जाय, जिससे वह इस का प्रयोग अपनी इच्छानुसार कर ले। इस छोटी सी बात के लिए वह अपनी पत्नी की बात का अनादर नहीं करना चाहता था।

सुशीला को छ हजार दो सौ रुपया, सौ-सौ रुपये के नोटों में मिल गया। अगले दिन वह भूषण को साथ लेकर विनोद के घर जा पहुँची। विनोद कॉलेज से घर पर आया हुआ था। एकाएक मा को आया देख वह चकित रह गया। भूषण ने उसे देख प्रसन्नता से फूलते हुए कहा, "भैया! देखो, मा तुम्हारे लिए क्या लाई हैं।"

"क्या! मा! आओ बैठो। नलिनी अभी स्कूल से नहीं आई। बस", उसने घड़ी की ओर देख कर कहा, "अब आने ही वाली है।"

मा ने कोठी को देखा। यह छोटी-सी थी। चार दीवारी के अन्दर और कमरों के बाहर पन्द्रह फुट चौड़ी खुली जगह थी, जहाँ घास लगी थी और विनोद इसी स्थान पर बेंत की कुर्सी पर, बैठा हुआ था। मा को आया देख वह उठ खड़ा हुआ और नौकर को आवाज देने लगा, "पलटू! ओ पलटू!"

पलटू तो नहीं आया परन्तु रसोईघर से, जो एक कोने में कमरों के साथ बनी थी, रसोईया निकल आया और बोला, "साहब! पलटू बाजार से सब्जी लेने गया है।"

"जाओ, भीतर से कुर्सियाँ निकाल कर यहाँ ले आओ।"

रसोईये ने बरामदे में रखी बेंत की कुर्सियाँ उठाकर घास पर लगा दीं और वैसी ही बेंत की एक तिपाई उठा लाया। तिपाई को उसने कुर्सियों के बीच में लगा दिया। जब वह चला गया तो विनोद ने माँ को कहा, "बैठो, माँ! भूषण! बैठो।" उनके बैठने पर विनोद अपनी कुर्सी भी समीप ले आया।

"हाँ तो बताओ माँ! आज, तुम्हारा दिल कर आया है मिलने को। क्या बात है?"

"बताओ तो भैया! क्या बात हो सकती है?" भूषण ने रहस्य-मयी मुद्रा बनाकर कहा।

विनोद ने भूषण की हँसी उडाने के विचार से कह दिया, "भूषण के विवाह का निमन्त्रण देने आई है माँ। ठीक है न?"

भूषण हँस पडा और बोला, "गलत। फिर बूझने का यत्न करो।"

"तो कान्ता की सगाई होगी। क्यों माँ?"

"बस रहने दे विनोद!" माँ ने मुस्कराते हुए कहा, "तभी तो तुम्हारे पिता तुमको बुद्धू कहते हैं। देखो कल तुमने उनसे सहायता के लिए कहा था। मैंने तुम्हारी बात को फिर आग्रहपूर्वक कहा और वे मान गए। जितना रुपया उन्होंने तुम्हारे विवाह के लिए रखा था, वह उन्होंने तुम्हें देने का निर्णय कर लिया है। मुझको वह रुपया देने के लिए भेजा है। भूषण! विनोद को दे दो।"

"बताओ, भैया! क्या खिलाओगे? देखो कैसा अच्छा समाचार लाये हैं।"

"हाँ माँ! तुम बहुत ही अच्छे अवसर पर आई हो। यह सहायता सत्य ही हमको ऋण में डूबने से बचायेगी।

"आओ मैं दिखाऊँ। कोठी में ड्रायंग रूम है और तीन सैट सोने के कमरों के हैं। खाली कोठी का नब्बे रुपया किराया है। कोठी में जब तक फर्नीचर न हो, यह नब्बे रुपये खर्च करना बेकार था। सो मैंने एक

महीने के लिए यह फर्नीचर तो किराये पर ले लिया। चारों कमरों और ड्रायंग रूम के लिए दरियें, सोने के कमरों के लिए तीन पलंग, तीन वार्ड-रोब, अलमारियां, तीन बड़े शीशे और तिपाइयां, गमला-स्टैंड, फूलदान, दरवाजों और खिड़कियों के लिए पर्दे, बिजली के पंखे इत्यादि तथा ड्रायंग रूम के लिए सोफा-सैट, तीन स्टूल, गमला-स्टैण्ड और पर्दे और गुसलखाने के लिए अनैमल टब-बाथ, टॉवल-स्टैण्ड, ये सब वस्तुएँ किराये पर लानी पड़ी हैं।" विनोद माँ और भूषण को साथ ले जा-जाकर कमरे-पर-कमरे दिखाता हुआ सामान दिखा रहा था और समझा रहा था। "माँ! अनेकों वस्तुएँ, यहाँ तक कि रसोई पकाने के बर्तन तक किराये पर लाने पड़े और पहले महीने का इनका किराया एक सौ पचपन रुपया दस आना पड़ा। मैंने अगले मास सारा सामान लौटा दिया और नया फर्नीचर उधार ले आया। फर्नीचर एक हजार दो सौ रुपये का आया है। दो-दो सौ रुपयों की दो किश्तें दे सका हूँ और अब छः महीने से अन्य किश्तें नहीं दे सका।

"इसी प्रकार कुछ कपड़े खरीदने पड़े थे। कुछ तो नकद दाम देकर लाया था और कुछ उधार और वह उधार भी नहीं चुका सका।

"विवाह के पश्चात् नलिनी तीन मास तक नौकरी नहीं पा सकी थी। उन तीन महीनों का आटे-दाल का बिल उधार पड़ा है। इस प्रकार लगभग अढ़ाई हजार ऋण सर पर चढ़ चुका है। फर्नीचर वाले ने तो डिक्री करवाकर कुर्की भी ले ली है। यदि तुम आज न आतीं, तो यहाँ पाँच-छः दिनों में ही, 'एक-दो तीन' हो रहा होता।"

इस प्रकार बातें करता हुआ विनोद उनको ड्रायंगरूम में ले आया था और वे सब सोफा पर बैठ गए। माँ बिटर्-बिटर् विनोद का मुख देख रही थी। उसको उसकी यह कथा सर्वथा अरुचिकर प्रतीत हुई थी।

इस समय नलिनी आ गई। सुशीला ने देखा कि उसका मुख

मलिन हो रहा है। पिछले दिनों तो वह पाऊडर व सुर्खी लगाकर उसके घर में आई थी। इस कारण उसके मुख का पीलापन कुछ अधिक दिखाई नहीं दिया था। जो-कुछ थोडा-सा दिखाई दिया था, वह माँ ने उसके गदमी रग के कारण समझ लिया था। आज कुछ तो प्रकाश अधिक होने के कारण और कुछ उसने सुर्खी तथा पाऊडर नहीं लगाया हुआ था, इस कारण सुशीला को नलिनी बीमार प्रतीत हुई। वह विनोद की बात छोड अब नलिनी से पूछने लगी, "क्यों, क्या बात है?"

नलिनी ने बात बदलकर कहा, "माँजी! आप आये हैं यह आपकी बहुत भारी कृपा है। बैठिए चाय आती है। मैं भी कपड़े बदलकर अभी आती हूँ।"

इतना कहकर नलिनी अपने कमरे में चली गई। माँ ने विनोद से पूछा, "बहू को बहुत बीमार कर रखा है तुमने। क्या बात है?"

"माँ! उसे भी इस सब बात की बहुत चिन्ता रहती है। फिर उसे कुछ···। यह भी एक चिन्ता का विषय है। पहले ही गुजर नहीं हो रहा है और अब एक मुख और खाने वाला आजाएगा। साथ ही नलिनी को तीन-चार मास की छुट्टी लेनी पड़ेगी, जो कि आधे वेतन पर मिलेगी।"

सुशीला को भी इस बात से अत्यन्त चिन्ता होने लगी। वह सोचती थी कि ये दोनों मूर्ख कैसे वह कठिन समय निकाल सकेंगे। और फिर खर्चा बढता जायगा। आय कम होगी। यह गाडी किस प्रकार चलेगी। एक बात का उसे सन्तोष था कि इस समय को निकालने के लिए उनके पास सहायता आ पहुँची है। क्या उसका पिता बार-बार इस प्रकार सहायता कर सकेगा और फिर यह सब कैसे और कब तक चलेगा। उसको स्मरण था कि जब उसके स्वसुर का देहान्त हुआ था, तब लगभग ऐसी ही समस्या उनके सामने भी उपस्थित हो गई थी, परन्तु विनोद के पिता ने घर का व्यय ऐसे ढग से कम कर दिया था कि उनको विशेष असुविधा नहीं हुई थी और कुछ काल

पश्चात् उनको, कम व्यय करने का स्वभाव सा हो गया था। पश्चात् भगवान् की कृपा हुई और विनोद के पिता की तरक्की होती गई। धीरे-धीरे सब कार्य सुचारु रूप से चलने लग गया था। उसको ऐसा कोई समय स्मरण नहीं था, जब कि कुसमय पर किसी से सहायता अथवा उधार लेना पड़ा हो।

भगवतस्वरूप की शिक्षा दसवीं श्रेणी तक थी परन्तु वह एक दुकानदार का पुत्र था और अपनी आय में अपने खर्च को पूरा करने का ढग जानता था। सुशीला विनोद के खर्च का विवरण सुन अत्यन्त दु.खी हुई। उसने कहा, "विनोद ! इस समय तो छ: हजार के लगभग मैं ले आई हूँ परन्तु बार-बार यह नहीं हो सकता। चादर देखकर पाव फैलाओ, बेटा ! अन्यथा परिणाम ठीक नहीं होगा। कल तुम्हारे पिताजी से बातें होने लगीं तो उन्होने कहा कि सहायता समय-कुसमय के अवसर पर तो हो सकती है, परन्तु इसका अर्थ पेन्शन नहीं होना चाहिए।"

विनोद कुछ कहना नहीं चाहता था। उसके मन में भय था कि कहीं कोई बात उसके मुख से अनुचित न निकल जाये, जो माँ को अरुचिकर लगे और रुपया मिलता-मिलता रुक जाये।

इस समय नलिनी सफेद पोशाक पहन बाहर आ गई। दूध समान मलमल की गौन और स्कर्ट थी। सफेद जुराबें और सफेद ही जूते थे। अब उसने पाऊडर, सुर्खी आदि का प्रयोग किया हुआ था। शरीर पर और बाहों पर भी हलका पाऊडर का छींटा दे रखा था। देखने में अब वह बहुत ही भली लग रही थी। सुशीला ने उसे अपने समीप बैठाकर सिर पर हाथ फेर प्यार किया। नलिनी मुस्कुराई। प्यार से उसके बाल उखड़ पड़े थे। वह मा के हाथों को अपने हाथों में लेकर बोली, "आपके आने से मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है। अब मुझको विश्वास हो गया है कि आप मुझ से नाराज नहीं हैं। हम आपके ही बच्चे हैं। हमारी भूलों की ओर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये।"

रुपयो की बात विनोद ने चालू की, "पिताजी ने छः हजार रुपया सहायतार्थ भेजा है।"

"इज इट ? हाऊ गुड ऑफ हिम !" नलिनी ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए सुशीला के पाव छूने का प्रयत्न किया। सुशीला ने उसे फिर प्यार किया और कहा, "अब तो ठीक है। पर बेटी! बार-बार यह नहीं हो सकेगा। इस कारण उचित यही है कि अपनी आय के भीतर ही व्यय करना सीखो। ईश्वर तुम लोगो का भला करेगा।"

भूषण ने अपनी माग उपस्थित कर दी, "भाभी! आज तो दावत होनी चाहिए।"

"श्योर।" विनोद ने उसका समर्थन कर दिया, "मा चलो न। बाजार चलकर आज चाय पीयेंगे।"

"और यह जो बैरा बना लाया है।" इस समय बैरा चाय की ट्रे लगाकर ले आया था। नलिनी सुशीला का आशय समझ गई और बिना कुछ कहे चाय बनाने लगी।

उसी रात भगवतस्वरूप को सुशीला ने विनोद के बगले की व्यवस्था का वर्णन कर दिया और पश्चात् कहने लगी, "अढ़ाई सौ कमाने वाला उस कोठी मे नहीं रह सकता।"

"मुझको तो किसी प्रकार से भी सन्तोपजनक अत की आशा प्रतीत नहीं होती। इस लडके ने तो आरम्भ ही गलत स्थान से किया है। अब वह चिकने ढालू स्थान पर खडा हो गया है और फिसलने से बच सकना सुगम नहीं रहा।"

भूषण साधारणतया कालेज-होस्टल मे रहता था। कालेज में दो दिन की छुट्टी थी इस कारण घर में ठहरा हुआ था। अगले दिन प्रातः उसने मुगलपुरा होस्टल में जाना था। भगवतस्वरूप विनोद की चर्चा भोजन के समय ही कर रहा था और भूषण इस चर्चा को सुन रहा था। वह भी कोठी में रहने की शान देख आया था। उसका मन भी कर रहा था कि वे सब लोग चलकर ऐसे अच्छे स्थान में रहें। इस

पश्चात् उनको, कम व्यय करने का स्वभाव सा हो गया था। पश्चात् भगवान् की कृपा हुई और विनोद के पिता की तरक्की होती गई। धीरे-धीरे सब कार्य सुचारु रूप से चलने लग गया था। उसको ऐसा कोई समय स्मरण नहीं था, जब कि कुसमय पर किसी से सहायता अथवा उधार लेना पडा हो।

भगवतस्वरूप की शिक्षा दसवी श्रेणी तक थी परन्तु वह एक दुकानदार का पुत्र था और अपनी आय मे अपने खर्च को पूरा करने का ढग जानता था। सुशीला विनोद के खर्च का विवरण सुन अत्यन्त दु.खी हुई। उसने कहा, "विनोद! इस समय तो छः हजार के लग-भग मैं ले आई हूँ परन्तु बार-बार यह नहीं हो सकता। चादर देखकर पाव फैलाओ, बेटा! अन्यथा परिणाम ठीक नहीं होगा। कल तुम्हारे पिताजी से बाते होने लगीं तो उन्होने कहा कि सहायता समय-कुसमय के अवसर पर तो हो सकती है, परन्तु इसका अर्थ पेन्शन नही होना चाहिए।"

विनोद कुछ कहना नहीं चाहता था। उसके मन में भय था कि कहीं कोई बात उसके मुख से अनुचित न निकल जाये, जो माँ को अरुचिकर लगे और रुपया मिलता-मिलता रुक जाये।

इस समय नलिनी सफेद पोशाक पहन बाहर आ गई। दूध समान मलमल की गौन और स्कर्ट थी। सफेद जुराबें और सफेद ही जूते थे। अब उसने पाऊडर, सुर्खी आदि का प्रयोग किया हुआ था। शरीर पर और बाहों पर भी हल्का पाऊडर का छींटा दे रखा था। देखने मे अब वह बहुत ही भली लग रही थी। सुशीला ने उसे अपने समीप बैठाकर सिर पर हाथ फेर प्यार किया। नलिनी मुस्कुराई। प्यार से उसके बाल उखड पड़े थे। वह मा के हाथो को अपने हाथों मे लेकर बोली, "आपके आने से मुझे बडी प्रसन्नता हुई है। अब मुझको विश्वास हो गया है कि आप मुझ से नाराज नहीं हैं। हम आपके ही बच्चे हैं। हमारी भूलों की ओर आपको ध्यान नहीं देना चाहिये।"

रुपयों की बात विनोद ने चालू की, "पिताजी ने छः हजार रुपया सहायतार्थ भेजा है।"

"इज इट ? हाऊ गुड ऑफ हिम !" नलिनी ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए सुशीला के पाव छूने का प्रयत्न किया। सुशीला ने उसे फिर प्यार किया और कहा, "अब तो ठीक है। पर बेटी ! बार-बार यह नहीं हो सकेगा। इस कारण उचित यही है कि अपनी आय के भीतर ही व्यय करना सीखो। ईश्वर तुम लोगों का भला करेगा।"

भूषण ने अपनी माग उपस्थित कर दी, "भाभी ! आज तो दावत होनी चाहिए।"

"श्योर।" विनोद ने उसका समर्थन कर दिया, "मा चलो न। बाजार चलकर आज चाय पीयेंगे।"

"और यह जो बैरा बना लाया है।" इस समय बैरा चाय की ट्रे लगाकर ले आया था। नलिनी सुशीला का आशय समझ गई और बिना कुछ कहे चाय बनाने लगी।

उसी रात भगवतस्वरूप को सुशीला ने विनोद के बंगले की व्यवस्था का वर्णन कर दिया और पश्चात् कहने लगी, "अढाई सौ कमाने वाला उस कोठी में नहीं रह सकता।"

"मुझको तो किसी प्रकार से भी सन्तोषजनक अंत की आशा प्रतीत नहीं होती। इस लडके ने तो आरम्भ ही गलत स्थान से किया है। अब वह चिकने ढालू स्थान पर खडा हो गया है और फिसलने से बच सकना सुगम नहीं रहा।"

भूषण साधारणतया कालेज-होस्टल मे रहता था। कालेज में दो दिन की छुट्टी थी इस कारण घर में ठहरा हुआ था। अगले दिन प्रातः उसने मुगलपुरा होस्टल मे जाना था। भगवतस्वरूप विनोद की चर्चा भोजन के समय ही कर रहा था और भूषण इस चर्चा को सुन रहा था। वह भी कोठी में रहने की शान देख आया था। उसका मन भी कर रहा था कि वे सब लोग चलकर ऐसे अच्छे स्थान में रहें। इस

कारण उसने पूछा, "पिता जी ! आपका सुझाव इसमें क्या है ? वह सुझाव विनोद को बताया जाये और उसको राय दी जाये कि उसके अनुसार कार्य करे।"

"तो इतनी आयु मेरे पास रहते हुए वह मेरे जीवन का ढग भूल गया है ? मैंने तो तुम लोगों से कभी कोई बात गुप्त नहीं रखी। देखो यदि मैं अपने ढग से निर्वाह न करता होता तो इस समय छः हजार रुपया देने में भारी कठिनाई होती। यदि मैं आरम्भ से ही उसी प्रकार रहने का प्रयत्न करता, जैसा विनोद कर रहा है, तो तुमको दो सौ रुपया मासिक व्यय देना कैसे सम्भव हो सकता था ?

"मैं स्त्रियों को, विशेष रूप से अविवाहित स्त्रियों के लिये नौकरी करना उचित नहीं समझता। यदि पुरुष की कमाई इतनी नहीं कि वह परिवार का बोझा उठा सके तो उसको विवाह नहीं करना चाहिए।

"परिवार के विषय मे यह आवश्यक नहीं कि कोई दो सौ रुपयों से ऊपर वेतन ले, तब ही वह परिवार का पालन-पोषण करने की क्षमता रखता है। बहुत से लोग इससे कम वेतन में ही अपना कार्य चला रहे हैं। बात यह है कि आय का बटवारा ठीक ढग से होना चाहिए। मेरा यह व्यवहार रहा है कि आय का चालीस प्रतिशत भोजन पर व्यय करता हूँ। पन्द्रह प्रतिशत कपड़ो आदि के लिए, पन्द्रह प्रतिशत मकान-भाड़े में, पन्द्रह प्रतिशत मिश्रण व्यय और शेष मे से दस प्रतिशत बैंक में और पाँच प्रतिशत दान इत्यादि कार्यो के लिए।

"जब मेरा वेतन पचहत्तर रुपया था, तब भी इसी प्रकार निर्वाह चलता था और अब छः सौ से ऊपर है, तब भी इसी अनुपात में व्यय हो रहा है। यदि हमें किसी बात पर हठ करना चाहिये तो व्यय के इस अनुपात के लिए ही तो हो सकता है।

"विनोद की बात देखो। विविध व्यय उसने पन्द्रह के स्थान सौ प्रतिशत कर रखा है। मैं इसको पसन्द नहीं करता।

"मैं परिवार को कोई धर्म-सस्था या क्रीडा-स्थान नहीं मानता।

यह एक आर्थिक इकाई है। इसके सदस्यों में रक्त का सम्बन्ध होने से इसमें कुछ लचक उपस्थित होती है। एक लिमिटेड कम्पनी और एक परिवार में अन्तर केवल इसी लचक में है। इसपर भी यह लचक असीम नहीं है। इसके आर्थिक रूप को भूला नहीं जा सकता।"

भूषण अपने पिता के कथन का अर्थ समझता था और अब वह अपने मन में एक योजना बनाने लगा था। कान्ता इत्यादि अभी छोटी थीं। उन्होंने संसार को अभी नहीं देखा था। स्त्री-जाति की भावुकता की निधि पर उनकी सब गणना चलती थी। उनको भगवतस्वरूप का कहना शुष्क और सारहीन प्रतीत हुआ। कान्ता ने अपने मन की बात कह दी, "पिताजी! स्त्री को आय में हाथ क्यों नहीं बटाना चाहिये?"

"नौकरी करना एक अति कठिन कार्य है। औरतों को कठिन कार्य करने नहीं देना चाहिए।"

"वाह! मैं तो समझती हूँ कि घर का चूल्हा-चौका अधिक कठिन है। मैं तो चूल्हा-चौका नहीं फूँक सकती।"

"तब तुम मेरे कहने का अर्थ विवाह के पश्चात् समझ जाओगी। दुःख तो यह है कि उस समय तुम घर का कार्य करने के योग्य नहीं रहोगी। उस समय तक प्राप्त शिक्षा तुम्हारे लिए अर्थहीन हो जावेगी।"

"तो आप पहिले ही समझा दीजिये न।"

"अनुभव की बातें समझाई नहीं जा सकतीं। यदि तुम आँखें खोलकर अगले पाँच-छः वर्ष विनोद और भाभी की कथा देखने और समझने का यत्न करोगी, तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि उसमें मेरे कथन की पुष्टि पा जाओगी।"

कान्ता फोरमैन क्रिश्चियन कालेज में शिक्षा पा रही थी। 'कॉन्वैन्ट ऑफ मेरी' स्कूल उसके कालेज के पिछवारे में दो सौ गज के अन्तर पर

था। यहाँ नलिनी अध्यापन-कार्य करती थी। एक बार कान्ता कालेज से निकल घर की ओर आ रही थी कि नलिनी स्कूल से घर जाती हुई मिल गई। नलिनी उसको अपने घर, जो वहाँ से आधे मील के अन्तर पर, मजग रोड पर था, ले गई।

इसके पश्चात् ऐसे अवसर बार-बार आने लगे। जब पिछले अध्याय में लिखी घटना घटी, तब तक कान्ता कई बार नलिनी के घर आ-जा चुकी थी। उक्त बातचीत के अगले दिन कान्ता नलिनी से मिलने के लिए बहुत उत्सुक थी। कान्ता को अपने पिता की युक्ति और विचार की श्रेष्ठता पर बहुत विश्वास था और वह अपने ढंग से नलिनी से बातचीत करना चाहती थी। अपने कालेज से अवकाश प्राप्त कर, वह नलिनी के स्कूल में चली गई। वहाँ स्कूल में छुट्टी के पश्चात् दोनों ननद-भाभी मजग रोड की ओर चल पड़ीं।

नलिनी रुपयों के मिलने से अभी भी चित्त में शान्ति अनुभव कर रही थी। इस कारण उसने ही इस बात का उल्लेख किया। उसने कहा, "कल माताजी रुपया देने आई थीं। कान्ता! सत्य कहती हूँ कि हमारी तो जान-में-जान आ गई है। हम दिन-रात इसी चिन्ता में पड़े रहते थे कि कैसे ऋण उतरेगा।

"मैंने अपने डैडी से कहा था। उनके अपने पास तो कुछ था नहीं। हम लोगों की आय और खर्चा बराबर-सा ही रहता है। उन्होंने एक शाहजी का पता बताया था। उससे एक-दो बार वे मम्मी के बीमार होने पर रुपया उधार लाये थे। वह रुपया देने को तैयार था, परन्तु दो रुपया सैंकड़ा मासिक सूद मांगता था। साथ ही सूद को लिखने के स्थान मूल को ही बढ़ाकर प्रोनोट लिखाना चाहता था। हम को डेढ़ हज़ार रुपये की अत्यन्त आवश्यकता थी। वह शाह डेढ़ हज़ार देकर, छः मास का दो रुपये प्रति सैकड़ा सूद मूल में जमा कर, बीस रुपया प्रारम्भिक व्यय को भी साथ में जोड़कर सत्रह सौ रुपयों का प्रोनोट लिखाना चाहता था। इस प्रकार हम सूद में ही पिस जाते।

पिताजी का अत्यन्त धन्यवाद है।"

"पिता जी ने दिया अवश्य है," कान्ता ने कहा, "पर माताजी आग्रह न करतीं तो इतनी जल्दी नहीं मिल सकता था। देखो भाभी! मैं समझती हूँ कि आपको नौकरी नहीं करनी चाहिए।"

"तो गुजर कैसे होगा? तुम्हारे भाई साहब का वेतन तो अभी इतना कम है कि उससे निर्वाह होना असम्भव है।"

"जितना व्यय आप कर रहे हैं उतना न करिये। हमारे मकान में एक कमरा खाली है ही। पिताजी ने भैया के लिए ही वह बनवाया था और अभी तक खाली है। आप वहाँ चलकर रहिये। इससे भैया का पूरा-का-पूरा वेतन बच जायेगा। किराया तो कुछ देना नहीं पड़ेगा और साथ ही माली, चपरासी, नौकर आदि का वेतन भी बच जाया करेगा।"

"पर शहर के अन्दर जाकर तो मुझसे रहा नहीं जायेगा।"

"मैं सदा के लिए तो कहती नहीं। मैं तो तब तक के लिए कहती हूँ, जब तक भैया की तरक्की नहीं हो जाती।"

"पर शहर में रहते हुए तो उनकी तरक्की हो चुकी।"

"क्यों? पिता जी जब नौकर हुए थे तब पचास रुपये वेतन पर हुए थे और अब वे छः सौ के लगभग मासिक लेते हैं।"

"बस! यह तो कुछ भी नहीं। तुम देखोगी कान्ता! कि हम कितनी जल्दी इससे भी बड़ी कोठी में रहने की क्षमता प्राप्त कर लेंगे।

"आज चलकर देखोगी कि हमारे घर में कौन चाय पर आ रहे हैं। बड़े अफसरों से सम्पर्क आपके शहर के मकान में रहकर पैदा नहीं किया जा सकता।"

कान्ता चुप कर गई। वह इन बातों को समझ नहीं सकी। इतना तो वह समझती थी कि उसके पिता कहा करते थे कि जहाँ और लोग दूसरों की चापलूसी कर उन्नति पाते हैं, वहाँ वे अपनी योग्यता और परिश्रम से उन्नति के अधिकारी बन रहे हैं।

जब कान्ता कोठी पर पहुँची तो सत्य ही वहाँ की चहल-पहल देखकर चकित रह गई। लॉन में कई तिपाइयाँ और कुर्सियाँ लगी थीं। विनोद यह सारा प्रबन्ध स्वय बैरा और रसोइये से करा रहा था। एक बैरा प्रबन्ध के लिए अतिरिक्त अस्थायी रूप मे बुलाया हुआ था। सब साफ-सुथरे कपडे पहिने हुए थे।

कान्ता पहुँची तो विनोद ने प्रसन्नता प्रकट कर कहा, "कान्ता! तुम आ गई हो, यह बहुत ही अच्छा हुआ है। आज अकाउन्टेंट जनरल, उनकी स्त्री और बच्चे चाय पर आ रहे हैं। उनकी लडकी नलिनी के स्कूल मे पढती है और नलिनी उनके घर में प्राय. जाया करती है। अकाउन्टैंट-जनरल मिस्टर विलियम स्टोपस नलिनी को बहुत पसन्द करने लगे हैं और आज वे हमारे मेहमान बन रहे हैं।"

कान्ता को समझ आई कि कोठी में रहने से ही यह सम्भव हो सका है। इससे वह अपनी भाभी की चतुराई पर प्रसन्न थी और आशा करने लगी थी कि शीघ्र ही भैया को कोई अच्छी नौकरी मिल जायगी।

दस-पन्द्रह मिनट से अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पडी। मिस्टर स्टोपस और मिसेज स्टोपस, उनका बडा लड़का जॉर्ज स्टोपस और लडकी ऐमिली, जो नलिनी से पढती थी, एक बड़ी-सी कार में बैठ कर आये। नलिनी के माता-पिता भी वहाँ आ गए थे। इस प्रकार नौ व्यक्तियों के लिए चाय का प्रबन्ध वहाँ किया गया था। आवभक्त के पश्चात् परिचय हुआ। नलिनी ने मेहमानों का परिचय करा कर अपने पति, पति की बहन कान्ता और अपने माता-पिता का परिचय कराया।

पश्चात् सब बैठ गए। एक तिपाई पर मिस्टर रैड्डी, मिसेज स्टोपस, ऐमिली और विनोद बैठे। दूसरी पर कान्ता, जॉर्ज स्टोपस और नलिनी की मा मिसेज रैड्डी बैठ गईं। तीसरी मेज पर मिस्टर स्टोपस और नलिनी बैठ गई। कान्ता को बैठने का यह प्रबन्ध रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। वह अपने भैया के पास बैठना चाहती थी, परन्तु वहाँ पहले ही चार लोग बैठ चुके थे।

जॉर्ज ने बैठते ही कान्ता से बातचीत करनी आरम्भ कर दी। इससे कान्ता की हिचकिचाहट बड़ी जल्दी दूर हो गई। जॉर्ज ने अंग्रेजी में पूछा, "कहाँ पढ़ती हैं आप?"

"फोरमैन क्रिश्चियन कॉलेज में, इण्टरमीडियेट में।"

"क्या पढ़ती हैं?"

"इंग्लिश, फ्रैंच, मैथमैटिक्स तथा पॉलिटिक्स।"

"आगे क्या करने का विचार है?"

"इंग्लिश लिटरेचर मेरा प्रिय विषय है।"

"आपने शेक्सपीयर की रचनाएँ पढ़ी हैं?"

"कई बार पढ़ चुकी हूँ। मुझको उसकी कृतियाँ अत्यन्त रुचिकर प्रतीत हुई हैं। कमाल का ज्ञान था, उस महाकवि का।"

इसके पश्चात् शेक्सपीयर के कई नाटकों पर बातचीत प्रारम्भ हो गई। जॉर्ज भी शेक्सपीयर का स्टूडेंट रह चुका था। वह ऑक्सफोर्ड का स्नातक था और पंजाब सरकार में किसी अच्छी नौकरी के लिए आया हुआ था। उसका पिता दस वर्ष से पंजाब में अकाउन्टैंट जनरल की पदवी पर था और वह पिता की सहायता से किसी अच्छे पद पर लग जाने की आशा कर रहा था।

कान्ता और जॉर्ज में शेक्सपीयर पर बातचीत करने के लिए एक साझा विषय हो गया और दोनों अच्छी प्रकार घुल-मिलकर बातें करने लगे।

चाय समाप्त हो गई। नलिनी की मा, जो कान्ता और जॉर्ज की बातों में रुचि लेने की योग्यता नहीं रखती थी, उठ कर विनोद की मण्डली में सम्मिलित हो गई। उधर मिस्टर स्टोपस और नलिनी अकेले रह गए और इधर जॉर्ज तथा कान्ता। कान्ता जॉर्ज की बातों में लीन हो गई थी। जार्ज शेक्सपीयर द्वारा किया सौन्दर्य का वर्णन सुना रहा था। वह कह रहा था कि स्त्री का सौन्दर्य आयु के भेदभाव को मिटा देता है। कवि ऐसा ही मानता है। उसने एक स्थान पर लिखा है:—

"तो मैं तुमसे कॉलेज—समय के पश्चात् कभी-कभी मिलने आया करूँगा।"

जब मेहमान चले गए और नलिनी के माता-पिता भी चले गए तो कान्ता पार्टी की सफलता पर भाभी को बधाई देने लगी।

नलिनी ने कहा, "देखा है न, कान्ता! आज की पार्टी आपके पिता के घर पर नहीं हो सकती थी। इस पर हमारा एक सौ के लगभग व्यय हो गया है। मैं तुम्हारे पिताजी का पुनः धन्यवाद करती हूँ कि उन्होंने इस अवसर पर हमको ऋण माँगने के घृणित काम से बचा लिया है।"

विनोद गम्भीर विचार में, समीप ही एक कुर्सी पर बैठा था। नलिनी उसके पास ही एक सोफे पर बैठ गई। विनोद ने नलिनी से पूछा, "डेढ घण्टा तुम उससे बातें करती रही हो, कुछ काम बना?"

"हाँ, उसने वचन दिया है कि गवर्नर से आपके विषय में कहेगा और कुछ-न-कुछ काम अवश्य बन जायेगा।"

"उसने वचन दिया है?"

"हाँ और वह भी कल ही। वे गवर्नर से कल किसी समय मिलने जा रहे हैं। उस समय आपके विषय में बात करेंगे।"

विनोद इससे सन्तुष्ट था। इस पर भी उसने इस प्रसन्नता को प्रकट नहीं किया। वह बोला, "तुम बहुत अच्छी हो नलिनी! इस आर्थिक-संकट में डूबती नौका को पार लगाने वाली तुम ही हो।"

नलिनी इस प्रशंसा से प्रसन्न थी। इस पर भी उसने कहा, "छोड़िये इस बात को।" उसने बात बदल दी। कान्ता की ओर देखकर उसने पूछा, "कान्ता! जॉर्ज क्या बातें करता रहा है तुम से?"

"हम शेक्सपीयर पर विवेचना करते रहे हैं। वह इस कवि की कृतियों में विशेष ज्ञान रखता प्रतीत होता है।"

भगवतस्वरूप को यह पढ़ाई की बात समझ नहीं आई। उसको तो यह विदित था कि अकाउन्टेंट जनरल बहुत ही कठोर स्वभाव का व्यक्ति है। इस पर भी उसने बात बदल दी। उसने कहा, "विनोद ! तुम्हारी माँ कहती है कि तुम शीघ्र ही पिता बनने वाले हो। यह ठीक है क्या ?"

"हाँ पिताजी ! नवम्बर मास में आशा है।"

"अब मई का महीना चल रहा है। अर्थात् तीन मास हो चुके हैं। नलिनी को स्कूल से छुट्टी ले दो न।"

"अभी नहीं पिताजी ! सितम्बर के अन्त में स्कूल वाले छुट्टी देंगे। नियम तो यह है कि स्त्री अध्यापिकाओं को चालीस दिन की वेतन सहित छुट्टी मिले और यदि वे अधिक छुट्टी चाहें तो आधे वेतन पर चालीस दिन की और ले सकती हैं। सो यह अस्सी दिन की छुट्टी ले ली जाएगी।"

"मेरा मतलब यह है कि नलिनी को अब स्कूल से बिल्कुल छुट्टी ले लेनी चाहिए। बच्चा होगा और फिर उसका पालन-पोषण करना होगा। एक माँ के लिए पर्याप्त काम हो जायगा।"

"पर पिताजी ! निर्वाह किस प्रकार होगा ?"

"तुम और भी काम करने का विचार करो। स्त्री से काम करवाकर पेट भरना तो उचित नहीं।"

"क्रिश्चियन समाज मे तो सब स्त्रियाँ कार्य करती हैं।"

"मैं पूछता हूँ कि तुम किस समाज में हो ?"

"मैं जब इनके ढंग से रहता हूँ, तो इनके समाज का ही हो गया समझना चाहिए।"

"विनोद ! यह कोई अच्छी बात नहीं।"

"पिताजी ! हमको अपना भविष्य स्वयं बनाने की स्वीकृति मिलनी चाहिए।"

"अच्छी बात है। तुम बनाओ। परन्तु अपनी इच्छानुसार भविष्य

बनाने मे इस बात का ध्यान रखना कि तुम हमारे समाज से बाहर जा रहे हो।"

इस समय नलिनी ने वार्तालाप में हस्तक्षेप किया। वह बोली, "पिताजी! ऐसा आप क्यो समझते हैं? हमने आपके समाज को छोडा नहीं। केवल उन बातों में, जिनमे समाज ने स्वतन्त्रता दे रखी है, हम स्वतन्त्र रहना चाहते है। मै समझती हूँ कि हिन्दू समाज मे स्त्रियों को नौकरी करने की मनाई नहीं। मैं तो केवल इस स्वतन्त्रता का उपभोग-मात्र कर रही हूँ।"

"देखो नलिनी! हमारे समाज मे स्त्रियो को तब काम करने को कहा जाता है, जब उनको कमाकर खिलाने वाला न रहे।"

"बात वही है पिताजी! इनकी आय हमारे खाने के लिए पर्याप्त नहीं। आशा है, शीघ्र ही किसी अच्छी पदवी पर लग जायेंगे। तब मै नौकरी छोड दूँगी। अन्यथा सम्भव नहीं।"

"और यह अच्छी नौकरी तुम्हारी सिफारिश पर मिलेगी, यही न?"

"मिस्टर स्टोपस एक भद्र पुरुष है। उनकी आयु मेरे पिता के समान है। यह उनकी सज्जनता है कि वे हमारी इस कठिनाई के समय सहायता करने के लिए तैयार हो गए है।" नलिनी भगवतस्वरूप के कथन का अर्थ समझती थी और उसके अनुसार ही उसने मिस्टर स्टोपस की प्रशसा की थी।

भगवतस्वरूप भी सब समझता था। वह विचार करता था कि मिस्टर स्टोपस के विनोद की सहायता मे कुछ तो कारण होना चाहिए। यह कारण नलिनी के सतीत्व से न भी सम्बन्ध रखता हो, इस पर भी किसी बात से उसका सम्बन्ध तो होगा ही। एक शिष्ट हिन्दू-परिवार मे अपने को मानकर और यह जानकर कि उसके लडके की बहू किसी सरकारी अधिकारी से मेल-जोल पैदा कर उसके लडके की उन्नति का प्रयत्न कर रही है, वह दु:ख ही अनुभव करता था।

सुशीला ने नलिनी को एक पृथक् कमरे में ले जाकर समझाया, "देखो बेटी! हम हिन्दुओं मे दो बातें प्रमुख हैं, जिनको हम परम-पवित्र मानते हैं। एक पत्नी का सतीत्व दूसरा पति का अपनी स्त्री की मान-मर्यादा के लिए लड-मरना। नौकरी, धन, दौलत सब बाते तुच्छ हैं। उक्त दो भावनाओं का त्यागकर हम स्वर्ग लोक का राज्य भी स्वीकार नहीं करतीं।

"यह ठीक है कि मनुष्य एक दुर्बल प्राणी है और इन आदर्शों से पतित होने वाले हिन्दू भी मिल जायेंगे। वे घृणा के पात्र ही होते हैं।"

नलिनी को अपने चरित्र पर इस प्रकार सन्देह करने से भारी रोष हो रहा था और इस रोष को वह आँखो मे आँसुओं द्वारा प्रकट करने वाली थी। सुशीला ने उसे कुछ कहने का अवसर न देते हुए कहा, "मै जानती हूँ कि तुमको मेरे कहने पर क्रोध आ रहा है, परन्तु मैंने तुमको एक सिद्धान्त की बात कही है। यद तुम पर लागू नहीं होती तो अच्छा है और यदि होती है, तब आगे से सुधार करो।"

इतना कह सुशीला उसे कमरे से बाहर ले आई।

इस समय भगवतस्वरूप विनोद को एक सीख दे रहा था। उसने कहा था कि जो मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को अपनी सामर्थ्य से अधिक बना लेता है, वह अवश्य किसी पाप-कर्म के करने के लिए विवश हो जाता है। अपनी मान प्रतिष्ठा और स्वाभिमान रखने वाले व्यक्ति के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने साधनो के भीतर ही व्यय करे।

"संसार के सब पापों की जड अनावश्यक व्यय है।"

विनोद को इस बात से क्रोध आ गया और वह कहने लगा, "पिता जी! आप मेरा अपमान कर रहे हैं।"

"यदि तुम समझते हो कि तुम व्यर्थ व्यय कर रहे हो, तो निस्सन्देह मेरे वाक्य तुम्हारा अपमान करने के लिए हैं।"

"मैं व्यय कर रहा हूँ, यही समझकर कि यह भविष्य मे पूँजी बने और मेरा भविष्य सुन्दर हो।"

"तो क्या तुम समझते हो कि मिस्टर स्टोपस जैसा कठोर व्यक्ति दो पेस्ट्रियाँ खाने के लिए तुम्हारे यहाँ आया होगा ?"

"क्या मतलब है आपका ?"

"मेरा मतलब स्पष्ट है। योग्यता के आधार पर उपलब्ध उन्नति ही मान-युक्त हो सकती है। चापलूसी तथा अन्य ऐसे साधनों से प्राप्त की गई उन्नति मनुष्य के स्वाभिमान को हरण करने वाली होती है।"

"एक निर्धन का स्वाभिमान क्या मूल्य रखता है ?"

इस समय नलिनी कमरे से बाहर आई और विनोद से कहने लगी, "चलो चलें।"

विनोद पहले ही जाने के लिए तैयार बैठा था। अब नलिनी को भी यही कहते देख, वह उठ खड़ा हुआ और हाथ जोड़, नमस्कार कर नलिनी के साथ ही घर से बाहर निकल गया। नलिनी ने नमस्कार करना भी उचित नहीं समझा।

कान्ता के मन पर पिता के व्यवहार का विचित्र प्रभाव पड़ा था। वह नलिनी की विजय पार्टी में देख आई थी। डेढ घंटा-भर एक सरकारी अफसर, जो तीन सहस्र मासिक वेतन पा रहा है और जो प्रान्त के गवर्नर से मित्र की भाँति मिलता है, नलिनी से घुल-मिलकर बातें करता रहा था। यद्यपि देखने में नलिनी का रंग गंदमी था और वह अच्छी रूपरेखा रखती थी, इस पर भी एक ऐंग्लो-इंडियन अफसर उसको प्रेम करेगा, वह समझ नहीं सकी थी। पिताजी ने नलिनी के चरित्र पर सन्देह प्रकट किया था, जिस पर भैया तथा भाभी दोनों नाराज होकर चले गए थे। कान्ता यह बात समझ रही थी। वह इसमें पिताजी का अन्याय ही मानती थी।

विनोद और नलिनी के चले जाने के पश्चात् कान्ता के माता-पिता, दोनों गम्भीर-विचार में डूबे रहे। कान्ता ने इस चुप्पी को भंग किया। उसने पूछा, "पिताजी! भाभी ने कोई अनुचित बात की है क्या ?"

"मैंने यह नहीं कहा।" भगवतस्वरूप ने अपनी बात समझाते हुए कहा, "मैंने कहा है कि स्त्री की सिफारिश से प्राप्त उन्नति को मैं अवनति मानता हूँ। मिस्टर स्टोपस केवल उदारता के विचार से विनोद को किसी ऊँची पदवी पर पहुँचा देगा, यह मै नहीं मानता। कुछ बात है, जो मै जानना चाहता था। वह मै जान नहीं सका।"

"कुछ भी हो पिताजी! भाभी तो इसमें दोषी नहीं है।"

"तुम जानती हो? दिन में कितने घटे तुम उसके साथ रहती हो। यही बात यदि विनोद कहता तो अवश्य विचार करने की थी।"

कान्ता चुप कर गई। वह नलिनी के विषय मे कुछ विशेष तो जानती नही थी। उसको उसका मीठा बोलना-मात्र विदित था।

भूषण के लिए विनोद के घर में एक आकर्षण उत्पन्न हो गया था। नलिनी की एक बहन थी मीनाक्षि। वह पन्द्रह वर्ष की थी और सीनियर कैम्ब्रिज परीक्षा की तैयारी कर रही थी। दोनो की भेंट विनोद के घर पर ही हुई थी। इस भेंट के पश्चात् दोनों कोठी के बाहर भी मिलने लग गए थे।

शनिवार का दिन था। इस दिन भूषण का कालेज दो बजे बन्द हुआ करता था। इसके पश्चात् वह घर चला आया करता था। इस दिन वह बाईसिकल पर सवार हो घर की ओर चल पड़ा। कालेज से नहर के किनारे-किनारे होकर माल पर चला आ रहा था कि फुटपाथ पर चलती हुई मीनाक्षि ने रूमाल हिलाकर, उसका ध्यान आकर्षित कर लिया। भूषण ने साईकिल रोक ली और उतरकर फुटपाथ पर मीनाक्षि के पास चला आया। मीनाक्षि ने पूछा, "किधर जा रहे हैं?"

"कालेज से आ रहा हूँ। पहले भैया के घर जाऊँगा पीछे अपने।"

"बहुत जल्दी है क्या?"

"नहीं। क्या बात है?"

"देखिये तीन बजने में पाँच मिनट शेष है। मुझे साइकिल पर बैठाकर प्लाजा सिनेमा छोड आइये तो कृपा होगी।"

भूषण ने विचार किया और कहा, "अच्छी बात है। बैठो। पीछे कैरियर तो है नहीं। आगे आ जाओ।"

मीनाक्षि लपककर बैठ गई और भूषण ने साईकल प्लाजा की ओर बढ़ा दी।

उसने पूछा, "कौन पिक्चर लगी हुई है वहाँ?"

"सैमसन ऐंड डिलायला।"

"पिक्चर तो अच्छी होनी चाहिए।"

"चलिए देख लीजिये न।"

"कौन से क्लास में बैठोगी।"

"जिसमें जो ले जाये।"

"क्या मतलब?"

"कोई-न-कोई मित्र वहाँ मिल जायेगा। जिसमें वह जायेगा उसी में मैं जाऊँगी।"

"और यदि कोई न मिला तो?"

"एक तो मिल ही गया है।"

"कौन?"

"मिस्टर भूषण कुमार।"

भूषण हँस पडा और बोला, "मेरा तो अभी पिक्चर देखने का विचार ही नहीं बना।"

"तो बना लीजिये न।"

"आवश्यक है क्या?"

"कुछ भी समझ लें।" इतना कह मीनाक्षि सीधी होकर बैठ गई। इससे उसका सिर भूषण के मुख के नीचे आ गया। उसके सिर में लगे लिवेंडर की सुगन्धि उसको भली प्रतीत होने लगी। उसकी बाहों को उसके कोमल शरीर का स्पर्श होने लगा। भूषण को इससे रोमाञ्च हो आया।

इस समय वे प्लाजा पहुँच गए। भूषण उतरा तो मीनाक्षि भी उतर गई। उसने भूषण की साईकल थामते हुए कहा, "लपक कर जाइये और दो टिकट ले आइये।"

भूषण किंकर्तव्य-विमूढ की भाँति गया और अढाई-अढ़ाई रुपये के दो टिकट ले आया। आकर साईकल स्टैंड पर रख दी और दोनों ड्रैस सर्कल में जा बैठे।

जब पिक्चर देखकर दोनों बाहर निकले तो भूषण मन में विचार कर रहा था कि उसने कुछ अनुचित बात की है। हॉल में दोनों बाँह-में-बाँह डालकर बैठे रहे थे और ढिलायला की एक्टिंग के साथ-साथ मीनाक्षि की बाँह का दबाव उसकी बाँह पर घटता-बढता रहा था। यह उसका पहला अनुभव था, जब कि एक लडकी का वासनामय स्पर्श उसके साथ हुआ था।

पिक्चर समाप्त होने के पश्चात् जब वे बाहर खुली हवा में आये, तो भूषण को अपने व्यवहार पर पश्चाताप होने लगा। इसके विपरीत उसने देखा कि मीनाक्षि के मन में कुछ भी सोच नहीं। उसने कहा, "अब तो तुमको जल्दी नही है न? तुम अपने-आप चली जाना। मैं चलता हूँ।"

"कहाँ जा रहे है आप?"

"भैया की कोठी को।"

"मैं भी तो वहीं जा रही हूँ। कहें तो बैठ जाऊँ।" भूषण मना न कर सका।

दोनों कोठी में पहुँचे तो भूषण ने देखा कि कान्ता और जॉर्ज पहले ही लॉन में एक ओर बैठे बातचीत कर रहे थे। उसे यह कुछ भला प्रतीत नहीं हुआ। जॉर्ज को वह जानता नहीं था। वह कान्ता को क्या बता रहा है और कान्ता उसकी कौनसी बात पर इतनी मग्न है, वह विचार करने का यत्न करने लगा। उसने मीनाक्षि को साईकिल से उतारा और स्वयं कान्ता की ओर चल पडा। जॉर्ज ने उसको देखा तो कान्ता

से पूछा, "यह कौन आ रहा है ?"

कान्ता ने देखा और बताया, "मेरा भाई है।"

"मेरा परिचय करा दो।"

इस पर कान्ता ने भूषण को सम्बोधन कर कहा, "भूषण ! आओ तुमसे इनका परिचय कराऊँ।" भूषण तो पहिले ही उनकी ओर आ रहा था। कान्ता ने भूषण को बताया "यह हैं मिस्टर जॉर्ज स्टोपस, एम० ए०, ऑक्सन और अब गवर्नमेन्ट कॉलेज मे प्रोफेसर आफ लिट्रे-चर नियुक्त हुए है।"

पश्चात् उसने अपने भाई का परिचय कराया, "मिस्टर भूषण-कुमार, स्टूडेंट इन्जीनियरिंग कालेज मुगलपुरा।"

"किस श्रेणी मे पढते हैं ?" जॉर्ज ने पूछा।

"द्वितीय श्रेणी मे।"

दोनो ने हाथ मिलाया और भूषण एक कुर्सी पर, जो बैरा वहाँ ले आया था, बैठ गया।

विनोद और नलिनी बाजार गये हुए थे। वे लौटे तो जॉर्ज को घर पर आया देख बहुत प्रसन्न हुए और उसकी आवभक्त करने के लिए पूछने लगे, "चाय बनवाई जाये ?"

"मै और कान्ता दोनो सैसिल होटल मे पी आये है।"

"भूषण ! तुम पियोगे क्या ?"

"नहीं भाभी ! पहिले ही बहुत देरी हो गई है। मै जा रहा हूँ।"

"तो आये किसलिए थे ?"

"मीनाक्षि को बाईसिकल पर यहाँ छोड़ने के लिए।"

"वह कहाँ है ?"

"भीतर गई है।"

भूषण को घर जाते देख कान्ता भी तैयार हो गई। इस समय जॉर्ज ने कहा, "मिस्टर विनोद ! पापा ने यह लिफ़ाफा आपके लिए भेजा है।"

इतना कह उसने कोट की अन्दर की जेब में से एक बड़ा-सा लिफाफा निकाल कर विनोद के हाथ में दे दिया। विनोद ने चिट्ठी खोली और पढ़कर नलिनी के हाथ में दे दी। नलिनी ने ऊँचे-ऊँचे सुना दी।

"सैक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया को यह आज्ञा देते हुए प्रसन्नता होती है कि मिस्टर विनोद कुमार एम० ए०, इकानोमिक्स पंजाब सरकार के अर्थसचिव नियुक्त किये जाते हैं। यह नियुक्ति स्थाई होगी। ग्यारह सौ रुपया वेतन और फर्स्ट क्लास गैजेटिड आफिसर के नियम लागू होंगे।"

"हुर्रे!" नलिनी ने प्रसन्नता से कूदते हुए कहा, "थ्री चीयर्ज़ फार मिस्टर स्टोपस।

"पर मिस्टर जॉर्ज! तुम ने आते ही यह पत्र क्यों नहीं दिया?"

"मैं भूल गया था।"

कान्ता और भूषण यह समाचार लेकर घर पहुँचे। उनके घर पहुँचते ही भगवतस्वरूप ने पूछा, "कान्ता कहाँ गई थी आज?"

"मैं भैया के घर गई थी।"

अब भूषण से नहीं रहा गया। उसके मन की सर्वोपरि बात उसके मुख से निकल गई, "कान्ता! तुम तो जॉर्ज स्टोपस के साथ सैसिल में चाय पीने गई थी!"

"और तुम मीनाक्षि के साथ कहाँ गए थे?"

भगवतस्वरूप और सुशीला मुख देखते रह गए। भूषण ने तुरन्त उत्तर दिया, "मैं तो सिनेमा देखने गया था। वहाँ मीनाक्षि मिल गई। उसने कहा कि मैं उसको बाईसिकिल पर भैया के घर पहुँचा दूँ, सो उसे पहुँचाने गया था। वहाँ तुम जॉर्ज के साथ घुल-घुलकर बातें करती दिखाई दीं।"

"कैसे घुल-घुल कर?"

"ऐसे।" उसने कान्ता के मुख के पास मुख लेजा कर फुस-फुस कर होंठ हिलाकर बता दिया।

भगवतस्वरूप के मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई। सुशीला ने कहा, "तुम दोनों ही नालायक हो गए हो। पिता से धन लेकर व्यर्थ गँवा रहे हो।"

"मैं एक पाई भी व्यर्थ खर्च नहीं कर रही माताजी! कोई फोकट में चाय पिलाने ले जाये तो क्या करूँ?"

"और कोई फोकट में ही बाईसिकल की सवारी करने लगे तो क्या किया जाये? क्यों भूषण! यही बात है न?" भगवतस्वरूप ने व्यंगात्मक भाव में पूछा।

भूषण पिताजी का आशय समझ गया और अपने मन की बात को स्पष्ट रूप में बताने लगा, "पिताजी मैं कालेज। से आ रहा था कि मीनाक्षि ने आवाज़ देकर रोक लिया। उसने कहा कि समय कम है और मैं उसको प्लाज़ा तक बाईसिकल पर ले जाऊँ। वह मेरा धन्यवाद करेगी। मैंने इसको साधारण-सी बात समझी और वह भाभी की बहन है। मैं उसे छोड़ने चला गया। वहाँ जाकर मेरा भी मन पिक्चर देखने को कर आया। पश्चात् उसको भैया की कोठी पर छोड़ने गया था।"

कान्ता ने इस समय बात को बदलने के लिए कह दिया, "पिताजी, भैया की, इकानोमिक ऐडवाईज़र टू दि पंजाब गवर्नमैन्ट की जगह पर नियुक्ति हो गई है। ग्यारह सौ रुपया मासिक वेतन होगा और फर्स्ट-क्लास गैजेटिड ऑफिसर का ग्रेड।"

"किस ने बताया है तुम को?"

"मिस्टर जॉर्ज एक चिट्ठी लाये थे। उसमें यह लिखा था। भैया अब शीघ्र ही इस स्थान पर चले जायेंगे।"

भगवतस्वरूप को अपने लड़के की एक अच्छे स्थान पर नियुक्ति से प्रसन्नता तो हुई, परन्तु यह बात कि उसका लड़का अपनी योग्यता के कारण नहीं, प्रत्युत किसी अन्य कारण से उन्नति कर रहा है, खटक रही थी। इससे उसने इस समाचार को न तो बहुत शुभ समझा और न ही इसको बुरा कहने में उसके पास कोई प्रमाण था। इस समाचार

ने एक बात की कि कान्ता और भूषण डाट पडने से बच गये। भगवत-स्वरूप को उनकी बात पर विचार करने को अवसर ही नहीं रहा।

कान्ता को तो अपने व्यवहार मे कोई दोष प्रतीत नहीं हुआ। वह और जॉर्ज साहित्यिक विषयो पर ही बातचीत करते थे। इस पर भी जब जॉर्ज उसको यह सुनाता था :—

"ओ ! शी डथ टीच दि टौर्चिज टु बर्न ब्राईट
इट सीमस शी हैंग्ज अपौन दि चीक आफ नाईट,
लाइक ए रिच ज्यूअल इन एन इथिओप्स ईयर,
ब्यूटि टू रिच फॉर यूज, फौर अर्थ टू डियर,
शी शोज ए स्नोई डव ट्रूपिग विद क्रोज
ऐज यौन्डर लेडी ओवर हर फैलो शोज।
· · ····
डिड माई हार्ट लव टिल नौ ? फोर-स्वीपर इट साईट,
फॉर आई नैवर सा ट्रू ब्यूटि टिल दिस नाईट।

और सुनाते हुए व्यग्रता से उसके मुख पर देखता था, तो कान्ता को अलौकिक आनन्द का अनुभव होता था। वह मन मे विचारती थी कि यह उस महान् कवि को भाषा और निबन्ध-कला के कारण है, अथवा जॉर्ज के कहने के ढग के कारण। वह अभी इन वाक्यो के पीछे जॉर्ज के मन में कोई छुपे भाव का भान नहीं करती थी।

इसके विपरीत भूषण उससे आयु मे और ज्ञान मे बडा था। वह ससार को अधिक समझने लगा था। उसको वह क्षण स्मरण था, जब बाईसिकल पर सवार प्लाजा को जाते हुए उसने मीनाक्षि को कहा था, 'मेरा तो अभी पिक्चर देखने का विचार नहीं बना।' और मीनाक्षि, यह कहते हुए, 'तो बना लो न' पीछे को झुकी थी। उसने अपना लिवेंडर से सुवासित सिर उसकी नाक के नीचे कर दिया था और अपनी

पीठ उसकी छाती पर रख दी थी, तो उसके मन में क्या भाव उत्पन्न हुआ था। उसको वह भी स्मरण था, जब सिनेमा हाल में डिलायला ने सैमसन को मूर्ख बनाने के लिये, उससे प्यार करना आरम्भ किया था और मीनाक्षि की बाँह ने उसकी बाँह को जोर से दबा लिया था।

वह पीछे इस सब बात को स्मरण कर विचार करता था कि सैमसन की भाति वह भी मूर्ख बनाया गया था। मीनाक्षि जेब में दाम लिये बिना पिक्चर देखने चल पडी थी और यदि वह मार्ग में नहीं मिलता तो वह यही फुसलाने का ढग किसी अन्य पर प्रयोग करती और दो-अढाई रुपये के लिये उसकी वासना को उत्तेजित करती।

इस विचार के आते ही वह काप उठा। इस पर भैया की उन्नति पर उसको विचार करने का अवसर मिल गया। विनोद को एक प्राईवेट कालेज में प्रोफेसर बने एक वर्ष ही हुआ था और अब एकदम अढाई सौ से ग्यारह सौ का स्थान मिल गया। वह मीनाक्षि के व्यवहार से नलिनी के व्यवहार का अनुमान लगाने लगा था। वह विचार करता था कि कहीं उसने भी बूढे स्टोपस की वासना को उत्तेजित कर यह चमत्कार तो नहीं कर दिखाया। इस प्रकार के विचारों में वह रात भर सो नहीं सका। सब परिवार के लोग मकान की छत पर सोते थे। अभी सितम्बर का महीना था और नीचे काफी गर्मी होती थी। भगवत-स्वरूप ने जब से कान्ता और भूषण की सगत के विषय में जाना था, तब से ही चिन्ता अनुभव कर रहा था। वह मन में यह विचार कर रहा था कि विनोद उन्नति पा गया है, क्या यह अच्छी बात नहीं ? बुद्धि कहती थी कि वह सुखी हो जावेगा, पर मन कहता था कि उन्नति का यह ढग ठीक नहीं।

अब उसको भूषण पर नलिनी की बहन डोरे डालती हुई प्रतीत हुई और कान्ता एक ऐंग्लो-इडियन के सम्पर्क में आ गई प्रतीत हुई। क्या इसमें कोई खराबी है ? वह सोचता था कि यदि भूषण मीनाक्षि से विवाह कर लेगा तो नलिनी की भाँति वह भी उसको किसी ऊँची

पदवी पर ले जा सकती है। तो क्या इसमें कोई हानि है?

भगवतस्वरूप स्वयं एक दुकानदार का लड़का था और यदि उसके बच्चे ऊँची पदवियों पर पहुँचें तो यह परिवार के लिए एक अति मान की बात थी। इस पर भी उसके संस्कार, कि यह उन्नति, मनुष्य-जीवन के सर्वस्व, स्वाभिमान के बलिदान से प्राप्त हो रही है,' उसको बेचैन कर रहे थे। वह इस बात का विचार कर कि उसकी पन्द्रह-सोलह वर्ष की लड़की एक अपरिचित से प्रेम-प्रलाप करती है अथवा उसका लड़का एक युवती के प्रेमोद्गारों को सुनता है, वह पागल हो जाता था। वह करवटें बदल-बदलकर रात व्यतीत कर रहा था।

सुशीला को भी यह सब कुछ अस्वाभाविक प्रतीत हो रहा था, परन्तु अपने पति की बुद्धिमत्ता पर विश्वास रखने से और भगवान पर भरोसा करने से वह निश्चिन्त हो सो गई थी।

पिता और पुत्र के मन में कुछ ऐसा भास हो रहा था कि दोनों जाग रहे हैं। उनके अन्तरात्मा एक दूसरे के भावों को समझ रहे प्रतीत होते थे। रात के दो बज चुके थे कि एकाएक भगवतस्वरूप उठकर चारपाई पर बैठ गया। वह सो न सकने से बेचैन हो उठा था। भूषण ने पिता को खाट पर बैठते देखा तो स्वयं भी उठकर बैठ गया। उसने पूछा, "पिताजी! क्या बात है?"

"तो तुम जाग रहे हो?"

"हाँ! नींद नहीं आ रही।"

"क्यों?"

भूषण चुप रहा। कुछ उत्तर दे नहीं सका। भगवतस्वरूप ने अन्य सब को सोए देख, भूषण से कहा, "नीचे चलो।"

पिता पुत्र दोनों नीचे की मंजिल पर उतर आये। वहाँ प्रकाश कर दोनों बैठ गये। पिता ने पूछा, "क्या बात है?"

भूषण ने आँखें नीची किये हुए कहा, "मुझको कल सायंकाल की घटना परेशान कर रही है।" यह कह उसने अपने मन में उठ रहे

विचारों को स्पष्ट रूप मे वर्णन कर दिया।

भगवतस्वरूप ने पुत्र के मन मे वही विचार उठते देख, जो उसके अपने मन मे उठ रहे थे, गम्भीर हो कहा, "देखो भूषण! विनोद की कैसे उन्नति हुई है, मैं नहीं जानता। मैं बिना प्रमाण के किसी को दोष नहीं दे सकता। पर एक बात तो तुम भी अनुभव करते हो कि स्त्री यदि चतुर हो तो पुरुष को लूटकर खा सकती है।

"मिस्टर स्टोपस ने अपनी जेब से कुछ नहीं दिया। उसने किसी साथी, सरकारी अधिकारी को कहकर राज्य के कोष को लूटा है। इतनी उच्च श्रेणी की नौकरियाँ प्रतियोगिता की परीक्षा होने के पश्चात् ही मिलनी चाहिएँ। यदि विनोद-जैसी ही किसी परीक्षा मे सफल होकर यह पद पाता तो मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होती, परन्तु यह तो डाका डाला गया है। इससे मुझको कुछ भी प्रसन्नता नहीं हुई।

"मिस्टर स्टोपस ने क्यों विनोद पर इतनी कृपा की है, मैं नहीं जानता। यह तो भविष्य ही प्रकट करेगा। इस समय तो मेरी चिन्ता का कारण तुम ही हो। क्या तुम भी अपनी पत्नी की सिफारिश पर उन्नति करने के पक्ष मे हो? यदि नहीं तो भूषण! किसी सरल चित्त हिन्दू लड़की से विवाह करना, जो तुम्हे भारी व्यय करने पर विवश न करे। अपने व्यय को कम रखोगे तो फिर निर्वाह के लिए कोई अनुचित बात करने पर विवश न होओगे।"

"पिताजी!" भूषण ने लज्जा अनुभव करते हुए कहा, "मुझको मीनाक्षि पर पाँच रुपये व्यय करने का भारी शोक है। इस कारण नहीं कि ये मेरे पास थे नहीं, प्रत्युत् इस कारण कि मेरी इच्छा सिनेमा देखने को नहीं थी और डिलायला की भाँति उसने मुझको इतना व्यय करने पर लुभाया। मुझमे वासना उत्पन्न कर यह काम उसने कराया। मुझको इस अपनी पराजय पर शोक है और मै अपने मन को इस विचार से विक्षुब्ध पाता हूं।"

"ठीक है। यह वास्तव मे ही लज्जा की बात है। प्रश्न यह है कि

किस प्रकार तुम अपने चित्त को इतना सुदृढ कर सकोगे कि फिर कभी ऐसी पराजय न हो। नगर मे अनेक मीनाक्षियाँ घूमती-फिरती हैं। यदि इस प्रकार फिसलने लगे तो सर्वनाश है। मेरी सम्मति मानो तो भविष्य में कभी ऐसी लडकियो के सम्पर्क में नहीं आना चाहिए, जिनमे तुम्हारा परिचय अपने अथवा उनके माता-पिता द्वारा न हुआ हो और फिर अपने अथवा उनके माता-पिता के सम्मुख ही उनसे भेंट करनी चाहिए।"

भूषण का परिचय लडकियों से था ही नहीं। उसके कालेज में लड-कियाँ नहीं पढ़ती थीं।

मीनाक्षि से भी परिचय भाभी नलिनी के कारण ही हुआ था। उसने निश्चय किया कि वह मीनाक्षि से उसके माता-पिता के सम्मुख ही बात किया करेगा।

यह तो उसने पिता से कहा, परन्तु उसने अपने मन में निश्चय कर लिया था कि वह मीनाक्षी से बात तक नहीं करेगा। उसको उसकी सबसे बुरी बात यह प्रतीत हुई थी कि वह बिना इस विचार के कि कौन उसको सिनेमा दिखायेगा, सिनेमा देखने चल पडी थी और फिर इस तुच्छ-सी बात के लिए वासना उत्पन्न करने लग गई थी।

•

बड़ी पदवी पाने के उपलक्ष मे विनोद ने अपने मित्रों, नलिनी की सहेलियों और मित्रो और दोनो पक्षों के सम्बन्धियो तथा नये कार्यालय के और छोडने वाले कालेज के अधिकारियो को एक भोज दिया। इस अवसर पर उसने नाच का प्रबन्ध भी कर डाला। नई पदवी का चार्ज लेने पर उसने तीनसौ रुपया मासिक की एक बडी कोठी किराये पर ले ली थी। यह कोठी रेस कोर्स रोड पर थी। इसमें एक बहुत बड़ा घास का लान था। कोठी के पीछे एक पुष्प-वाटिका थी। कोठी मे बारह कमरे थे और एक बहुत बडा हाल था। परन्तु इस बॉल के लिए इतने लोग

आमन्त्रित थे कि यह बड़ा हाल भी छोटा पड़ता था। इस कारण लान में शामियाना लगाकर भोज तथा नाच का प्रबन्ध किया गया।

नलिनी स्वयं तो आठवें मास में थी और नाच नहीं सकती थी, परन्तु उसने ही आग्रह किया था कि यह भोज होना ही चाहिए। इसमें एक कारण यह था कि मिस्टर स्टोपस पैन्शन लेने से पहले छुट्टी लेकर घर जा रहे थे। नलिनी इस भोज में उनको मुख्य अभ्यागत बनाने वाली थी।

एक शनिवार सायं यह समारोह किया गया। सैसिल होटल वालों को खाने का प्रबन्ध सौंपा गया। उसी होटल के बैंड वाले मिस्टर टी० सिबैस्चियन को नाच में बैंड बजाने का प्रबन्ध मिला। पचास के लगभग परसने वाले बैरे थे और तीनसौ मेहमान आमन्त्रित थे।

निमन्त्रण पत्र भगवतस्वरूप, सुशीला देवी, भूषण, कान्ता, कला और शोभा सबको पृथक्-पृथक् आये थे। भगवतस्वरूप ने निश्चय किया था कि वह इस भोज पर नहीं जाएगा। सुशीला के जाने का प्रश्न ही नहीं था। वह अपने पति के बिना किसी भोज अथवा समारोह में जाना अनुचित समझती थी।

भूषण और कान्ता को निमन्त्रण पत्र उनके कालेज के पतों पर मिले थे। भूषण ने तो कार्ड पाते ही निश्चय कर लिया था कि वह इस भोज में सम्मिलित नहीं होगा। कान्ता की प्रबल इच्छा थी कि वह जाय।

भोज के दो दिन पूर्व भूषण पिताजी से आज्ञा लेने आया। वह मन में सोच रहा था कि परिवार के विचार से यदि पिताजी ने भोज में जाना उचित समझा तो वह उनकी आज्ञानुसार कार्य करेगा। वह कालेज से आया तो निमन्त्रण स्वीकार करने का प्रश्न उपस्थित हो गया। उसने रात्रि के भोजनोपरान्त कहा, "पिताजी! भैया ने अपनी उन्नति के उपलक्ष में भोज दिया है।"

"हम सबको निमन्त्रण आये हैं। उनमें तुम्हारा और कान्ता का नहीं है।"

"मुझको मेरे कालेज के पते पर भेजा गया था।"

"मुझको उनका चपरासी कालेज मे दे गया था।" कान्ता ने कहा।

"तो तुम जा रहे हो?" भगवतस्वरूप ने भूषण से पूछा।

"मेरी जाने की इच्छा नहीं, पर यदि आप आज्ञा देंगे तो चला जाऊँगा।"

"पर मैं तो जा रही हूँ।" कान्ता ने अपने मन की बात कह दी।

"हम नहीं जा रहे।" भगवतस्वरूप ने अपने तथा सुशीला के विषय मे कहा।

"पिताजी! क्यों?" कान्ता ने उत्सुकता-वश पूछा। सुशीला को उसका इस प्रकार पूछना अनुचित प्रतीत हुआ। इसके विपरीत भगवतस्वरूप चाहता था कि उससे पूछा जाय, जिससे वह अपने मन की बात कह सके। इस कारण उसने बिना किसी प्रकार का रोष प्रकट किए कह दिया, "देखो कान्ता! इस भोज के साथ नाच होगा। इस कारण स्वाभाविक रूप मे भोजन के पश्चात् शराब भी पी जायगी और फिर शराब के नशे में स्त्री-पुरुष नाचेंगे और सम्भव है, कि कुछ ऐसी बात भी हो जाय जो अशिष्टता मानी जाती है।"

"पर पिताजी! हम न तो शराब पियेंगे और न ही कोई अशिष्टता का व्यवहार करेंगे। हमको दूसरों से क्या?"

"पर दूसरों को अशिष्टता करते देखना भी तो अशिष्टता है।"

"पिताजी! दुनिया में अनेक विचार और व्यवहार वाले लोग हैं। इसका यह अर्थ तो नहीं कि हम संसार छोड़कर चले जायें।"

"तो तुम जाना चाहती हो?"

"मैंने मिस्टर स्टोपस से एक-दो राऊंड नाचने का वचन दिया है।"

"पर तुम नाचना जानती हो क्या?"

"मैं एक-दो बार सैसिल में उनके साथ नाच चुकी हूँ।"

"तो तुम तो अवश्य जाओगी?"

"मेरा जाना अत्यावश्यक है।"

"और कला, शोभा! तुम भी जाना चाहती हो?"

"हाँ पिताजी!"

"अच्छी बात है। तो फिर भूषण सबको ले जाएगा।"

"मेरी इच्छा जाने की नहीं है पिताजी!"

"तुम अपनी इच्छा से तो जा नहीं रहे। यदि तुम भी मेरा कहना नहीं मानोगे तो मैं स्वयं जाऊँगा। तुम्हारी बहनों के लिए किसी को तो जाना ही होगा।"

भूषण चुप रहा। उस रात बात वहीं समाप्त हो गई। अगले दिन प्रातः कालेज जाने से पूर्व भूषण पिताजी को कह गया कि शनिवार को वह आयेगा और यदि कान्ता आदि को जाना हुआ तो उनको साथ ले जायगा।

सुशीला ने कहा, "भूषण को जाने के लिए आपने क्यों कहा है?"

"सब बच्चे जायँगे तो उसको रोकना ठीक नहीं। मैं सबके साथ जाऊँगा ही।"

"मुझको तो यह सब कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता। कान्ता तो बहुत बिगड गई है।"

"ऐसा प्रतीत होता है कि भूषण के मन को ठोकर लगी है और कान्ता अभी तक बची चली आती है।"

"आप उसको कालेज से उठा क्यों नहीं लेते?"

"तुमने ही तो कहा था कि लड़की कुछ तो पढ़ी-लिखी होनी चाहिए। पश्चात् वर ढूँढने में सुगमता रहेगी।"

"पढ़ने से मेरा अभिप्राय यह तो था नहीं कि एक अंग्रेज़ युवक के साथ घूमती फिरे।"

"यह पढ़ाई का दोष नहीं। यह तो विनोद का बनाया वातावरण है और उस वातावरण से उसके बहन-भाइयों को बचाकर रखना अति कठिन हो रहा है।"

भोज के दिन अपने साधारण कपड़ों में कान्ता, भूषण इत्यादि वहाँ

पहुँच गए। भगवतस्वरूप उनके साथ नहीं गया। वह भोज समाप्त होने के समय पहुँचा। विनोद, जो मेहमानों की आवश्यकताओं के विषय में जानकारी प्राप्त कर रहा था, पिता को आया देख उनके पास आया और बोला, "पिताजी! आप कब आये?"

"मैंने खाना तो कुछ था नहीं। इस कारण भोज के समाप्त होने के समय बच्चों को लेने आ गया हूँ।"

"अभी?"

"क्यों, अब क्या है?"

"पिताजी! वास्तविक कार्यक्रम तो अब आरम्भ होगा।"

"तो मैं कुछ देर प्रतीक्षा कर लूँगा।"

विनोद ने अपने चारों ओर देखा और कहा, "आप यहाँ बैठिये। मिस्टर स्टोपस अभी आवेंगे तो आपका उनसे परिचय करा दूँगा।"

"उससे क्या होगा?"

"मेरी सहायता करने वाले का परिचय प्राप्त करना ठीक ही रहेगा पिताजी।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा।"

पिता को 'डांसिंग एनक्लेव' के एक ओर कुर्सी पर बिठाकर विनोद अन्य मेहमानों को पूछने चला गया। इस समय लोग खाने की मेजों से उठ-उठकर पोशाक बदलने वाले कमरों में जाने लग गए थे। पुरुषों के लिए पृथक् स्थान था और स्त्रियों के लिए पृथक्। नलिनी ने भूषण को देखा तो पूछने लगी, "यह कैसे कपड़े पहन आये हो तुम?"

"कैसे हैं भाभी?"

"इनसे नाचोगे?"

"मैं नहीं नाचूँगा।"

"वाह! मीनाक्षि तो कई दिनों से तुम्हारे साथ नाचने के लिए कह रही है।"

"मुझको नाचना नहीं आता।"

"वह सिखा देगी तुम्हें।"

"यहीं पर ?"

"हाँ! इसमे कुछ भी कठिन नहीं।"

"पर मेरे पास तो वैसी पोशाक है नहीं ?"

"नहीं है तो ऐसे ही सही।"

कान्ता को वह अपने साथ कपड़े बदलने के कमरे मे ले गई। भूषण नलिनी के कहने पर कि मीनाक्षि उससे नाचने के लिए कई दिन से कह रही है, बहुत चिन्ता अनुभव करने लगा था। वह विचार करने लगा था कि यदि वह वहाँ से शीघ्र ही चल दे तो ठीक रहे। परन्तु कान्ता ने जॉर्ज के साथ नाचना था और उसी के साथ तो वह वहाँ आया था। इससे चले जाने का तो प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता था।

इस समय मीनाक्षि नाच की पोशाक पहन, औरतों के ड्रेस-रूम में से निकली। उसने भूषण को वहाँ गम्भीर विचार में खड़े देखा। उसे देख वह उसकी ओर लपकी और बोली, "भूषण! कहाँ घूम रहे हो तुम ?"

मीनाक्षि आसमानी रग का गौन पहने थी, जो कमर पर बहुत कसा हुआ था। इससे उसकी कमर पहले से भी पतली प्रतीत हो रही थी। स्कर्ट घुटनों से ऊपर तक ही रह गया था। नीचे जुर्राबें चमड़े के रग की पहने हुए थी। पाँव में ऊँची एडी का जूता था। गौन में से पूरी बाँहें नगी थीं, गला और छाती का ऊपर का भाग नगा था। यहाँ तक कि वक्षोज के ऊपर की रेखाएँ दिखाई देती थीं। सिर के बाल कन्धो तक लटक रहे थे और उनमें एक लाल गुलाब का फूल टाका हुआ था। मुख, गर्दन, बाँहों और छाती के नग्न भाग पर पाऊडर लगा होने से, वे स्वाभाविक से अधिक गौर-वर्ण प्रतीत हो रही थीं। होठों और गालों पर सुर्खी थी। गले में वह एक सोने का लौकेट पहने थी, जिसमें एक पैंडेल लटक रहा था। इस पैंडेल में एक हीरा लगा था, जो बिजली के प्रकाश में जगमग-जगमग कर रहा था।

मीनाक्षि बहुत ही सुन्दर प्रतीत हो रही थी। उसने भूषण के समीप आकर उसकी कमर में हाथ डालकर कहा, "मैं आज तुम्हारे संग नाचूँगी।"

"पर मुझको तो नाचना आता नहीं।"

"यह कोई ऐलजैबरा के सवाल तो हैं नहीं। बस मेरी कमर में हाथ डाल, जैसे मैं करूँ वैसा तुम भी करते जाना।"

"नहीं, मीनाक्षि!"

"वाह यह भी कोई बात हुई। चलो।"

"अच्छा तुम चलो मैं आता हूँ।" भूषण इस समय तक मीनाक्षि का आकर्षण असह्य पाने लगा था। उसने वहाँ से टल जाने में ही कल्याण समझा।

"देखो भाग नहीं जाना। आज तीन महीने के बाद तुमको देखा है।"

एक पलक की झपक में मीनाक्षि ने अपना मुख गोलकर चूमने का अभिनय किया और भाग गई। भूषण किंकर्तव्य-विमूढ़ की भाँति खड़ा रह गया। मीनाक्षि उसको अति सुन्दर जंची थी, परन्तु वह सोचता था कि जो लड़की इतनी-सी बात पर मुख चूमती फिरती है। वह क्या कुछ नहीं कर सकती। भूषण के मन में विचार आया कि किसी ऐसे एकान्त स्थान पर बैठकर छिप जाये, जहाँ मीनाक्षि उसको पा न सके।

इस विचार के आते ही वह वहाँ से चल पड़ा। एक कमरे से दूसरे में और दूसरे से तीसरे में चलता गया। कोठी के पिछवाड़े के एक कमरे में, जिसमें लैम्प बुझा हुआ था, वह जा पहुँचा। उसमें कोई नहीं था। वहाँ उसको शान्ति मिली। वह टटोलकर एक आराम कुर्सी पर बैठ गया। उसको साहस नहीं हुआ कि वहाँ प्रकाश करे। उसके मन में भय था कि यदि मीनाक्षि उसको पा गई और उसने उससे नाचने का आग्रह किया तो वह न नहीं कर सकेगा।

भूषण के मस्तिष्क पर मीनाक्षि के व्यवहार का इतना बोझ पड़ा कि वह थका हुआ अनुभव करने लगा। इस एकान्त में पहुँचकर वह बोझ उतरा तो उसको झपकी आ गई। वह कुर्सी पर ढासना लगाकर सो गया।

कितने काल तक वह सोया रहा, उसको ज्ञान नहीं रहा। उसकी नींद उसी कमरे में दो व्यक्तियों के परस्पर बातें करने से खुली। स्वरों से उसने अनुमान लगाया कि एक पुरुष है और दूसरी स्त्री।

पहले तो उसके मन में आया कि खाँसकर उनको सन्केत कर दे कि उनकी बातों को सुनने वाला वहाँ कोई है। फिर कुछ विचारकर वह चुप कर रहा। वह नहीं जानता था कि वे कितने काल से वहाँ बात-चीत कर रहे हैं और क्या-क्या बात हुई है। इस समय उनको सन्केत करने का अभिप्राय यह होगा कि उसने उनकी कुछ बातें सुनने के पीछे यह सकेत किया है। यह ठीक न मान, वह कुर्सी पर ढासना लगाकर और आँखें मूँदकर पड़ा रहा।

पुरुष कह रहा था, "मैं अब लाहौर नहीं लौटूँगा। मैं आशा करता हूँ कि तुम त्रावनकोर आओगी। वहाँ मैंने अपना एक मकान बनवा लिया है। उसमें तुम्हारे ठहरने का प्रबन्ध कर दूँगा।"

"मैं आपकी बहुत आभारी हूँ।" बात करने वाली स्त्री का उत्तर था।

"फिर वही बात। देखो मैं तुमसे प्रेम अवश्य करता हूँ, परन्तु यह प्रेम नहीं, जिस कारण तुम्हारे पति को यह तरक्की मिली है। इसका रहस्य यह है कि तुम ईसाई हो। तुम्हारे पति महोदय भी ईसाई हो गये हैं। आज हिन्दुस्तान में ईसाई अंग्रेजी राज्य की तीसरी 'डिफेंस लाईन' है। प्रथम सुरक्षा की दीवार है ब्रिटिश सेना। दूसरी दीवार है ऐंग्लो इंडियन कम्यूनिटी और तीसरी दीवार है हिन्दुस्तानी ईसाई समाज। जितनी भी ऊँची पदवियाँ हैं, वे इन तीनों जाति के लोगों के लिए हैं।

"मैं देख रहा हूँ कि अब तुम्हारी बहन भी सींग निकाल रही है। वह तुम्हारे देवर पर दृष्टि लगाये हुए है। उसकी पढ़ाई समाप्त होने में अभी तीन वर्ष हैं। तब तक कोई-न-कोई साधन निकल आयेगा। विश्वास रखो कि भारत की सरकार ईसाईयत के प्रचार के लिए वचन-बद्ध है और तुम्हारी जाति में सब पढ़े-लिखे लोग अच्छी पदवियों पर पहुँच जायेंगे।"

"अब तो मेरे 'कन्फाइनमैंट' के दिन समीप है। उसके तीन महीने बाद मैं त्रावनकोर आने का यत्न करूँगी और कम-से-कम दो महीने तो वहाँ रहने का अवसर मिलेगा ही।"

"आल राईट! गुड लक! बेबी को साथ लाना।"

पश्चात् दोनों कमरे से बाहर निकल गए। भूषण इस वार्तालाप को सुन स्तब्ध रह गया। एक बात निश्चित थी कि मिस्टर स्टोपस नलिनी से प्रेम करता है, परन्तु विनोद की तरक्की ईसाई होने के नाते है।

मिस्टर स्टोपस ऐंग्लो इण्डियन कम्युनिटी में से है और अंग्रेजी जाति इस कम्युनिटी को अपना आश्रय मानती है। हिन्दुस्तानी ईसाई भी अंग्रेजी सरकार के पक्ष में माने जाते हैं। यह रहस्योद्घाटन भूषण के मस्तिष्क में हलचल मचाने लगा था। इसके साथ ही मिस्टर स्टोपस का कहना कि मीनाक्षि उस पर दृष्टि लगाये हुए है, उसे अरुचिकर लगा।

आज उसको अपने पिता का कहना सार्थक प्रतीत हुआ। वह कहते थे कि विनोद की तरक्की कुछ कारणों से हुई है, जो उसकी योग्यता से सम्बन्ध नहीं रखते। इसके साथ उसको यह भी समझ आया कि मीनाक्षि से विवाह होने पर उसकी भी उन्नति हो सकेगी। परन्तु, वह सोचता था कि क्या यह एक वाञ्छनीय बात है ?

इतना विचार कर वह उठ खड़ा हुआ और बाहर बरामदे में चला आया। मिस्टर स्टोपस और नलिनी चले गए थे। कोठी के लान में बैंड बाजा बज रहा था। इसका अभिप्राय यह था कि लान में नाच हो रहा है। उसने प्रकाश में घड़ी देखी। रात का एक बज गया था, अर्थात्

वह दो घण्टे से ऊपर सोया था। अब उसको कान्ता, कला और शोभा का ध्यान आया। वह तुरन्त उस ओर घूमा, जिधर नाच के लिए शामियाना लगा था। वह अभी कोठी के मध्य वाले बरामदे में ही था कि सामने से कान्ता और जॉर्ज बाँह-में-बाँह डाले हुए आते दिखाई दिये। कान्ता ने उसको देख पूछा, "भूषण! कहाँ रहे हो तुम?"

"क्यों, क्या हुआ है?"

"मीनाक्षि तुमको ढूँढ रही थी।"

"ढूँढने दो। तुम घर कब चलोगी?"

"अभी तो दो घण्टा भर यह चलेगा।"

जॉर्ज ने शराब पी हुई थी। उसने भूषण की पीठ ठोंकते हुए कहा, "माई गुड बॉय। गो ऐंड सीक युअर डव। शी इज़ इन दि कम्पनी ऑफ क्रोज़।"

भूषण ने कान्ता की ओर देख कर कहा, "कान्ता! चलना चाहिए। पिताजी नाराज़ होंगे।"

"पिताजी बाहर बैठे हैं। मैंने उनको बताया है कि अभी कुछ देर में चलेंगे।"

"पिताजी आये हैं?"

"हाँ।"

भूषण शामियाने की ओर चला गया और कान्ता और जॉर्ज कोठी के बीचो-बीच वाले बरामदे में से होते हुए पिछवारे की पुष्प-वाटिका में चले गए।

भूषण को देख भगवतस्वरूप ने हाथ से संकेत कर समीप बुला लिया। जब वह आया तो उसने देखा कि कला पिताजी के पास बैठी है। उसने उनसे पूछा, "शोभा कहाँ है, पिताजी?"

"वह भीतर सो रही है। तुम कहाँ थे?"

"मैं थक गया था। एक कमरे में ज़रा आराम करने बैठा कि सो गया। नींद खुली है तो चला आया हूँ।"

"वह चुड़ैल तुमको ढूँढ रही थी।"

"कौन, मीनाक्षि?"

"हाँ! जरा उसकी सूरत देखो न कैसी बन-ठनकर खड़ी है।"

भूषण ने देखा, वह एक युवक के साथ नाच रही थी। उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह आवश्यकता से अधिक अपने साथी के साथ चिपट रही है। इस पर भी दोनों बाजे के सुर-ताल के साथ चक्कर काट रहे थे।

बाजा बन्द हुआ। नाच करने वाले जोड़े खड़े हो गए और परस्पर बातें करने लगे, तथा हाथ-में-हाथ डाले हुए इधर-उधर घूमने लगे। मीनाक्षि भी अपने साथी को लिये हुए शामियाने के एक कोने में, जहाँ शराब का बूथ था, जा खड़ी हुई। वहाँ एक-एक पैग दोनों ने पिया और फिर हाथ-में-हाथ पकड़े हुए, अगले डाम के लिए बैंड बजने की प्रतीक्षा करने लगे। इस समय जॉर्ज और कान्ता भी टहलते हुए कोठी के पिछवाड़े से वहाँ आ गए। दोनों कुछ समय तक मीनाक्षि से बातें करते रहे। पश्चात् दोनों उस ओर चल पड़े, जिधर भगवतस्वरूप और भूषण बैठे थे। इस समय मीनाक्षि की दृष्टि इनकी ओर आ पड़ी। उसने भूषण को देखा, तो अपने साथी को छोड़ उसके पास आ खड़ी हुई और पूछने लगी, "भूषण! किधर गए थे तुम?"

"यहीं तो था।"

"मैंने तो बहुत ढूँढा है तुमको। अब मेरे साथ तुम नाचोगे।"

"तुम्हारे साथ नाचने के लिए वह भद्र पुरुष खड़ा है।"

"वह कौए की भाँति काला और गधे की तरह बदसूरत है।" यह वह शराब के नशे में कह रही थी।

"मैं नहीं नाचूँगा।"

"क्यों?"

"मुझको तुम्हारे पास से शराब की बू आती है।"

वह हँस पड़ी और बोली, "थोड़ी तुम भी पी लो, तब बू नहीं आयेगी।"

वह दो घण्टे से ऊपर सोया था। अब उसको कान्त
का ध्यान आया। वह तुरन्त उस ओर घूमा, जिधर
याना लगा था। वह अभी कोठी के मध्य वाले व
सामने से कान्ता और जॉर्ज बाँह-में-बाँह डाले हुए
कान्ता ने उसको देख पूछा, "भूषण! कहाँ रहे हो

"क्यों, क्या हुआ है?"

"मीनाक्षि तुमको ढूँढ रही थी।"

"ढूँढने दो। तुम घर कब चलोगी?"

"अभी तो दो घण्टा भर यह चलेगा।"

जॉर्ज ने शराब पी हुई थी। उसने भूषण की पी
"माई गुड बॉय। गो टैंड सीक यूअर डव। शी
ऑफ कोर्स।"

भूषण ने कान्ता की ओर देख कर कहा, "कान्ता
पिताजी नाराज होंगे।"

"पिताजी बाहर बैठे हैं। मैंने उनको बताया है
में चलेंगे।"

"पिताजी आये हैं?"

"हाँ।"

भूषण शामियाने की ओर चला गया और का
के बीचो-बीच वाले बरामदे में से होते हुए पिछवारे
चले गए।

भूषण को देख भगवतस्वरूप ने हाथ से स
लिया। जब वह आया तो उसने देखा कि कला रि
है। उसने उनसे पूछा, "शोभा कहाँ है, पिताजी?

"वह भीतर सो रही है। तुम कहाँ थे?"

"मैं थक गया था। एक कमरे में जरा आरा
गया। नींद खुली है तो चला आया हूँ।"

"तुम तो जा ही नहीं रहे थे। कान्ता ने हठ की थी। सो उससे पूछना, ठीक रहा या नहीं ?"

"जॉर्ज स्टोपस गवर्नमेंट कालेज मे प्रोफेसर है। उससे किसी अनुचित बात की आशा नहीं करनी चाहिए।"

"उचित और अनुचित अपने-अपने समाज की अवस्था पर निर्भर होता है बेटा! रात जो कुछ हमने देखा है, वह अपने समाज में सर्वथा अनुचित माना जाता है, यद्यपि उनके समाज में वह सर्वथा उचित ही होगा।"

"तब तो कुछ बहुत चिन्ता की बात नहीं। मै समझता हूँ कि कान्ता का मिस्टर स्टोपस से विवाह हो जाएगा। वह उनके समाज मे ही चली जायगी।"

"तब भी कुछ तो है। परन्तु उनके समाज मे जब तक विवाह न हो जाय तब तक लड़कियों को फलर्टेशन करते रहना पडता है। यह एक अति कठिन कार्य है।"

भूषण चुप कर रहा। भगवतस्वरूप ने रेडियो बन्द कर दिया और आराम-कुर्सी पर टामना लगाकर उसने भूषण से पूछा, "तुम मीनाक्षि से विवाह करना चाहते हो क्या ?"

"नहीं पिताजी !"

"क्यों नहीं ? तुम्हारी भाभी से तो वह अधिक सुन्दर और गौर वर्ण है।"

"हाँ। परन्तु पिताजी ! क्या यही सब कुछ है ?"

"तो तुम और क्या चाहते हो ?"

"मैं अभी इञ्जीनियर बनना चाहता हूँ।"

"तुम्हारी इच्छा है। इस पर भी यह तो तुमने देख ही लिया है कि नलिनी की भाँति उससे विवाह तुम्हारी उन्नति मे सहायक हो सकता है।"

"तो क्या आप यह चाहते है कि मै उससे विवाह कर लूँ ?"

"नहीं, मैं पीना नहीं चाहता।"

उसने भूषण के समीप सोफा पर बैठ, उसकी कमर में बाँह डालकर कहा, "नहीं भूषण डीयर! एक बार तो नाचना होगा।"

अपने पिता के सामने भूषण को, उसका इस प्रकार आग्रह करना लज्जाहीन कार्य प्रतीत हुआ। इस कारण उठकर वह कान्ता से बोला, "कान्ता! मैं घर जा रहा हूँ।"

"तो जाओ। मैं पिताजी के साथ आ जाऊँगी।"

"पिताजी भी जा रहे है। कला सोने के लिए व्याकुल हो रही है।"

"तो मैं,यहाँ भैया की कोठी में ही सो रहूँगी।"

"तो चलो।" भगवतस्वरूप ने भूषण को कहा। तीनों कोठी से बाहर निकल आये। एक ताँगे में तीनों घर की ओर चल पड़े।

मार्ग में पिता ने पुत्र से पूछा, "कितना रुपया खर्च कर दिया होगा विनोद ने?"

"मैं समझता हूँ कि एक हजार से अधिक ही व्यय हुआ होगा।"

"अधिक हुआ है। सबने पेट भरकर शराब पी है।" फिर कुछ विचार कर भगवतस्वरूप ने कहा, "यह नौका पार लग नहीं सकती। भगवान ही भला करे।"

भगवतस्वरूप स्नान कर बाजार से सब्जी-भाजी खरीद लाया था। रविवार का दिन होने से उसको दफ्तर नहीं जाना था। अतएव वह रेडियो खोलकर सुनने लगा। भूषण अभी सोकर उठा था और पिता को स्नानादि से छुट्टी पा, रेडियो सुनने के लिए बैठा देख, वहाँ चला आया और पूछने लगा, "पिताजी! कान्ता को ले आऊँ?"

"आ जायगी। वह अपने को तुमसे अधिक योग्य और बुद्धिमान मानती है।"

"पिताजी! रात हमारा जाना ठीक नहीं रहा न?"

रेशमी ओढ़नी थी। उस पर मोती लगे थे। एक सोने की कण्ठी थी। लिप्स्टिक, रूज और पाउडर का डिब्बा था।

"ये कितने के खरीदे हैं ?" माँ ने पूछा।

"जॉर्ज ने भेंट में दिये हैं।"

"क्यों ?"

"उनसे पूछ लो माँ ! मैं क्या जानूँ ?"

"देखो कान्ता ! जब कोई पुरुष किसी लड़की को कुछ भेंट देता है तो किसी प्रयोजन से ही वह देता है।"

"तो कुछ प्रयोजन होगा उसका, मैं नहीं जानती।"

"तो बिना जाने तुमने यह स्वीकार कर लिया है ?"

"जब डाँस का निश्चय हुआ तो उसने मुझको इसमें भाग लेने के लिए कहा। मेरे पास उपयुक्त कपड़े नहीं थे। इस पर वह मुझको 'रेन्कन' ले गया और वहाँ मेरा नाप देकर ये बनवा दिये। साथ ही यह कण्ठी ले दी।

"मैंने समझा था कि यह केवल रात को पहनने के लिए है। परन्तु रात जाने के समय वह कह गया था कि ये मेरे हैं।"

माँ ने बहुत पूछने का यत्न किया कि क्या जॉर्ज का उससे सम्बन्ध बनाने का विचार है, परन्तु कान्ता ने केवल यह बताया कि उनमें कभी भी इस विषय पर बातचीत नहीं हुई।

भगवतस्वरूप ने रात के खाने के समय सबको कहा, "मेरी बात सुन लो। आज से मेरा और विनोद के परिवार का कोई सम्बन्ध नहीं रहा। इस घर का कोई सदस्य उनके घर पर नहीं जायगा।"

"क्या हुआ है पिताजी ?" कान्ता ने माथे पर बल डालकर पूछा।

"उनमें और मुझमें भारी अन्तर पड़ गया है। वह एक बड़ा अफसर बन गया है और मैं एक दूकानदार का मुन्शी मात्र हूँ। जो-कुछ वह कर सकता है, वह मेरी शक्ति से बाहर है। मैं उसके घर में जाकर अपमानित अनुभव करता हूँ।"

"मैं जो चाहता हूँ, वह तुम करोगे क्या ? कौन करता है भूषण ! विनोद ने मनमानी की और उसका उसे लाभ प्रतीत होता है। कान्ता अपने मन की कर रही है। तुमको भी अधिकार है कि जैसा मन चाहे कर सकते हो।"

"मैं तो अभी विवाह करना नहीं चाहता।"

"पर वह चुड़ैल तुमको छोड़ेगी नहीं।"

"मैं उससे कभी नहीं मिलूँगा।"

"नहीं मिलोगे तो अच्छा करोगे।"

मध्याह्न का समय हो रहा था, जब कान्ता और शोभा आईं। कान्ता के हाथ में एक बड़ा-सा कार्ड-बोर्ड का डिब्बा था। पिता ने उससे बात नहीं की। मा आँखें नीचे किये बैठी रही। भूषण ने शोभा से पूछा, "रात कहाँ रही थी, शोभा ?"

"भाभी के घर। दीदी बहुत सुन्दर कपड़े लाई है।"

इस पर भी किसी ने कान्ता से बात नहीं की। आखिर भूषण ने ही कहा, "कान्ता ! जल्दी करो, खाना ठण्डा हो रहा है।"

कान्ता ने बिना किसी और से कहे जाने की प्रतीक्षा किये, कपड़े का डिब्बा एक ओर मेज पर रख दिया और खाने के लिए बैठ गई। माँ ने खाना परसा और सब खाने लगे।

खाना खाते समय किसी ने कुछ नहीं कहा। खाना समाप्त हुआ तो सब उठ खड़े हुए। कुल्ला कर हाथ धो भगवतस्वरूप अपने कमरे में चला गया। भूषण कला को संगीत का अभ्यास करते सुनने लगा। शोभा अपनी कापी लेकर स्कूल का काम करने लगी।

कान्ता अपना डिब्बा ले अपने कमरे में गई तो सुशीला उसके पीछे चली गई। उसने पूछा, "क्या है इसमें कान्ता ?"

"ड्रेस-सूट है माँ !"

"दिखाओ।"

रेशमी सलवार थी और वैसा ही एक कुर्ता था। सैंडल थे और

रेशमी ओढनी थी। उस पर मोती लगे थे। एक सोने की कण्ठी थी। लिप्स्टिक, रूज और पाउडर का डिब्बा था।

"ये कितने के खरीदे है?" माँ ने पूछा।

"जॉर्ज ने भेंट मे दिये हैं।"

"क्यो?"

"उनसे पूछ लो माँ! मै क्या जानूँ?"

"देखो कान्ता! जब कोई पुरुष किसी लडकी को कुछ भेंट देता है तो किसी प्रयोजन से ही वह देता है।"

"तो कुछ प्रयोजन होगा उसका, मै नहीं जानती।"

"तो बिना जाने तुमने यह स्वीकार कर लिया है?"

"जब डाँस का निश्चय हुआ तो उसने मुझको इसमे भाग लेने के लिए कहा। मेरे पास उपयुक्त कपडे नहीं थे। इस पर वह मुझको 'रेन्कन' ले गया और वहाँ मेरा नाप देकर ये बनवा दिये। साथ ही यह कण्ठी ले दी।

"मैंने समझा था कि यह केवल रात को पहनने के लिए है। परन्तु रात जाने के समय वह कह गया था कि ये मेरे है।"

माँ ने बहुत पूछने का यत्न किया कि क्या जॉर्ज का उससे सम्बन्ध बनाने का विचार है, परन्तु कान्ता ने केवल यह बताया कि उनमे कभी भी इस विषय पर बातचीत नहीं हुई।

भगवतस्वरूप ने रात के खाने के समय सबको कहा, "मेरी बात सुन लो। आज से मेरा और विनोद के परिवार का कोई सम्बन्ध नही रहा। इस घर का कोई सदस्य उनके घर पर नहीं जायगा।"

"क्या हुआ है पिताजी?" कान्ता ने माथे पर बल डालकर पूछा।

"उसमें और मुझमे भारी अन्तर पड गया है। वह एक बडा अफसर बन गया है और मै एक दूकानदार का मुन्शी मात्र हूँ। जो-कुछ वह कर सकता है, वह मेरी शक्ति से बाहर है। मै उसके घर मे जाकर अपमानित अनुभव करता हूँ।"

भूषण को पिछली रात शामियाने के एक कोने मे, पिताजी का किसी से मिले-जुले बिना, दुबककर बैठे रहना स्मरण हो आया। सुशीला को, अपने पति को पुत्र से सम्बन्ध-विच्छेद करते देख रोना आ गया। उसकी आँखें डबडबा आईं। इसको कान्ता ने देखा और माँ को अपने मन की बात कहने में प्रोत्साहन देने के लिए पूछा :—

"माँ यह ठीक हो रहा है क्या ?"

"तो तुम गलत समझती हो क्या ?"

"बिल्कुल। हमारा भाई ऊँची पदवी पर पहुँचा है तो क्या हमको उससे डाह करनी चाहिए ?"

"इसको डाह नहीं कहते, कान्ता!" भगवतस्वरूप ने कहा, "इसको घृणा कहते हैं। जो कुछ रात मैंने वहाँ देखा है, वह डाह करने की वस्तु नहीं, प्रत्युत घृणा करने की बात है।"

"उनके समाज में वह एक साधारण सी बात मानी जाती है।"

"यही तो कह रहा हूँ कि मेरे में और उसमें एक भारी खाई खुद गई है। हम दोनों का मार्ग भिन्न-भिन्न है।"

"इससे सम्बन्ध-विच्छेद की आवश्यकता क्यों है? वे अपने ढंग पर रहें और आनन्द भोग करें और हम अपने ढंग पर मजा करें।"

"ठीक है, परन्तु तुम लोग उनके ढंग पर रहने लगे हो और उसका खर्चा मैं वहन नहीं कर सकता।"

"अभी तक तो आपको कुछ खर्च करना नहीं पडा।"

"और मेरी लड़की को किसी दूसरे से भेंट स्वीकार करनी पडी है। इसको स्वीकार करने की आवश्यकता न पडती, यदि वह अपने समाज के रहन-सहन का उल्लंघन कर दूसरे समाज में न चली जाती।"

"मैं माँगने नहीं गई थी।"

"तुमने लेने से इन्कार भी नहीं किया कान्ता!"

"इन्कार क्यों करती?"

"इस कारण कि तुम्हारा जो सम्बन्ध प्रोफेसर से है, उसमें भेंट

स्वीकार नहीं की जा सकती।"

"आपने कैसे जाना है यह ?"

"तुम्हारी माता के साथ बातचीत से।"

"माताजी ने तो मिस्टर जॉर्ज के मन की बात पूछी थी। वह मैं नहीं जानती थी। पर मैं अपने मन की बात तो जानती हूँ। मैंने अपने मन में सम्बन्ध मानकर ही भेंट स्वीकार की है।"

"तो तुम्हारा उमसे विवाह होगा ?"

"मैं उनसे प्रेम करती हूँ।"

इसके पश्चात् कुछ कहने को नहीं रह गया। सब चुपचाप भोजन करते रहे। जब सब उठने लगे तो भगवतस्वरूप ने कान्ता को कहा, "कान्ता ! कितना खर्चा तुमको चाहिए होस्टल मे रहने के लिए ?"

"हमारे कालेज मे लडकियो का होस्टल नहीं है।"

"तो विनोद की कोठी मे रहना होगा। कितने मासिक मे निर्वाह और पढाई हो सकेगी।"

कान्ता मुख देखती रह गई। माँ और अन्य बच्चे भी एक-दूसरे का मुख देखने लगे। कुछ विचारकर कान्ता ने पूछा, "तो आप मुझको घर से निकाल रहे है ?"

"नहीं।" भगवतस्वरूप ने डाँटकर कहा, "देखो कान्ता ! मै यूरोपियन समाज की बात जानता हूँ। वहाँ लडकियाँ अपने लिए स्वयं पति ढूँढती फिरती हैं और फिर विवाह होने तक उनको ढूँढे हुए युवकों को बाँध रखने के लिए अनेकों उचित-अनुचित उपाय करने पडते हैं। वे सब उपाय हमारे समाज में अनुचित माने जाते हैं। इस कारण मै कहता हूँ कि दो समाजों मे रहना, दो नौकाओ में पाँव रखने के समान विनाशकारी सिद्ध होगा।"

"तो ठीक है। मैं भैया की कोठी मे जाकर रहूँगी। आप मेरी शिक्षा और खाने-पीने का प्रबन्ध कर दीजियेगा।"

"कर दूँगा।"

बात समाप्त हो गई। भूषण ने आज पुनः अनुभव किया कि उसका पिता रात-भर नहीं सो सका। सुशीला ने अगले दिन एकान्त पा अपने पति से कहा, "यह आप कर क्या रहे हैं? एक-एक कर सब बच्चों को परिवार से बाहर कर रहे हैं?"

"यह मैं नहीं कर रहा शील! यह मेरे साथ हो रहा है। मैं तो वस्तुस्थिति को समझ उसको स्वीकार कर रहा हूँ। यह तो ऐसा हो रहा है, जैसे मैं मुट्ठी में रेता पकड़े हुए हूँ और वह खिसकती चली जाती है।

"हमारा परिवार कोई सगठित इकाई नहीं रही। वह बालू का पिंड-मात्र रह गया है।"

"आप कान्ता को कितना कुछ दे सकेंगे?"

"मैं भूषण को दो सौ रुपया मासिक दे रहा हूँ। लगभग इतना ही कान्ता को दे सकूँगा। इस वर्ष वह इन्टरमीडिएट की परीक्षा देगी। यदि पास हो गई तो बी० ए० और फिर एम० ए० में पढ़ेगी। इसका अर्थ है साढे चार वर्ष तक यह खर्चा देना पड़ेगा। सब मिल-मिलाकर नौ-दस हज़ार का खर्चा हो जायगा।"

उस दिन कान्ता कालेज से लौटकर नहीं आई। वह नलिनी से साथ कर उनकी कोठी में रहने लगी।

विनोद के घर लड़का हुआ। नलिनी की इच्छा थी कि लड़के के क्रिश्चनिंग के अवसर पर एक बड़ा भोज दिया जाय, परन्तु जब विनोद ने उसको पिछले भोज का खर्चा बताया तो चुप कर गई। पिछले भोज और नाच पर विनोद को तीन हज़ार के लगभग खर्च करना पड़ा था। यह वह बहुत कठिनाई से दे सका था। अब नियमित खर्चा बहुत बढ़ गया था। तीन सौ कोठी का किराया था। पचास रुपये पानी-बिजली का खर्चा बैठता था। मोटर की किश्त अढाई सौ रुपया महीना देनी

पड़ती थी। मोटर चलाने का खर्चा सवा सौ रुपया महीना पड़ जाता था। ड्राइवर साठ रुपया महीना, बैरा साठ रुपया, चपरासी पचास रुपया, रसोईया साठ रुपया और माली चालीस रुपया, यह सब मिल-मिलाकर लगभग एक हज़ार रुपया बन जाता था। इन्कम टैक्स-इनश्युरेन्स, रोटी, कपड़ा-धोबी इत्यादि देकर तो प्रतिमास कुछ-न-कुछ उधार लेना पड़ ही जाता था।

नलिनी यह हिसाब सुन अवाक् रह गई। वह विचार करती थी कि इतना वेतन लेने पर भी वे निर्धन-के-निर्धन हो रहे। निर्वाह करने पर विचार होने लगा। नौकरों को कम करने का विचार किया गया तो पता लगा कि यह सम्भव नहीं। इतनी बड़ी कोठी में बिना नौकरों के निर्वाह नहीं हो सकेगा। पंजाब गवर्नमेण्ट के सचिव के लिए मोटर आवश्यक थी।

बहुत विचार किया गया, परन्तु बचत की कोई सूरत दिखाई नहीं दी। विनोद इससे निराशा अनुभव करने लगा। इसी समय एक अव-सर आया। विनोद ने विचार किया और इसको हाथ से जाने नहीं दिया। कठिनाई से निकलने का और कोई मार्ग नहीं था।

चीफ सैक्रेटरी टू दि पंजाब गवर्नमेण्ट ने उसको घर पर चाय पर बुलाया और उसको खिला-पिलाकर कहने लगा, "मिस्टर विनोद ! जिस साज-बाज से तुम रहते हो उससे तो मैं देखता हूँ कि तुम ऋण के नीचे दब रहे हो।"

विनोद ने आँखें नीचे किये हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं और मैं इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा हूँ।"

"विचार करने से तो कोई कार्य पूर्ण होता नहीं। देखो मैं एक सुझाव तुमको देता हूँ। तीन वर्ष से जिला मौन्टगुमरी में एक नहर की शाखा बनने वाली पड़ी है। आप एक सूचना मेरे पास भेज दें कि प्रान्त की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए इस नहर का वर्षा ऋतु से पहले बन जाना अत्यावश्यक है। मैं इसका प्रबन्ध करने के लिए आपको लिख

बात समाप्त हो गई। भूषण ने आज पुनः अनुभव किया कि उसका पिता रात-भर नहीं सो सका। सुशीला ने अगले दिन एकान्त पा अपने पति से कहा, "यह आप कर क्या रहे हैं? एक-एक कर सब बच्चों को परिवार से बाहर कर रहे हैं?"

"यह मैं नहीं कर रहा शील! यह मेरे साथ हो रहा है। मैं तो वस्तुस्थिति को समझ उसको स्वीकार कर रहा हूँ। यह तो ऐसा हो रहा है, जैसे मैं मुट्ठी में रेता पकड़े हुए हूँ और वह खिसकती चली जाती है।

"हमारा परिवार कोई संगठित इकाई नहीं रही। यह बालू का पिंड-मात्र रह गया है।"

"आप कान्ता को कितना कुछ दे सकेंगे?"

"मैं भूषण को दो सौ रुपया मासिक दे रहा हूँ। लगभग इतना ही कान्ता को दे सकूँगा। इस वर्ष वह इन्टरमीडिएट की परीक्षा देगी यदि पास हो गई तो बी० ए० और फिर एम० ए० में पढ़ेगी। इसका अर्थ है साढ़े चार वर्ष तक यह खर्चा देना पड़ेगा। सब मिल-मिलाकर नौ-दस हजार का खर्चा हो जायगा।"

उस दिन कान्ता कालेज से लौटकर नहीं आई। वह नलिनी से राय कर उनकी कोठी में रहने लगी।

विनोद के घर लड़का हुआ। नलिनी की इच्छा थी कि लड़के के क्रिश्चनिंग के अवसर पर एक बड़ा भोज दिया जाय, परन्तु जब विनोद ने उसको पिछले भोज का खर्चा बताया तो चुप कर गई। पिछले भोज और नाच पर विनोद को तीन हजार के लगभग खर्च करना पड़ा था। यह वह बहुत कठिनाई से दे सका था। अब नियमित खर्चा बहुत बढ़ गया था। तीन सौ कोठी का किराया था। पचास रुपये पानी-बिजली का खर्चा बैठता था। मोटर की किश्त अढ़ाई सौ रुपया महीना देनी

पड़ती थी। मोटर चलाने का खर्चा सवा सौ रुपया महीना पड जाता था। ड्राइवर साठ रुपया महीना, बैरा साठ रुपया, चपरासी पचास रुपया, रसोईया साठ रुपया और माली चालीस रुपया, यह सब मिल-मिलाकर लगभग एक हजार रुपया बन जाता था। इन्कम टैक्स-इनश्युरेन्स, रोटी, कपड़ा-धोबी इत्यादि देकर तो प्रतिमास कुछ-न-कुछ उधार लेना पड ही जाता था।

नलिनी यह हिसाब सुन अवाक् रह गई। वह विचार करती थी कि इतना वेतन लेने पर भी वे निर्धन-के-निर्धन ही रहे। निर्वाह करने पर विचार होने लगा। नौकरों को कम करने का विचार किया गया तो पता लगा कि यह सम्भव नहीं। इतनी बडी कोठी में बिना नौकरों के निर्वाह नहीं हो सकेगा। पजाब गवर्नमेण्ट के सचिव के लिए मोटर आवश्यक थी।

बहुत विचार किया गया, परन्तु बचत की कोई सूरत दिखाई नहीं दी। विनोद इससे निराशा अनुभव करने लगा। इसी समय एक अवसर आया। विनोद ने विचार किया और इसको हाथ से जाने नहीं दिया। कठिनाई से निकलने का और कोई मार्ग नहीं था।

चीफ सैक्रेटरी टू दि पजाब गवर्नमेण्ट ने उसको घर पर चाय पर बुलाया और उसको खिला-पिलाकर कहने लगा, "मिस्टर विनोद! जिस साज-बाज से तुम रहते हो उससे तो मैं देखता हूँ कि तुम ऋण के नीचे दब रहे हो।"

विनोद ने आँखें नीचे किये हुए कहा, "आप ठीक कहते हैं और मैं इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रहा हूँ।"

"विचार करने से तो कोई कार्य पूर्ण होता नहीं। देखो मैं एक सुभाव तुमको देता हूँ। तीन वर्ष से जिला मौन्टगुमरी में एक नहर की शाखा बनने वाली पडी है। आप एक सूचना मेरे पास भेज दें कि प्रान्त की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए इस नहर का वर्षा ऋतु से पहले बन जाना अत्यावश्यक है। मैं इसका प्रबन्ध करने के लिए आपको लिख

दूँगा। पीछे आप इस काम को करने के लिए टेंडर मँगवाइये। मैं उस समय आपको बताऊँगा कि किसका टेंडर स्वीकार करना चाहिए। यह दस लाख का काम है। इसमें से दस प्रतिशत आपको मिल जायगा। इसके तीन भाग होंगे। एक मेरा, एक आपका और तीसरा चीफ इञ्जीनियर का।

"समझ गये हैं न आप? यह कल ही कर दो। रुपया मंजूर हो चुका है। किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं है।"

विनोद की आँखें खुल गईं। वह आगामी वर्ष के लिए कई योजनाएँ बना रहा था। अब उसको पता चल गया कि किस प्रकार कम वेतन लेने पर भी बड़ी-बड़ी कोठियों में रहा जा सकता है।

अगले दिन उसने चीफ सैक्रेटरी के कथनानुसार उक्त सुझाव भेज दिया। चीफ सैक्रेटरी ने रैविन्यू मन्त्री की सम्मति लिखवा ली और उसी दिन सायकाल विनोद को आज्ञा मिल गई कि बिना अधिक देरी किये, टेंडर मँगवा लिए जायँ।

इसका अभिप्राय यह निकला कि विनोद को तेतीस हजार की आय अनायास ही हो गई। नलिनी ने विनोद के पास नोटों के बण्डल देखे तो उसने आवणकोर जाने की योजना बना ली। विनोद ने उसको दो हजार रुपया इस मतलब के लिए दे दिया और वह अपने बच्चे को और उसकी आया को लेकर मिस्टर स्टोपस के पास चली गई।

अब कान्ता को और भी स्वतन्त्रता मिल गई और उसका जॉर्ज के साथ मिलना-जुलना और भी अधिक हो गया। साथ ही कान्ता विनोद के घर की देखभाल भी करने लगी। परिणाम यह हुआ कि वह इन्टर-मीडियेट की परीक्षा पास नहीं कर सकी। परीक्षा मे फेल होने से न केवल कान्ता के स्वप्न भग हुए, प्रत्युत जॉर्ज भी उससे निराशा अनुभव करने लगा।

कान्ता दसवीं श्रेणी में प्रथम डिविजन मे पास हुई थी। अब इन्टर में असफल होकर वह आगे पढाई का विचार छोड बैठी।

परीक्षा के पश्चात् कान्ता भाभी के पास रावणकोर चली गई थी और दो मास वहाँ रह कर लौटी। नलिनी भी उसके साथ ही लौट आई। कान्ता, परीक्षा-फल निकलने के समय रावणकोर थी। जब वह लाहौर वापिस आई तो उसने अपने आने की सूचना जॉर्ज को भेजी थी, परन्तु आशा के विपरीत वह उसको स्टेशन पर मिलने नहीं आया। उसकी दो मास की अनुपस्थिति मे जॉर्ज के विचार बहुत कुछ बदल चुके थे।

कोठी पर पहुँचकर उसने बैरे के हाथ जॉर्ज को एक पत्र लिखा। उत्तर आया कि वह परीक्षा के पर्चे देखने मे बहुत व्यस्त है और उसने शीघ्र ही कुछ मित्रो के साथ काश्मीर जाना है, इस कारण जाने से पहले पर्चे देख कर वापिस करने हैं। वह काश्मीर जाने से पूर्व उसको मिलने आवेगा।

इससे कान्ता को भारी दुःख हुआ। पर वह कर क्या सकती थी। विवश उसके आने की प्रतीक्षा करने लगी। जिस दिन उसने काश्मीर के लिये रवाना होना था, वह आया और अपने पहले न आ सकने के लिये क्षमा मागने लगा। अपने पहले न आ सकने का कारण बता, उसने कहा कि वह उसी दिन काश्मीर जा रहा है। वहाँ वह दो महीने तक रहेगा और कौलेज खुलने से पहले वह लौट आवेगा।

"आपका यह जाना कुछ दिन के लिये रुक नहीं सकता?"

"बहुत कठिन है। सैनिक अफसर, जो साथ जा रहे हैं, छुट्टी ले चुके हैं और महाराजा काश्मीर मे शिकार खेलने की स्वीकृति ली जा चुकी है।"

"मेरा विचार था कि मैं भी साथ चल सकती तो बहुत आनन्द रहता।"

"हम सब पुरुष ही जा रहे है। उनमें एक लड़की और वह भी हिन्दुस्तानी कुछ अच्छी नहीं लगेगी।"

"इसी कारण तो कह रही हूँ कि यदि आप एक सप्ताह ठहर जाते

तो हमारा विवाह हो जाता और फिर हम इकट्ठे जा सकते।"

"तो तुम अब पढना नहीं चाहती?"

"अनुत्तीर्ण होने के पश्चात् अब मन नहीं चाहता।"

"यह तो ठीक नहीं। एक गवर्नमेन्ट कौलेज का प्रोफेसर एक मामूली पढी लिखी लडकी से विवाह नहीं कर सकता।"

"पर आपने ही तो कहा था कि कौलेज की पढाई में क्या रखा है। आपका कहना था कि मैं एक एम० ए० के बराबर योग्यता रखती हूँ।"

"ठीक है, परन्तु मेरे विचार बदल गये हैं। मैं तो तुम से तब ही विवाह करूँगा, जब तुम कम-से-कम एम० ए० पास कर लो।"

कान्ता इस बात को सुनकर अवाक रह गई। उसके मुख का रग पीला पड गया और उसके मस्तिष्क मे तीव्र वेदना होने लगी। कितनी ही देर तक कान्ता सिर को दोनों हाथों मे पकड कर बैठी रही। जॉर्ज उसको चुप बैठे देख बोला, "देखो कान्ता! अभी विवाह का विचार छोड दो और छुट्टियों के पीछे कौलेज मे भर्ती हो जाओ। एम० ए० पास कर लो और तब तक हम को परस्पर बहुत कम मिलना चाहिये।

"मैं आज रात की गाडी से काश्मीर के लिये रवाना हो जाऊँगा और वहाँ से लौटकर मिलूँगा।"

इतना कह वह उठकर चला गया। कान्ता कुछ निश्चय नहीं कर सकी कि क्या करना चाहिये। वह अभी भी विनोद की कोठी में रहती थी।

जॉर्ज के चले जाने के कई दिन पीछे मीनाक्षि आई तो उसकी भेंट कान्ता से हो गई। वह अपने स्थान पर रुष्ट थी। भूषण नाच की रात के पश्चात् उससे कभी मिलने नहीं आया था। वह आई तो कान्ता के पास बैठ गई। कान्ता ड्रायग रूम में एक सोफा पर बैठी हुई 'उप्टौन सिन क्लेयर' का एक उपन्यास 'बिटविन दि टू वर्ल्ड्स' पढ रही थी। मीनाक्षि ने उसके समीप बैठते हुए पूछा, "क्या पढ रही हो, कान्ता?"

कान्ता ने पुस्तक का नाम दिखा दिया। मीनाक्षि हस पडी। कान्ता

ने विस्मय में उसकी ओर देखकर पूछा, "हँसने की कौन बात है ?"

"यह लेखक नवीन युग का स्वागत करने वाला है। इस पुस्तक में, विशेष रूप से, उसने विवाह और प्रेम के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसका विचार है कि इसका सम्बन्ध आयु, राष्ट्रीयता और रंग से कुछ भी नहीं।"

"यह ठीक है, परन्तु इसमें हँसने की कौन बात है ?"

इतना कह कान्ता ने पुनः अपना ध्यान पुस्तक की ओर ले जाने का यत्न किया। इस पर मीनाक्षि ने उसके हाथ से पुस्तक लेकर कहा, "कान्ता ! मैं तुम से एक बात करने आई हूँ।"

"करो।"

"मेरी भूषण से सुलह करवा दो।"

"मैं कैसे करवा सकती हूँ ? वह तो मेरे साथ भी नहीं बोलता।"

"क्यों ?"

"जॉर्ज से प्रेम करने के अपराध के कारण।"

"क्या अपराध है इसमें ?"

"मैं तो इसको इस प्रकार नहीं मानती। परन्तु मेरे माता-पिता और भूषण इसको अपराध ही मानते हैं।"

"बहुत कम समझ हैं वे। जॉर्ज जैसा पति कहाँ मिलेगा ?"

"इस पर भी मुझ को अपनी धारणा पर सन्देह होने लगा है।"

"क्यों, क्या हुआ है ?"

"मेरी इच्छा थी कि विवाह हो जाता। जार्ज ने अस्वीकार कर दिया है। वह चाहता है कि मैं एम० ए० पास कर लूँ।"

"तो वह तुम से मिलकर गया है और यह कह गया है।"

"हाँ ! काश्मीर जाने से पूर्व मुझ से मिलने आया था।"

"काश्मीर ? गलत। मुझको पक्की बात विदित है कि वह काश्मीर नहीं, प्रत्युत चकरौता गया है। और हाँ तुम मेरीन जौनसन को जानती हो या नहीं ?"

एक 'लाकर' में रख दिया।

एक बात विनोद ने और की थी कि किसी को भी इस रुपये के रखने का रहस्य नहीं बताया था। नलिनी को भी उसने इस रुपये के विषय में कुछ नहीं बताया था। उसने नलिनी को ऊपर से हो रही आय के विषय मे भी बताना छोड दिया था। उसको सदैव यह डर लगा रहता था कि शराब के नशे में वह किसी से कह न बैठे।

कान्ता अभी भी अपने भाई की कोठी में रहती थी। जॉर्ज के उसको छोड जाने पर उसके मन में पुनः कौलेज मे दाखिल होने की इच्छा जाग पडी। इस बार भर्ती होने के लिए उसने विनोद से कहा, "भैया! मुझको पिताजी से खर्चा लेते लज्जा लगती है। पिछले वर्ष उनसे बहुत लिया है और मैं परीक्षा मे उत्तीर्ण नहीं हो सकी।"

"पर मै तो तुम्हारे लिये दो सौ दे नहीं सकता।"

"तो पिताजी, जिनका वेतन आप से कम है, कैसे दो सौ मुझको और दो सौ भूषण को दे सकते हैं और इसके ऊपर घर का खर्चा भी चलाते हैं।"

"वे कहीं कोई गडबड करते होंगे।"

"क्या मतलब?"

"कोई अनुचित आय होती होगी।"

"एक दुकान पर से यह कैसे हो सकता है?"

"नही होती तो यह सब खर्चा कैसे चलता है?"

इस पर कान्ता बहुत चिन्ता अनुभव करने लगी। वह मन में विचार करती थी कि क्या पिताजी को अपने बच्चों की पढाई के लिए किसी प्रकार की अनुचित आय करनी पडती है? यदि वे अनुचित आय नही करते तो अवश्य ही वे स्वय बहुत ही निर्धनता का जीवन व्यतीत करते होंगे।

इस प्रकार विचार कर उसने एक दिन विनोद को कह दिया, "भैया! यदि आप इतनी बडी वेतन पाते हुए भी मेरी पढाई का खर्चा

नहीं दे सकते तो पिताजी से, जिनकी आय आप से कम है, अपना खर्चा लेते हुए मुझको संकोच होता है।

"ऐसी अवस्था मे मैं चाहती हूँ कि कहीं मेरी नौकरी लगवा दीजिये।"

"कैसी नौकरी कर सकोगी तुम ?"

"मीनाक्षि टैलीफोन कार्यालय में काम करती है। यदि आप किसी को कह दें तो मै भी उस कार्यालय मे काम कर सकूँगी।"

विनोद ने कुछ विचार कर कहा, "अच्छा, कम-से-कम तुम कितने मे गुजर कर सकोगी।"

"यदि भाभी रोटी का खर्चा न ले तो मै पचहत्तर रुपये मासिक में पढाई और कपड़े का प्रबन्ध कर लूँगी।"

"इतना कुछ तो मै कर दूँगा और तुम्हारी भाभी से कह दूँगा कि तुम्हारी रोटी का खर्चा न ले।"

बात तय हो गई। विनोद तो दो सौ तक भी दे देता, परन्तु वह यह किसी को पता लगने नहीं देना चाहता था कि वेतन के अतिरिक्त भी कोई आय उसको है। कान्ता पुन. कॉलेज मे भरती हो गई। इस बार उसने मन मे निश्चय कर लिया था कि चित्त लगाकर पढेगी।

जॉर्ज अब उसको मिलने नहीं आया। अपने पास पर्याप्त धन न होने के कारण वह सैसिल इत्यादि होटलो मे चाय तथा डिनर इत्यादि लेने नहीं जा सकती थी। इस कारण जॉर्ज से उसकी भेंट नहीं हुई।

कान्ता ने अपने पिता को लिख भेजा कि वह अब पढाई का खर्चा उनसे लेना नहीं चाहती। भगवतस्वरूप ने खर्चा भेजना बन्द कर दिया। कान्ता के माता-पिता ने समझा कि खर्चा जॉर्ज दे रहा है। वे विचार करते थे कि विनोद अपनी स्त्री के कारण ईसाई हो गया और लड़की अपने पति के कारण। भगवतस्वरूप को यह एक भयकर अवस्था प्रतीत हुई। उसके मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि ये लोग क्यो हिन्दू समाज छोड गए हैं। इस समाज में क्या कोई बहुत बुरी बात है, जिससे ये

इसको छोडने में भलाई समझने लगे ?

इस पर उसके मस्तिष्क में हिन्दू समाज के विषय में विचार उत्पन्न होने लगे। वह सोचता था कि हिन्दू क्या है ? क्या वह हिन्दू का पुत्र होने से हिन्दू है ? यदि यह है तो विनोद भी हिन्दू होना चाहिए। परन्तु वह नहीं है। एक दिन इसी विषय पर सुशीला से बात चल पड़ी। उसने तो सरलता से कह दिया, 'हिन्दू वह है, जो गो-ब्राह्मण की पालना करे।' यह बात भगवतस्वरूप के मन में जची नहीं। इस पर भी मोटी दृष्टि से यह ठीक ही प्रतीत होती थी। उसने इसके विषय में एक दिन भूषण से पूछ ही लिया, "भूषण ! क्या कभी विनोद के किचन में गो-माँस भी बनता है ?"

"जरूर बनता होगा। नलिनी और उसके माता पिता तो खाते ही हैं।"

"तुम ने भी कभी खाया है ?"

"नहीं पिताजी ! मैं तो मास भी नहीं खाता।"

"देखो बेटा ! गोमास मत खाना। तुम्हारी माता कहती है कि हिन्दू वह होता है, जो गो ब्राह्मण की पालना करे। यद्यपि मुझको यह बात समझ नहीं आती, इस पर भी सुनने मे यह अच्छी और सरल प्रतीत होती है।

"भूषण ! किसी गोमासाहारी से विवाह भी नहीं करना। ऐसे विचारमात्र से मेरे मन में ग्लानि उत्पन्न होने लगती है।"

भूषण पिताजी के मन की अवस्था को जानकर दु:ख अनुभव कर रहा था। उसको यह विश्वास-सा हो रहा था कि उनकी यह अवस्था विनोद और कान्ता के व्यवहार से उत्पन्न हुई है। पिताजी के मन को शान्ति देने के लिए उसने कह दिया, "पिताजी ! आप विश्वास रखें कि मैं आपकी इच्छा के बिना विवाह नहीं करूँगा।"

इस आश्वासन से भगवतस्वरूप की आँखों से आँसू ढुलक पड़े। उसने उनको पोंछते हुए कहा, "मेरे पाँच बच्चे हैं। उनमे से दो तो

गए। जीते-जागते मुझको छोड गए है। शेष तीन की चिन्ता उसी मात्रा मे बढ़ गई है।

"हम एक परिवार मे रहते है और मेरी उत्कट इच्छा है कि मेरे जीवन काल मे तो यह बना रहे।"

भूषण, यद्यपि इसको कोरी भावुकता मानता था, इस पर भी इन शब्दो मे पिता की अपनी सन्तान के लिए असीम मोह-ममता छिपी हुई पाता था। जिस निस्सकोच भाव से भगवतस्वरूप ने छः हजार रुपया विनोद को दे दिया था, अथवा जिस उदारता से उसको और कान्ता को दो-दो सौ रुपया मासिक, छः सौ वेतन मैं से मिल रहा था उससे वह अपने माता-पिता के स्नेह का अनुमान अपने और अपनी बहनों के प्रति लगाता था। वह देख रहा था कि पिताजी की बैंक की पास बुक पर बकाया रकम कम हो रही थी। इस पर भी उनको यह सब कुछ देते समय, उनके माथे पर कभी बल भी दिखाई नहीं दिया था।

इस वार्तालाप के बाद भूषण ने अपना खर्चा कम-से-कम कर दिया और उसने दृढ निश्चय कर लिया कि वह मीनाक्षि से कभी नहीं मिलेगा। परन्तु उसका यह निश्चय अधिक काल तक टिका नहीं रह सका।

एक शनिवार के दिन मीनाक्षि नहर की पटरी पर बैठी भूषण के घर जाने की प्रतीक्षा करती देखी गई। भूषण ने उसको दूर से देखा तो अपनी बाईसिकल तेज कर ली, परन्तु वह मार्ग रोककर खड़ी हो गई। उससे बाईसिकल बचाता-बचाता भूषण बाईसिकल सहित नहर में जा गिरा। नहर किनारों तक भरी हुई थी और उसको नहर में लुढ़कते देख मीनाक्षि की चीख निकल गई।

भूषण को चोट तो नहीं आई, परन्तु बाईसिकल पानी मे डूब गई थी और उसको बाहर निकालने मे भारी कठिनाई उठानी पडी। उसके सब कपड़े और जेब मे रखे पाँच रुपये के एक-एक के नोट भीग गए।

बाईसिकल को बाहर निकाल, कपडो को निचोडता हुआ, वह

मीनाक्षि से कहने लगा, "यदि मैं तुम से टक्कर लगने देता, तो तुम्हारी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जाती।"

"बहुत अच्छा होता, यदि मैं तुम्हारे हाथ से मर जाती।"

"ओह ! पद्मिनी बनने जा रही थी ?"

"नहीं सावित्री। मैंने आज ही उसकी पिक्चर देखी है।"

"पर मैं तो अभी मरा नहीं और तुम पहले ही यमराज के पास जा रही हो ?"

इस समय तक भूषण ने कपड़े निचोड डाले थे और वह नोटों को सुखाने के लिए घास पर बिखेर रहा था। कपड़े सुखाने के लिए वह स्वयं भी घास पर बैठ गया। मीनाक्षि ने उसके पास बैठते हुए पूछा, "बहुत शोक है न इन रुपयों का ?"

"हाँ, बड़ी मेहनत से कमाये जाते हैं।"

"तो तुम कमाते हो ?"

"पिताजी कमाते हैं। यही तो दुःख है। अपनी कमाई होती तो इतना शोक न होता।"

"मुझको तो अपनी कमाई का शोक अधिक होता है। दूसरे की कमाई खर्च करने का दुःख कभी नहीं होता।"

"ठीक है। पर यह तुम्हारे और मेरे विचारों में अन्तर, हमारे समाज का अन्तर है।"

भूषण ने अपना कोट उतारकर घास पर सूखने के लिए फैला दिया था। मीनाक्षि ने बात बदल डाली और पूछा, "तुम अब मुझको मिलने क्यों नहीं आते ?"

"कहाँ आता ?"

"भैया के घर।"

"मैं अब वहाँ नहीं जाता।"

"क्यों ?"

"वहाँ का रहन-सहन मुझको पसन्द नही है।"

"तुमने उनके रहन-सहन को क्या करना है ?"

"वहाँ जाकर वैसा ही बनना पड़ता है।"

"तुम्हारी बहन तो वहाँ रहती है ?"

"उसको मिस्टर जॉर्ज से विवाह करने के लिए वैसा ही बनना है।"

"कान्ता का विवाह मिस्टर जॉर्ज से नहीं हो रहा।"

"तुम कैसे जानती हो ?"

"जॉर्ज का विवाह मेरीन जान्सन से होना निश्चित हो गया है। उस दिन सगाई के उपलक्ष मे सैसिल में भोज हुआ था।"

"तुम वहाँ गई थीं क्या ?"

"हाँ, भोज के पीछे डान्स का प्रबन्ध था। उसके लिए मैं भी निमन्त्रण पा गई थी।"

"नलिनी भी गई थी क्या ?"

"नहीं।"

"कान्ता थी वहाँ ?"

"नहीं।"

भूषण इस समाचार से प्रसन्न नहीं हुआ। मीनाक्षि ने उसको सान्त्वना देने के लिए कह दिया, "अब कान्ता पुनः कॉलेज मे भर्ती हो गई है। सुना है कि वह अब मन लगाकर पढ़ती है।"

"पर उसने पिताजी से खर्चा लेना बन्द कर दिया है।"

"वह कहती थी कि उसके फेल होने के पश्चात् उसको पिताजी से खर्चा लेने मे लज्जा लगती है।"

भूषण इससे गम्भीर विचार मे मग्न हो गया। इस पर मीनाक्षि ने पुनः अपनी बात आरम्भ कर दी, "भूषण ! मैं तुमसे मिलने के लिए एक घण्टे से प्रतीक्षा कर रही थी।"

"क्यों ? मुझसे क्या काम है ?"

साथ सिनेमा इत्यादि जाने को करता है।"

"पर मेरा मन इनमें से एक भी बात करने को नहीं करता।"

"तो तुम अब सिनेमा नहीं देखते।"

"नहीं। आठ-नौ मास हो गए हैं। मैं कभी नहीं गया।

"इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि मेरे पास इसके लिए दाम नहीं है। आजकल मैं घर से कॉलेज के खर्चे के अतिरिक्त केवल दस रुपये लेता हूँ। उनमें से ये पाँच तुमने खराब कर दिये हैं। क्या जाने चल सकेंगे या नहीं?"

"इसके अर्थ यह हुए कि तुम्हारे पिता बहुत निर्धन हो गए हैं।"

"वे तो वैसे ही हैं, जैसे पहले थे। मुझको समझ आ गई है कि निष्प्रयोजन उनका धन खर्च नहीं करना चाहिए।"

"तो मैं खर्चा दे दिया करूँगी।"

"तुम्हारा खर्च कराते भी तो मुझको संकोच होता है। कितना वेतन पाती हो तुम?"

"मुझको एक सौ बीस रुपया मासिक मिलते हैं।"

"कितना जमा कर लिया है तुमने इसमें से?"

"एक फूटी कौड़ी भी नहीं। कठिनाई से निर्वाह होता है। साठ रुपये महीना तो मा को रोटी और कोठी के किराये के दे देती हूँ। पच्चीस रुपये के प्रतिमास कपड़े खरीदती हूँ। दस रुपये का टॉयलेट का सामान। शेष चाय इत्यादि पाकेट खर्चा में जाता है। कभी किसी महीने में पाँच-दस बच जाते हैं तो अगले महीने में व्यय हो जाते हैं।"

"तो तुम मुझको सिनेमा क्या दिखाओगी?"

"हाँ! मैं तुम्हारे लिए फाके कर सकती हूँ।"

"पर क्यों?"

"तो तुम समझे नहीं? कितने बुद्धू हो तुम!" इतना कह वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी।

भूषण समझता तो था, परन्तु वह बेसमझ बनना पसन्द करता था।

उसने कहा, "बुद्धू तो हूँ। मैं समझता हूँ कि तुमको मेरे लिए खर्च करने में कोई कारण नहीं।"

"देखो भूषण! मैं आज तुमको अपने मन की बात बताती हूँ। यदि कोई हमारे समाज का आदमी होता तो अब तक वह मेरी बात को समझ गया होता, परन्तु तुमको बताना पड रहा है। जब से मैंने तुम्हें देखा है, मैं तुम से प्रेम करने लगी हूँ और समय आने पर तुम से विवाह करना चाहती हूँ।"

"अब मेरी भी सुन लो मीनाक्षि! जब से मैंने तुमको देखा है, मैंने तुम्हारी कोई बात पसन्द नहीं की।"

"क्यों? मुझमें क्या खराबी है? क्या मेरी रूपरेखा खराब है? क्या मैं बहुत काली हूँ? क्या मैं गन्दी रहती हूँ अथवा मेरी आवाज अप्रिय है या मैं पढ़ी-लिखी नहीं हूँ?"

"इन सब में से कोई भी बात नहीं। फिर भी कोई बात है जो मेरे मन को अच्छी प्रतीत नहीं हुई।"

"तुम किसी अन्य लडकी से प्रेम करते हो क्या?"

"नहीं। अभी मुझको इन बातों के लिए अवकाश ही नहीं। मेरी पढाई समाप्त होने मे अभी दो वर्ष शेष है।"

"यह कोई बात नहीं। जब तक तुम कहो मैं प्रतीक्षा कर सकती हूँ। मैं वचन देती हूँ कि मैं तुमको किंचित् मात्र भी कष्ट नहीं दूँगी। जब तुम कहोगे, तब ही तुमसे मिला करूँगी।"

"पर मैं पूछता हूँ कि मुझमें क्या विशेषता है कि तुम मेरे पीछे पडी हो? तुम्हारा, अपनी समाज के बहुत-से लडकों से परिचय है। उनमें कई होंगे जो मुझसे भी अच्छे होंगे। उन सबको छोड तुम मेरे पीछे क्यों भागती फिरती हो?"

मीनाक्षि इस प्रश्न से गम्भीर विचार में पड गई। वह सोचती थी कि क्यों वह उसको अपने प्रेम का भाजन बना बैठी है? उसने बहुत उपन्यास पढ़े थे और उसने मनन किया था कि क्यों एक अभिनेत्री

किसी अभिनायक को प्रेम करने लगती है। वह वैसी ही कोई बात भूषण में ढूँढ निकालना चाहती थी। बहुत विचार करने पर भी उसको उपन्यासो मे लिखे अभिनायकों की भाँति कोई चमत्कारक बात भूषण मे दिखाई नहीं दी। वह साधारण रूप-रेखा और वर्ण रखता था। इस पर भी वह उसको भला प्रतीत हो रहा था।

उस दिन से पहले वे 'बॉल' की रात को मिले थे। इसको आठ-नौ मास से ऊपर हो चुके थे। उसके बाद वह उसको आज ही मिल सकी थी, परन्तु वह सदैव उसके विषय मे सोचती रहती थी। एक-दो बार तो उसके मिलने न आने के कारण वह उसको अपने मन से निकालने का यत्न भी कर चुकी थी, परन्तु इसमे सफल नही हुई थी।

बहुत विचार के पश्चात् उसने कहा, "सत्य ही मैं बता नहीं सकती कि तुममे क्या विशेषता है, परन्तु इसमे भी सन्देह नहीं कि मै तुम्हे मन से निकाल नही सकी। प्रायः नित्य रात को स्वप्नों मे मै तुम्हे देखती हूँ।"

"पर मुझको तुम कभी स्वप्नो मे दिखाई नही देती। यदि तुम नाराज न हो तो बताना चाहता हूँ कि जब मै तुम्हारी 'बॉल' वाली रात की सूरत याद करता हूँ, तो मुझको तुमसे घृणा होने लगती है।"

इससे तो मीनाक्षि का मुख लाल हो गया। वह क्रोध से था अथवा लज्जा से, भूषण समझ नही सका। इस कारण वह उसके कहने की प्रतीक्षा करता रहा। मीनाक्षि को पुनः साधारण अवस्था मे आने मे तीन-चार मिनट लग गये। अब वह हँस पडी और बोली, "भूषण! तुम पढे-लिखे युवक हो। क्या तुम अपने मन की बात को जान नहीं सकते कि उस रात मेरी कौनसी बात थी, जो तुमको पसन्द नही थी?"

"मैंने कुछ तो विचार किया है। तुम्हारी वेश-भूषा, मद्य पीना और तुम्हारा उस काले-कलूटे से चिपटकर नाच करना, ये सब बाते मुझको भली प्रतीत नही हुई थीं।"

इस समय तक भूषण के कपड़े कुछ-कुछ सूख गये थे। वह उठ

खड़ा हुआ। नोटों को उठाकर उसने जेब में रख लिया और बाईसिकल को सीधा कर चलने को तैयार हो गया। मीनाक्षि भी उठ खड़ी हुई और अपना एक हाथ उसकी बाईसिकल के हैंडल पर रख साथ-साथ चल पड़ी।

भूषण ने अपनी बात जारी रखी। उसने कहा, "मैं अपने माता-पिता को नाराज़ कर विवाह नहीं करूँगा। भैया ने उनकी इच्छा के विरुद्ध विवाह किया है और पिता जी इसको भूल नहीं सके। उनको बहुत दुःख हुआ था। मैं अपने को उनके अहसान के नीचे दबा हुआ अनुभव करता हूँ और उनको दुःखी नहीं कर सकता।"

"तो क्या वे भी मुझको पसन्द नहीं करते?"

"यह मैं नहीं जानता। इतना तो मैं जानता हूँ कि उनको तुम्हारे समाज की बहुत-सी बातें पसन्द नहीं। यूरोपियन समाज में परिवार नाम की कोई वस्तु नहीं है। लड़का बड़ा हुआ और माता-पिता को छोड़ देता है।"

"तो क्या वे चाहते हैं कि जीवन में प्रवेश करने वाला व्यक्ति अपने सुख-आनन्द का बलिदान बूढ़े माता-पिता के पालन-पोषण में कर दे?"

"इसमें बलिदान कोई है क्या? यूँ तो जब भी दो-चार प्राणी एकत्रित होते हैं, उनको अपनी स्वतन्त्रता का कुछ न कुछ भाग बलिदान करना होता है, परन्तु इस बलिदान का प्रतिकार भी मिलता है। एक-दूसरे से सहायता की आशा की जाती है। यही बात एक परिवार की है।"

"हम तो इसको एक अस्वाभाविक सयोग समझते हैं। एक परिवार के लोग भिन्न-भिन्न विचार, आचार और स्वभाव के होते हैं। उनको परिवार की कृत्रिम भावनाओं से बाँधकर रखना सुखकारक के स्थान दुखदाई हो जावेगा।"

"हमारी समाज और तुम्हारी समाज में यह एक बहुत बड़ा अन्तर है। ऐसी अवस्था में यदि एक समाज का व्यक्ति दूसरी समाज के व्यक्ति

से विवाह-सम्बन्ध बनाये, तो दोनों में एक को अपनी समाज छोड़ दूसरे की समाज का रहन-सहन ग्रहण करना पड़ता है।"

"भैया ने तुम्हारी बहिन से विवाह किया। इस कारण भैया को अपनी समाज छोडकर तुम्हारी समाज ग्रहण करनी पडी है।"

"तो इसमें क्या हुआ है?"

"यह तो तब पता चलता, जब तुम्हारी बहिन को एक हिन्दू की भाँति रहना पडता। न वहाँ 'बॉल' होते न बूढे रसिकों से फ्लर्ट करने का अवसर। तुमको अथवा तुम्हारे माता-पिता को तुम्हारी बहिन के विवाह में कोई विचित्र बात प्रतीत नहीं हुई। कारण यह है कि तुम्हारी बहिन को कुछ पुराना छोडना नहीं पड़ा। न ही कुछ नवीन ग्रहण करना पड़ा है।"

"तो इसमें तुम्हारे भैया को कुछ लाभ ही हुआ है?"

"यह बात भी पिताजी को पसन्द नहीं। वे कहते हैं कि भैया को अपनी योग्यता से वर्तमान पदवी नहीं मिली। यह कोई अच्छी बात नहीं।"

मीनाक्षि आई थी भूषण पर विजय प्राप्त करने के लिए। वह भली भाँति जानती थी कि जब तक वह कम आयु की है, तब तक ही उसको पति ढूँढने में सुविधा है। वह यह भी समझ गई थी कि हिन्दुस्तानी क्रिश्चियन समाज में किसी अच्छे योग्य लडके का मिल सकना अति कठिन है। उसके समाज में विशेष प्रतिभा रखने वाले युवक बहुत कम थे और वह योग्य वर को पाना चाहती थी। भूषण उसको जचा था और वह उस पर अपना सम्मोहन अस्त्र चला नहीं सकी थी।

भूषण से परिचय प्राप्त हुए दो वर्ष के लगभग हो चुके थे। इस काल में उसका अन्य पुरुषों से सम्पर्क हुआ था परन्तु वे उसके मापदण्ड से छोटे सिद्ध हुए थे। इन अन्य युवकों में एक, जो सबसे अच्छा लगा

था, वह टेलिफोन कार्यालय में, जिसमे वह स्वयं काम करती थी, नौकर था। उसका नाम पीटर रामलाल था। पीटर ने मीनाक्षि से घनिष्टता उत्पन्न करने का यत्न किया था। एक सौ पचास वेतन पाता था, जो उसकी योग्यता से बहुत अधिक होने पर भी, उसके निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं था। वह होटल में खाना खाता था और नित्य मद्यपान करता था। पीटर ने मीनाक्षि से विवाह का प्रस्ताव किया तो मीनाक्षि ने हँसकर कहा, "तुम्हारे इतने कम वेतन मे किस प्रकार निर्वाह होगा ?"

इस पर पीटर अपना और मीनाक्षि का वेतन जोडकर परिवार का बजट बनाने लगा। कई बार जमा-बाकी कर वह निराश हो गया और बोला, "इस वेतन पर तो निर्वाह नहीं हो सकता। पर हमको आशा करनी चाहिए कि हम दोनो का वेतन विवाह के पश्चात् बढ़ जावेगा।"

मीनाक्षि ने हँसकर कहा था, "मैं समझती हूँ कि वेतन विवाह से पहले बढना चाहिए।"

पीटर से बातचीत टूट गई। इस प्रकार के बहुत अनुभवो और मनन के पश्चात् आज वह भूषण से मिलने का निश्चय कर नहर के किनारे उसकी प्रतीक्षा करने जा बैठी थी।

नहर से माल की ओर जाते हुए भूषण ने मीनाक्षि का ध्यान उस खाई की ओर कराया, जो उन दोनो की समाज के भीतर थी। वह इस समस्या को समझ गम्भीर हो गई। इस समय वे गवर्नमॅट हाउस के सामने से जा रहे थे। अन्त मे मीनाक्षि ने बात फिर आरम्भ की। उसने कहा, "तो हमारा विवाह किसी सूरत मे नहीं हो सकता ?"

भूषण ने उसके मुख की ओर देखा। आज वह शृगारयुक्त नहीं थी। उसकी पोशाक भी बहुत सादी थी। चिन्ता से उसका मुख पीला हो रहा था। भूषण को उसकी इस अवस्था पर दया अनुभव हुई। उसने पूछा, "मीनाक्षि क्या बात है ?"

"मैं तुम से प्रेम करती हूँ और तुम से विवाह करना चाहती हूँ।"

"तो अपने माता-पिता से कहो कि मेरे माता-पिता से मिलकर

बातचीत कर लें। वे मान जायेंगे तो मैं न नहीं करूँगा।"

"हमारे समाज में यह रिवाज नहीं है।"

"यही तो कठिनाई है। या तो मैं भी तुम्हारे समाज में चला जाऊँ, या तुम हमारे समाज में चली आओ।"

भूषण ने यह कह तो दिया, परन्तु तुरन्त ही उसको विचार आया कि क्या यह सम्भव है?

"यह कैसे हो सकता है, मुझको बताओ भूषण! मैं क्या करूँ जिससे तुम्हारे समाज में सम्मिलित हो सकूँ।"

भगवतस्वरूप और उसका पूर्ण परिवार इस प्रकार की समस्या के विषय में कुछ नहीं जानता था। उनको पता नहीं था कि कभी कोई ईसाई अथवा मुसलमान हिन्दू भी बन सकता है और वह किस प्रकार हो सकता है। भूषण ने अपनी बुद्धि से बात की। उसने कहा, "तुम हमारे समाज की औरतों की भाँति रहने लगो। बस तुम हमारे समाज में आ जाओगी। जैसा वे खाती हैं, जैसा वे पहिरती हैं, अथवा जिस प्रकार का उनका व्यवहार है, वैसा ही करने लगो, तो ठीक हो जायेगा।"

भूषण अपनी भाभी के रहन-सहन को देख चुका था और हिन्दू समाज और इसाई समाज में अन्तर को कुछ-कुछ समझने लगा था। इस कारण जब मीनाक्षि ने पूछा, "मैं क्या-क्या करूँ?" तो उसने बता दिया, "पहली बात यह है कि गोमास खाना छोड दो।" उसको अपने पिता का गोमास पर बल देना स्मरण हो आया था।

"पर तुम्हारी भाभी तो गोमास खाती हैं।"

"इसी कारण तो भैया का विवाह हमको पसन्द नहीं?"

"अच्छा, और क्या करना होगा?"

"माता-पिता की वृद्धावस्था में सेवा करनी होगी।"

"चाहे हमारे अपने पास खाने-पीने के लिए भी न बचे?"

"हमको बचाना होगा।"

"और?"

"पर-पुरुष को छूना भी नहीं होगा।"

"छी! छी! तो दफ्तर में काम कैसे चलेगा?"

"तो क्या दफ्तर मे तुम पुरुषों से कन्धे लडाया करती हो?"

"नहीं, परन्तु हाथ तो मिलाना ही पडता है।"

"हमारे समाज में हाथ जोडकर एक-दूसरे का अभिवादन किया जाता है।"

"अच्छा, और कुछ?"

"बात यह है कि सब बातें तो इस प्रकार बताई नहीं जा सकतीं। तुम मेरी माताजी से मिला करो। उनकी संगत मे रहोगी तो सब कुछ जान जाओगी। फिर यदि तुमको न पसन्द हो तो तुम किसी अन्य से विवाह का विचार कर सकती हो।"

"पर मैं पूछती हूँ कि यदि ये सब बातें कर लूँ, तो क्या तुम से विवाह की आशा कर सकती हूँ?"

"हाँ, यदि माताजी तथा पिताजी सतुष्ट हो जायँगे तो हो सकता है।"

"बहुत कठिन बात तुमने कही है। मुझको तो कोई मार्ग नहीं सूझता। इस पर भी मैं यत्न करूँगी।"

इस समय वे लौरेन्स गार्डन के समीप पहुच गए थे। भूषण के कपड़े बिलकुल खराब हो चुके थे और उसको उन कपडों मे माल पर से जाते हुए लज्जा लग रही थी। इस कारण वह बोला,

"मुझको इन कपडों मे चलते हुए लज्जा लगती है। मैं अब बाइ-सिकल पर जाना चाहता हूँ।"

"तो फिर कैसे मिलेंगे?"

"मैं समझता हूँ कि बात समाप्त हो गई है। अब यह तुमको देखना है कि हम कैसे और कहाँ मिल सकते हैं।"

इतना कह वह बाईसिकल पर सवार होकर शहर की ओर चला गया।

घर पहुँचने पर मा ने उसके कपड़ों की दशा देखी तो विस्मय में पूछा, "क्या हुआ है इनको ?"

"माँ ! नहर में बाईसिकल लुडक गई थी और साथ ही मैं भी।"

"लुडक गई ? कैसे ?"

"एक गाय मार्ग रोककर खडी हो गई। मै तेजी से आ रहा था। घण्टी बजाई तो वह उधर को ही घूम गई, जिधर मै जा रहा था। उधर नहर थी और मैं टक्कर से बचता-बचता उसमे गिर गया ?"

"ओ ! मेरे राम !" माँ ने चीख की-सी आवाज में कहा, "चोट तो नहीं आई।"

"नहीं माँ। पाँव से सिर तक स्नान हो गया। बाईसिकल बहुत कठिनाई से निकाली और फिर कपड़े सुखाये और तब कहीं घर आ पाया हूँ।"

रात खाना खाते समय भूषण ने अपने माता-पिता को कान्ता का जॉर्ज से सम्बन्ध छूट जाने का समाचार बताया तो भगवतस्वरूप ने कहा, "उस मूर्ख लडकी से मिलकर कहो कि अब उसका घर से बाहर रहने में कोई प्रयोजन नहीं रहा।"

भूषण ने कहा, "पिताजी ! अब मैं जाऊँगा।"

भूषण को अपने पिता के अपनी सन्तान के प्रति स्नेह का एक और प्रमाण मिल गया। बिना किसी प्रकार की हिचकिचाहट के उन्होंने कान्ता को लौट आने का निमन्त्रण दे दिया था।

इसके दो सप्ताह पीछे भूषण को विनोद की कोठी मे जाने का अवसर मिला। 'बॉल' वाली रात के पीछे वह आज ही वहाँ गया था। शनिवार की सायकाल वह कॉलेज से सीधा वहाँ पहुँचा। नलिनी ने भूषण को बाईसिकल पर कोठी में प्रवेश करते देखा तो काम छोड उसके आने की प्रतीक्षा करने लगी। भूषण ने बाईसिकल को एक पेड के साथ

खड़ा कर दिया और कोठी की लॉन में, जहाँ चाय का प्रबन्ध हो रहा था, जा पहुँचा। उसने हाथ जोड़ भाभी को नमस्कार कर कहा, "गुड ईवनिंग भाभी!"

इस काल में भूषण में पर्याप्त परिवर्तन आ गया था। वह दो इन्च लम्बाई में बढ़ गया था। उसकी छाती चौड़ी हो गई थी और मूँछ-दाढ़ी, जिसकी पहले कालिमामात्र थी, अब उस्तरे से साफ की हुई थी।

नलिनी ने उसको सिर से पाँव तक देखा और कहा, "बहुत बदल गये हो भूषण?"

"नहीं तो भाभी! तीसरे वर्ष की पढ़ाई अति कठिन है। बाहर फील्ड वर्क भी करना होता है। इस कारण रंग कुछ काला हो गया है।"

"मैं तो देख रही हूँ कि रंग पहिले से अधिक गोरा हो गया है। पर मैं यह नहीं कह रही। मेरा कहना तो यह है कि तुम पहिले से कुछ अधिक शुष्क हो गये हो। क्या हुआ माता-पिता हमको पसन्द नहीं करते, पर तुम तो पढ़े-लिखे युवक हो और वर्तमान काल के चलन से परिचित हो। क्या तुमको भी हम बुरे लगने लगे हैं?"

"बुरे लगते तो आता कैसे भाभी? बहुत काम रहता है। पन्द्रह दिन से आने-आने को कर रहा था। आज जाकर कहीं अवकाश मिला है।"

"पर यहाँ तो तुम ग्यारह मास के पश्चात् आये हो? और इस काल में तीन मास तक कॉलेज बन्द भी रहा है। अपने भतीजे को भी देखने को चित्त नहीं किया।"

"ओह! उसको तो मैं भूल ही गया था। कहाँ है वह?"

"बैठ तो जाओ, पहिले। दाई उसको घुमाने ले गई है। आज तुम्हारे भैया के कुछ मित्र चाय पर आ रहे हैं। वह आने ही वाले होंगे।"

"कान्ता कहाँ है?"

भूषण हँस पड़ा। उसने केवल इतना कहा, "एक को तुम ढूँढ चुकी हो। उससे विवाह करने मे पिताजी ने बाधा नहीं डाली थी।"

"क्यों", कान्ता ने माथे पर त्योरी चढ़ा कर कहा, "क्या तुम समझते हो कि कोई अच्छा पति मिलेगा ही नहीं ?"

"मैंने यह नहीं कहा। मैंने ढूँढने की कठिनाई की ओर सकेत किया है और फिर उससे मना किसी ने किया नहीं।"

"अपने-आप ढूँढने मे अधिक सतोष नहीं रहता क्या ?"

"फिर वही बात। मैंने तो सतोष अथवा असतोष की बात नहीं कही। मेरा तो इतना मात्र कहना था कि ढूँढने में कष्ट होगा। इस पर भी तुम्हारी इच्छा पर है। एक बात यह भी समझ लो कान्ता! कि सतोष का अर्थ सुख नहीं होता। मनुष्य भ्रम में फँसा हुआ काच को रत्न समझ सतोष अनुभव कर सकता है। इस पर भी रत्न की कीमत तो जौहरी द्वारा पहिचाने जाने पर ही लगाई सकती है।"

भूषण समझा रहा था कान्ता को और समझ रही थी मीनाक्षि। कान्ता ने तो यह कहा, "कैसे पता चले कि पिताजी मेरे घर लौट चलने को पसन्द करेंगे ?"

"कान्ता! घर लौट चलना कुछ भी अर्थ नहीं रखता। अर्थ रखती है मनोवृत्ति। यदि तुम समझ गई हो कि पिताजी की सम्मति ग्रहण करने योग्य है, तो अभी चलो मेरे साथ और मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कोई कुछ नहीं कहेगा। पिताजी तो तुम से यह भी नहीं कहेंगे, कि उनकी सम्मति मानो। उन्होंने यह बात तो भैया से भी नहीं कही थी। भैया ने कहा कि वे प्रोफेसर रैडी की लड़की से विवाह करेंगे। इस पर उन्होंने कठिनाई की ओर सकेत किया था, परन्तु भैया ने नहीं माना। इसी प्रकार वह समझाते मात्र ही हैं। यदि स्वीकार नहीं होगा तो फिर घर छोड़ सकती हो।"

इस प्रस्ताव पर कान्ता गम्भीर विचार में पड़ गई। इस समय तक सब चाय पीने लगे थे। भूषण विनोद के साथ कुछ मित्रों के पास

जा बैठा। चाय समाप्त हुई तो विनोद ने सब का परिचय कराया और अपने बेबी को लाकर दिखाया।

इस समय मीनाक्षि कान्ता को लॉन के एक कोने में ले जाकर खड़ी हो गई। वहाँ उसे कहने लगी, "कान्ता! तुमको अपने पिता के घर चला जाना चाहिए।"

"क्यों? भाभी ने कुछ कहा है मेरे विषय में?"

"नहीं, तुम्हारे विषय में वे कभी बात नहीं करतीं। मैं अपने मन की बात कह रही हूँ। मैं अपनी बहन के घर आकर क्यों नहीं रहती? यही बात भाई की हो सकती है। भाई से माता-पिता अधिक सहानुभूति और सहायता का व्यवहार रखेंगे।"

"तुम यह कहती हो?"

"हाँ मेरा ऐसा ही अनुभव है।"

"मैं विचार करूँगी।"

"मैं एक बात बताऊँ?"

"हाँ।"

"चलो मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। यदि तुम्हारे माता-पिता का व्यवहार ठीक न हुआ तो लौट आवेंगे।"

"नहीं मीनाक्षि! मुझको विचार करने दो।"

पार्टी पर से जाते-जाते लोगों को बहुत समय लग गया। जब सब चले गये तो भूषण ने भी जाने का विचार प्रकट किया। इस पर विनोद ने पूछा, "किसी विशेष काम से आये थे?"

"आप से और कान्ता से मिले बहुत काल व्यतीत हो गया था। आज अवकाश मिला तो चला आया हूँ।"

"यह मीनाक्षि को क्या हो गया है?"

"क्या हो गया है?" भूषण ने विस्मय से पूछा।

"वह अब हिन्दुस्तानी पोशाक पहिनने लगी है। उस दिन गीता का अँग्रेजी मे अनुवाद पढ रही थी। उसकी माँ कहती थी कि अब वह शराब नहीं पीती और न ही मास खाती है।"

भूषण इसका अर्थ समझ रहा था। वह हिन्दू-समाज को समझने का यत्न कर रही थी। इस पर भी उसने विनोद से कुछ नहीं कहा, "मै कुछ नहीं जानता भैया!"

"नलिनी का विचार था कि तुम उसको ऐसा करने को कह रहे हो।"

"मै क्यो कहूंगा?"

"जैसे समझ मे आये, करो। एक बात मेरी पिताजी से कह देना। उन्होने छः हजार रुपया बहुत आड़े समय मे दिया था। अब मै उनको वह रुपया वापिस कर देना चाहता हूँ।"

"तो भैया! चलो न दे आओ।"

"नही। तुम यह रुपया ले जाओ। मै फिर आऊँगा।"

"और यदि उन्होने न लिया तो?"

"तो ले आना।"

"अच्छा दे दीजिये।"

विनोद ने सौ-सौ रुपये के नोट कोठी के भीतर से लाकर दे दिये। भूषण ने ये कोट की भीतर की जेब मे रख लिये। नोट देते समय विनोद ने कहा, "देखो यह बात अपनी भाभी को नहीं बताना।"

इस समय कान्ता आई और विनोद से कहने लगी, "भैया! भूषण घर चलने के लिए कह रहा है।"

"सदा के लिए या केवल मिलने के लिए?"

"यह तो कह रहा है सदा के लिए, पर मै अभी आज के लिए ही जा रही हूँ। इसके पीछे विचार करूँगी।"

"तो ड्राईवर को मोटर मे ले जाने के लिए कह देता हूँ।"

"मोटर की क्या आवश्यकता है। हम बाईसिकलो पर चले

जावेंगे।"

"अँधेरा हो गया है। बाइसिकलें यहाँ पड़ी रहेंगी।"

जब कान्ता मोटर में सवार होने लगी तो मीनाक्षि ने कहा, "मैं कल मिलने आऊँगी।"

भगवतस्वरूप शनिवार की सायंकाल भूषण की प्रतीक्षा किया करता था। वह आज भी प्रतीक्षा कर रहा था और जब कान्ता के साथ वह घर पहुँचा तो प्रसन्नता के साथ उसका मुख खिल उठा। उसने पूछा, "तो कान्ता को ले आये हो तुम?"

"पिताजी! क्या आपने बुला भेजा था?" कान्ता ने हाथ जोड़ नमस्कार कर पूछा।

भगवतस्वरूप ने उत्तर देने के स्थान कान्ता की मा को आवाज़ दे दी, "ओ शील! देखो कौन आया है!" वह इस समय रसोईघर में भोजन बना रही थी और आवाज सुन चली आई। जब कान्ता ने नमस्ते कही तो उसके सिर पर हाथ फेर प्यार देने लगी।

इसके पश्चात् सब बैठ गये। कला और शोभा भी आ गईं। कान्ता को विश्वास हो गया कि सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। वह समझ गई कि भूषण उसकी परीक्षा ले रहा था, जो कुछ भी न बता कर उसको चलने के लाभ बता रहा था। अब वह विचार कर रही थी कि उसने स्वेच्छा से आकर अच्छा ही किया है।

अगले दिन उसने भूषण से पूछा, "भूषण! तुमने मुझसे बताया क्यों नहीं कि पताजी के कहने पर तुम मुझको लेने गये हो?"

"मैं तुमको स्वेच्छा से आने का अवसर देना चाहता था। मुझको विश्वास था कि तुम आजाओगी और इससे सब के मन में तुम्हारे लिए मान बढ़ेगा।"

"तो तुम समझते हो कि मुझको घर छोड़कर नहीं जाना चाहिए था?"

"घर छोड़ना तो एक अन्य कार्य के परिणाम में हुआ था न? वह

इस समय कला आ गई। कान्ता ने मीनाक्षि का परिचय कराया। दोनों एक-दूसरे को पहले ही जानती थीं। इस कारण परिचय कराने पर कला हँस पडी।

"भूषण जी घर पर नहीं हैं?" मीनाक्षि ने पूछा।

"कॉलेज से तो आये हुए हैं। पिताजी के साथ किसी मित्र के घर गये हुए हैं।"

"तुमको कुछ काम है आज?"

"कुछ विशेष नहीं।"

"तो चलो न टीटी के घर चलें।"

"वहाँ कुछ है आज?"

"कुछ नहीं। जीजाजी उस दिन कह रहे थे कि कान्ता कई दिनों से नहीं आई।"

"अच्छा, पिताजी से पूछकर चलेंगे।"

"तो तब तक मैं यहाँ बैठी रहूँगी क्या?"

"क्या हानि है! भोजन यहीं कर लेना। फिर आराम करेंगे और पश्चात् चलेंगे।"

यही तो मीनाक्षि चाहती थी। इस पर भी उसने पूछ लिया, "तुम्हारे माताजी मेरे यहाँ खाने में आपत्ति नहीं करेंगी क्या?"

"आपत्ति क्यों करेंगी?"

"मैं हिन्दू नहीं हूँ न।"

"तुम्हारी बहन भी तो हिन्दू नहीं है। वह जब भी यहाँ आती है, हमारे साथ खाती है। यहाँ शर्त यह रहती है कि जो-कुछ हम खाते हैं, वही सब खाते हैं।"

"तो तुम लोग छूआछूत नही मानते?"

"मानते हैं। हम सब पृथक्-पृथक् थालियों में खाते हैं। हम किसी के भी साथ नहीं खाते।"

मीनाक्षि चुप रही। इसका मतलब यह हुआ कि वह भोजन वहाँ

करेगी। भोजन के समय तक इधर-उधर की बातें होती रहीं। समय पर भगवतस्वरूप और भूषण आ गये। कला और शोभा भोजन परसने में माँ की सहायता करने लगीं।

मीनाक्षि को पहचानने में भगवतस्वरूप को भी कुछ समय लगा। जब उसको पता चला कि वह कौन है, तो विस्मय में बोल उठा, "यह मीनाक्षि है क्या?"

"हाँ पिताजी! मिलने आई है।"

"इन कपड़ों में तो यह पहिचानी ही नहीं जाती। सुनाओ मीनाक्षि! तुम्हारी बहन कैसी है?"

"अच्छी तरह है, पिताजी! मैं कान्ता के साथ उनको मिलने जा रही हूँ। आप स्वीकृति देंगे न?"

"स्वीकृति? देखो बेटी! यहाँ पाबन्दी किसी पर नहीं है। पसन्द और नापसन्द का प्रश्न अवश्य रहता है। पर कान्ता को अपने भैया और भाभी से मिलना कभी मना नहीं किया गया।"

भूषण कपड़े बदलने गया था। वह आया तो सब खाने के लिए बैठ गये। मीनाक्षि भी सब की भाँति पलथी मारकर बैठ गई। भूषण उसको इस प्रकार बैठते देख हँस पड़ा। उसे हँसते देख भगवतस्वरूप ने पूछा, "मीनाक्षि! पहले भी कभी इस प्रकार बैठकर खाया है?"

"अपनी याद में नहीं। पर इन कपड़ों में तो इस प्रकार बैठने में कोई कष्ट नहीं होता।"

"यह सबसे सस्ता ढंग है जीवन का। मेरा सिद्धान्त है कि कम-से-कम खर्चे में अच्छे-से-अच्छा खाना लेना चाहिये। मेज कुर्सी से भूमि पर चटाई बिछाकर बैठना बहुत सुगम और सस्ता है। यह हमारे देश के जलवायु के अनुकूल है।"

घर की बनी साग-भाजी और रोटी परसी गई। मीनाक्षि जो उबली सब्जियाँ और टोस्ट-मक्खन खाने का स्वभाव रखती थी, घी में बनी शाक-भाजी खाकर बहुत प्रसन्न हुई। टोस्ट से रोटी अधिक स्वादिष्ट थी।

मीनाक्षि भूषण के परिवार में पहुँचना चाहती थी। उसका यह प्रयास भूषण के माता-पिता को अपने अनुकूल करने के लिए था। पहले-पहल जब उसने गौन और स्कर्ट छोड सलवार कुर्ता पहना था, तो उसको कुछ अच्छा प्रतीत नहीं हुआ था। परन्तु ये वस्त्र पहन जब वह दर्पण के सामने खडी हुई तो उसको अपना सौन्दर्य बढा हुआ प्रतीत हुआ। इससे इन कपडों के पहिनने मे जो अचकचाहट थी, वह दूर हो गई। उसके माता-पिता और अन्य सम्बन्धियो ने उसकी इन कपडो मे हँसी उडाई, परन्तु उसके मन में एक धुन सवार थी। वह भूषण से विवाह करना चाहती थी। हँसी का उस पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ।

पीटर रामलाल ने भी उसकी हँसी उडाई। जब दोनो कार्यालय से छुट्टी पा घर की ओर चले तो रामलाल ने मीनाक्षि की बाँह-में-बाँह डालनी चाही। मीनाक्षि ने बाँह दूर कर ली। इस पर रामलाल ने पूछा, "क्यो क्या हुआ है आज ?"

"देखते नहीं कि मैं हिन्दू लडकियों का पहिरावा पहने हूँ।"

"तो क्या हुआ ?"

"हिन्दू लडकियाँ इस प्रकार पुरुषो की बाँह-में-बाँह डालकर सडक पर नही घूमती।"

"पर तुम हिन्दू तो नही हो ?"

"मैं हिन्दू लडकियों का नाटक कर रही हूँ। वह नाटक ही क्या हुआ, जो सर्वांग शुद्ध न हुआ।"

"तो किसी हिन्दू पर काम-बाण चलाने जा रही हो ?"

"शृगार तो किया नहीं, फिर काम बाण की बात कैसे उत्पन्न हो गई ? देखो पीटर ! तुम से मेरा विवाह नही हो सकता। तुम एक परिवार का बोझा उठाने के योग्य नहीं हो। इस कारण मैं अपने भविष्य के विषय में विचार कर रही हूँ।"

"वह कौन सौभाग्यवान है जिससे तुम्हारा विवाह होगा ?"

"जब होगा तब तुमको उसका पता चल जावेगा।"

मीनाक्षि एक दिन रामाकृष्ण एण्ड सन्स की दूकान पर हिन्दुओं की धर्म-पुस्तक खरीदने जा पहुँची। उसने एक वृद्ध सज्जन से, जो दूकान का मालिक प्रतीत होता था, जाकर पूछा, "क्या आप मुझको कोई हिन्दू धर्म की पुस्तक, जो अंग्रेजी भाषा में हो, दे सकते हैं?"

वे वृद्ध महाशय विचारकर पूछने लगे, "कितनी पढ़ी हैं आप?"

"सीनियर कैम्ब्रिज की परीक्षा पास की है।"

"तो यह लो, जब यह पढ़कर समझ लोगी तो फिर आना। तब मैं तुमको इससे ऊँचे दर्जे की पुस्तक दूँगा।" इतना कह उसने ऐनी-बीसेन्ट का गीता का अंग्रेजी भाषा में अनुवाद दे दिया। मीनाक्षि छः आना दाम देकर पुस्तक घर ले गई और उसको पढ़कर समझने का यत्न करने लगी। पहला अध्याय तो कहानी का एक अंग था। वह तो सुगमता से समझ में आ गया। दूसरा अध्याय अर्जुन के संशयों से भरा हुआ था। वह भी कुछ यत्न करने से समझ गई। परन्तु तीसरे अध्याय पर गाड़ी जा अटकी। उसको भी वह ज्यूँ त्यूँ कर पढ़ गई। इसके आगे तो वह बिलकुल नहीं चल सकी। अन्त में हताश हो पाँचवाँ अध्याय पढ़ते-पढ़ते उसने पुस्तक फेंक दी। फिर पुस्तक को उठाकर अलमारी में उपन्यासों के साथ रख दिया।

पहले दिन जब वह कान्ता से मिलने गई थी, उसको तीन घण्टा-भर भूषण के माता-पिता की संगत में रहने का अवसर मिला। उसने देखा कि वहाँ उस धर्म-पुस्तक की बात नहीं चली। अपितु कान्ता के पिता सरल, सादा और सस्ता जीवन व्यतीत करने की बात करते रहे। कान्ता की माँ तो घर के कामकाज की ही बातें करती रही। भूषण ने वार्तालाप में बहुत कम भाग लिया। एक समय जब उसके कॉलेज की पढ़ाई की बात चली तो उसने कहा, "माँ! एक इञ्जीनियर व्यव-हार-कुशल कलाकार होता है। वह संसार को सुन्दर, सुखकारक और सुविधाजनक बनाने का यत्न करता रहता है।"

"पर बेटा!" कला ने कहा, "यह मशीनें जो तुम लोग बनाते चले

जाते हो, जीवन को विषम नहीं बना रहीं क्या? पुराने जमाने में जब लाखों मन कोयला नहीं फूँका जाता था, क्या इस पृथ्वी का वायुमण्डल अधिक स्वास्थ्यप्रद नहीं था?"

"हुरें!" भगवतस्वरूप ने कला की बात का समर्थन करते हुए कहा।

"पर पिताजी! यह बढ़िया मलमल, अतलस और साटिन, जो कला पहनकर फूली नहीं समाती, क्या मशीनों की और इञ्जीनियरों की देन नहीं?"

"तुम ये वस्तुएँ निर्माणकर यह समझ रहे हो कि समाज का भला कर रहे हो? क्या कला खद्दर के कपड़े पहिनकर कला न रहती और हमको कम प्रिय हो जाती? एक सरल-सी बात, कि शरीर ढाँपने के लिए कपड़ा चाहिए, तुमने ऐसा कर दिया है कि मनुष्य शरीर की रक्षा को गौण और शरीर की सजावट को मुख्य मान बैठा है। यह मनुष्य का भला हुआ है या बरबादी?"

"पिताजी! यह बात इस प्रकार नहीं। पहले तो आधी से अधिक जनता आधे से अधिक शरीर से नगी रहती थी। मशीनों ने कपड़ा इतना सस्ता कर दिया है कि अब निर्धनों के ट्रक भी कपड़ों से लदे दिखाई देते हैं।"

"न पहले के लोग नगे रहते थे न अब लोग पूर्ण रूप से ढक गए हैं। जो निर्धन हैं, वे निर्धन ही हैं और उनकी कपड़े की आवश्यकताएँ ट्रक भरे रहने पर भी पूरी नहीं हुई। जहाँ मशीनों ने कपड़े अधिक बना दिये हैं वहाँ जनता की आवश्यकताएँ भी बढ़ गई हैं।"

"पर कला का कहना है कि स्वास्थ्य ही सबकुछ है। सौन्दर्य कुछ नहीं।"

इस पर कला ने कह दिया, "मैंने यह बात नहीं कही। मेरा अभिप्राय तो यह है कि कला कला के लिए ही है। जहाँ कला में उपयोगिता का विचार आया कि न कला रही न उपयोगिता।"

"तो तुम यह समझती हो कि संसार में कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं, जो बिना उपयोगिता के हैं ?"

"उपयोगिता को यदि केवल शरीर की सुख-सुविधा ही समझें, तो कला इससे बहुत ऊँची वस्तु है और उपयोगिता कला को कुरूप करने वाली हो जाती है।"

भगवतस्वरूप ने बीच में ही बात काटकर कहा, "अच्छा कला ! तुम कोई ऐसा उदाहरण दो, जिसको तुम कला मानती हो और जो अति प्रिय होते हुए भी, शरीर की सुख-सुविधा से दूर हो।"

इस सीधे प्रश्न पर भूषण ने समझा कि कला परास्त हो गई। मीनाक्षि भी कला के निरुत्तर होने पर मुस्कराई, परन्तु कला कुछ काल तक गम्भीर हो बैठी रही। पश्चात् बोली, "पिताजी ! यदि मैं एक गीत सुनाऊँ तो आप क्या सुनकर बताएँगे कि मेरे कथन की पुष्टि इससे होती है अथवा नहीं ?"

"तुम गाओगी ?"

"हाँ पिताजी ! मेरे पास और कोई वस्तु है नहीं जो मैं अपने कथन की पुष्टि में उपस्थित कर सकूँ। मैं केवल संगीत कला ही तो सीख रही हूँ।"

मीनाक्षि ने कह दिया, "ठीक है पिताजी ! आप उदाहरण चाहते हैं न और यह एक उपस्थित कर रही है।"

सबने कला के गीत सुनाने का समर्थन कर दिया। कला तानपूरा उठा लाई और उसे स्वर कर सारंग का स्वर भरने लगी। आलाप आरम्भ हुआ तो कला के मधुर स्वर और स्वर-विन्यास ने सबको मन्त्र-मुग्ध कर दिया। कला ने गाना आरम्भ कर दिया। उसने गाया,

"चीर, अबीर न मारो, अखियाँ चटक गईं।
रंग गुलाल से छाई,
अरुणाई मन भाई,
भीगी चुनरी मोरी,

अग संग सब सटक गई । पीर अपीर • ।"

तानालाप, जितना वह जानती थी, उसने गाया । मध्याह्न का सम सारग राग और कला के मधुर स्वर ने यह तो सिद्ध कर दिया कि ग बहुत अच्छा था ।

कला ने गाना समाप्त किया और तानपूरा भूमि पर लिटाते कहा, "भूषण भैया ! अब बताओ कुछ आनन्द आया कि नहीं ?"

"स्वाद तो बहुत आया है ।" भूषण तथा अन्य सबने क "कला सगीत में विशेष निपुणता प्राप्त कर रही है ।"

"तो अब बताइये, इसमें उपयोगिता कहाँ है ?"

सब सोचने लगे । मीनाक्षि समझ गई कि भूषण हार गया है ग गीत में उपयोगिता ढूँढ रहा है परन्तु कुछ पा नहीं रहा । इस पर इस गाने में कुछ था, जो उसको भी भला लगा था ।

उस दिन के पश्चात् मीनाक्षि को कुछ ऐसा प्रतीत होने लगा कि भूषण के परिवार के सब लोग बुद्धिवादी हैं । वह उनके घर के वा वरण से अपने घर के वातावरण की तुलना कर रही थी । उसने अनु किया कि उसको उन तक पहुँचने के लिए कुछ ऊपर उठना होगा । के सलवार-कुर्ता पहिनना काफी नहीं । इसके लिए कुछ और अधिक क होगा ।

नलिनी पियानो बजाती थी और उस पर प्रायः 'लव लिरि गाया करती थी । उसका सबसे प्रिय गीत था, 'आई लोंग टु बी टाईन

मीनाक्षि को इस गीत में और कला के गीत में भारी अन्तर प्र हुआ था । एक वासनामय था, दूसरा वर्णनात्मक था ।

वह यह जानने के लिए उत्सुक थी कि क्या श्रेष्ठता है इन इसके लिए उसने अनुभव किया कि भूषण के माता-पिता से अ सम्पर्क उत्पन्न करे । वह सप्ताह में एक-दो बार कान्ता से मिलने अ लगी । परिणामस्वरूप कान्ता की मा के साथ उसका सम्पर्क ब लगा । 'रसरी आवत जात ते पत्थर पडत निशान' वाली बात होती ग

धीरे-धीरे मीनाक्षि बदलने लगी और एक वर्ष के पश्चात् मीनाक्षि के परिचित मित्र पहली मीनाक्षि को भूल गए।

मीनाक्षि भूषण की माता के साथ मन्दिर जाती, पूजा करती और हिन्दू त्योहार और पर्वों पर हिन्दू लड़कियों के समान आचरण करने लगी।

रविवार का दिन था। मीनाक्षि के माता-पिता गिरजाघर जाने को तैयार खड़े थे। मीनाक्षि तैयार हो रही थी। उसकी मा ने कहा, "देखो मीनाक्षि! आज युरोपियन पोशाक पहिन कर आना।"

"क्यों?"

"वहाँ सब भले घरों के लोग आते हैं और अब तुम बड़ी हो गई हो।"

"मैं बड़ी हो गई हूँ तो इसका मेरे पहिरावे से क्या सम्बन्ध है?"

"तुम्हारा विवाह होगा या नहीं। इन कपड़ों में तो तुमसे कोई प्रेम करने का साहस भी नहीं करेगा।"

"क्यों? क्या यह कपड़े गन्दे हैं?"

"नहीं, यह बात नहीं। हमारे लोग युरोपियन ढंग से कपड़े पहनते हैं और वे अपनी स्त्रियों को भी उन्हीं कपड़ों में देखना चाहते हैं।"

"ठीक है मम्मी! मैं उनसे न तो प्रेम की अभिलाषा करती हूँ और न ही उनसे विवाह करने का विचार रखती हूँ।"

"तो किसके साथ विवाह होगा तुम्हारा?"

"किसी के साथ तो होगा ही। अभी मैंने अपने मनमें कुछ निश्चय नहीं किया।"

"तो निश्चय कैसे करोगी? हमारे समाज में लड़के मिलने अति कठिन हैं।"

"मुझको इसकी चिन्ता नहीं। मैं अपना निर्वाह स्वयं कर सकती

हूँ। आपको भी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। मैं घर में रहने का अपना व्यय आपको दे ही रही हूँ।"

मीनाक्षि नहीं मानी और भारतीय पहरावे में ही गिरजाघर जाने के लिए तैयार होने लगी। मीनाक्षि की मा का कहना अकारण नहीं था। गिरजाघर में एक युवक मीनाक्षि की मा के पास आकर बैठ गया और जब तक प्रार्थना होती रही, सबकी भाति वह भी आँखें मूंदे बैठा रहा। पश्चात् जब धर्मगीत गाया जाने लगा तो वह युवक दत्त-चित हो मीनाक्षि को गाते देखने लगा। मीनाक्षि उसके अपनी ओर देखने को अनुभव कर रही थी और उसे यह बात अनुचित प्रतीत हो रही थी। इस पर भी उसने उस युवक की ओर ध्यान नहीं दिया। वह सामने ध्यान किए हुए गाती रही।

गीत समाप्त हुआ और उपदेश आरम्भ हुआ। जब यह सब कुछ होता रहा, वह युवक उसकी ओर बराबर देखता रहा। अब मीनाक्षि को विश्वास हो गया कि इसी युवक को दिखाने के लिए उसे युरोपियन पोशाक पहनने को उसकी मा उसे विवश कर रही थी। इससे वह सतर्क हो गई और गिरजाघर से बाहर जाने की प्रतीक्षा करने लगी। बाहर जाकर ही उस युवक से परिचय हो सकता था और तब ही वह उस युवक के विषय में जान सकती थी।

जब सब लोग बाहर निकलने लगे तो वह युवक भी मानयुक्त मुद्रा में मीनाक्षि की मा के पीछे-पीछे चलता हुआ बाहर चला आया। बाहर आकर मीनाक्षि की मा ने लडकी से उसका परिचय कराया, "यह हैं मिस्टर के० मैनन। भारत सरकार के होम डिपार्टमेंट में एक ऊँची पदवी पर नियुक्त हैं। सरकारी कार्य से लाहौर आये थे। विनोद के घर में ही ठहरे हैं। और मिस्टर मैनन! यह है मेरी लडकी मीनाक्षि।"

मैनन ने मीनाक्षि से हाथ मिलाया। हाथ मिलाते समय मीनाक्षि को भूषण का कथन स्मरण हो आया कि उसको किसी परपुरुष का स्पर्श नहीं करना चाहिए। जब मैनन ने उसका हाथ आवश्यकता से अधिक

काल तक पकड़े रखा तो उसको कपकपी हो उठी। मैनन ने इसको अनुभव किया और मीनाक्षि की आँखों में देखकर पूछा, "क्या है मीनाक्षि?"

"कुछ नहीं" और उसने अपना हाथ खैंच लिया। "आप कहां ठहरे है?" उसने बात बदलकर पूछा।

"मैं मिस्टर विनोद की कोठी में ही ठहरा हूँ। सरकारी कार्य से यहाँ एक मास तक रहने की आशा है। मुझको अत्यन्त प्रसन्नता होगी यदि आप वहाँ दर्शन दें।"

"वहाँ तो मैं जाती रहती हूँ। नलिनी मेरी बहन है और जीजाजी मुझसे बहुत स्नेह करते हैं।"

"तो कल चाय के समय आईयेगा। आपकी कृपा होगी।"

मीनाक्षि मिस्टर मैनन का आशय समझती थी। 'परन्तु यह एकाएक कैसे हो गया। उसको किसने कहा कि मेरी अभी सगाई नहीं हुई। क्या वह गिरजाघर मेरे लिए ही आया था?' उसकी मा ने उसको युरोपियन पोशाक पहन गिरजाघर जाने के लिए कहा था। यह क्या एक योजनानुसार नहीं? तो सिद्ध हुआ कि उसके सम्बन्धी उसको शीघ्रातिशीघ्र विवाह देने का षड्यन्त्र कर रहे हैं। ऐसा क्यो? क्या वह किसी के सिर पर बोझा है? वह जानती थी कि यह सत्य नहीं। तो फिर यह क्यो हुआ कि एक दिल्ली में रहने वाला अफसर उससे मिलने आया और अब उसको चाय का निमन्त्रण दे रहा है।

जब मैनन चला गया तो मीनाक्षि ने घर वापिस आते हुए मार्ग में अपनी मा से पूछा, "मम्मी! क्या तुम यह जानती थीं कि मिस्टर मैनन गिरजाघर मुझको देखने आ रहा है?"

"हाँ। इसी कारण तुमसे कहा भी था कि युरोपियन पोशाक पहन कर चलो।"

"परन्तु मेरे विषय में उनको किसने बताया है?"

"बात यह है कि मिस्टर मैनन दो दिनों से विनोद के घर पर ठहरा हुआ है। उसने तुम्हारा चित्र ड्राइंग रूम में देखा और उसे देख

तुम्हारे सौन्दर्य की प्रशंसा करने लगा। इस पर नलिनी ने कहा कि तस्वीर उसकी बहन की है और वह अभी कुँवारी है। इस पर मेनन ने तुम्हें देखने की इच्छा प्रकट की और नलिनी ने मुझको कहला भेजा कि तुमको उसी प्रकार की पोशाक में गिरनाचर ले जाऊँ, जैसी तुमने तस्वीर में पहनी हुई है। पर तुम मानी नहीं।"

"तो यह बात है। यह मेसा भी अपने को सौन्दर्य का पारखी मानता है।" इतना कह वह हँस पड़ी। उसकी मा उसको हँसते देख हैरान हो गई।

मीनाक्षि ने कहा, "मैं कल उससे चाय के समय मिलने जा रही हूँ और उसको स्पष्ट कह दूँगी।"

"क्या कह दोगी?"

"कि मैं मिस्टर भूषण से प्रेम करती हूँ।"

"यह प्रेम की बात हमारी समझ मे नहीं आती। जब तक तुम किसी की पत्नी नहीं बन जाती तब तक जितनो मे चाहे प्रेम करो। परन्तु जिस किसी से भी तुमने विवाह करना है उससे प्रेम का नाम नहीं लेना। वह चिढ जायगा।"

"अच्छी बात है," मीनाक्षि ने कहा, "मैं समझ लूँगी।"

"इस पर भी एक बात तुमको समझ लेनी चाहिए। वह गृह-सचिव का पर्सनल असिस्टेंट है। पाँच सौ मासिक वेतन पा रहा है और ऊपर की आय के उसके अपने ढंग हैं। तुम्हारा जीवन सुखी रहेगा। एक हिन्दू-परिवार मे कई असुविधायें है। यह भी विचार करने की बात है। विनोद जो कुछ भी है, नलिनी के कारण है, इस पर भी वह उससे झगड़ा करता रहता है। नलिनी उससे सुखी नहीं है।"

"मैने तो उनको झगड़ते देखा नहीं।"

"तुम अभी बच्ची हो, इस कारण तुम्हारी बहिन तुम से बताते हुए लज्जा अनुभव करती है।"

मीनाक्षि इस समाचार से चिन्ता अनुभव करने लगी। वह उसके

लिए एक नवीन बात थी।

अगले दिन जब वह विनोद की कोठी मे मैनन से मिली, तो विनोद और नलिनी घर पर नहीं थे। नलिनी बाजार से कपड़ा खरीदने गई थी और विनोद अभी दफ्तर से वापिस नहीं आया था। मीनाक्षि आई तो मैनन ने टेलीफोन से टेक्सी मगवाली और सवार होकर सैसिल होटल में चाय पीने चले गए।

मार्ग में मीनाक्षि इधर-उधर की बातें करती रही। उसने पूछा, "आप यहाँ सरकारी कार्य के निरीक्षण के लिए आये है क्या ?"

"हाँ! यहाँ गृह-निर्माण के कुछ ठेके बिना पी० डब्ल्यू० डी० की जानकारी के दिये गए हैं। उनके विषय मे जाँच करने आया हूँ। इनमे पजाब सरकार के कई सचिव भी लिप्त हैं।"

"तो यह जाँच कई दिनो तक चलेगी ?"

"एक मास तो लग ही जावेगा।"

"तब तक आप मिस्टर विनोद के घर पर ही रहेगे क्या ?"

"अभी यह निश्चय नहीं किया। अभी तो मैं प्रारम्भिक कार्यवाई कर रहा हूँ। जब पता चलेगा कि कौन-कौन व्यक्ति इस अनियमित कार्य मे भागीदार है, तब ही मैं निर्णय करूँगा कि कहाँ ठहरूँ।"

मीनाक्षि इस दफ्तरी काम मे रुचि नहीं रखती थी। इस कारण वह चुप कर गई। इसपर मैनन ने अपनी बात आरम्भ कर दी, "उस दिन विनोद के कमरे में एक सुन्दर लडकी का चित्र देखकर मेरा मन उससे मिलने को करने लगा। पूछने पर मालूम हुआ कि चित्र मिसेज विनोद की बहिन का है। मैंने समझा कि गिरजाघर मे भेंट हो सकेगी और वहाँ बैठकर मैं भली भाँति उसको समीप से देख सकूँगा। इस अर्थ आपकी माता से परिचय प्राप्त किया और कल आप से भेंट हुई। अब आप से अधिक परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला है। मैं

आपका धन्यवाद करता हूं।"

इस समय वे सैसिल होटल में पहुँच गए थे। वहाँ हाल में एक कोने में एक मेज पर वे जा बैठे। जब बेरा को आर्डर दिया जा चुका तो मैनन ने पुनः अपनी बात आरम्भ कर दी। उसने मीनाक्षि की आँखों में देखते हुए कहा, "जो कुछ मैंने उस चित्र में देखा था, उससे बहुत कुछ अधिक अपने सामने देख रहा हूँ। मैं आपका कृतज्ञ हूँ कि आपने मुझको अवसर दिया है। आपने दिल्ली देखी है?"

"हाँ! कई बार गई हूँ। नई दिल्ली वास्तव में एक सुन्दर नगरी है। विशाल, हवादार और उद्यानों से भरा हुआ यह नगर, भारत सरकार के महान् कार्यों में एक है। मैंने वाईसरीगल लौज और सेक्रेटेरियेट की इमारतें भी देखी हैं। इंडिया गेट कितना भव्य है।"

"वहाँ रहना आप पसन्द करेंगी क्या?"

मीनाक्षि खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने कहा, "मिस्टर मैनन! भव्य भवन देख-देखकर कोई जी नहीं सकता। जीवन के लिए और भी कई बातें हैं। मैं समझती हूँ कि भवनों से वे अधिक आवश्यक हैं।"

"भवनों में रहना भी तो जीवन का एक अंग है।"

"भवनों में रहने मात्र से जीवन नहीं चलता। यहां रावी के पास एक बहुत ही सुन्दर और विशाल भवन है। पर वहाँ बादशाह जहाँगीर की अस्थियाँ ही रखी हैं। वे अस्थियाँ जीवन का लक्षण नहीं। वहाँ से अधिक सरस जीवन तो एक झोंपड़े में मिल सकता है।"

"तो सरस जीवन की उपलब्धि के लिए आप किस वस्तु को आवश्यक समझती हैं?"

मीनाक्षि ने उत्तर देने के स्थान पूछ लिया, "आपकी आयु कितनी होगी?"

मैनन इस प्रश्न से कुछ झेंप गया। उसने विचार कर कहा, "मैं समझता हूँ कि मैं पैंतीस वर्ष के लगभग हूँ।"

"तो आप अभी तक नहीं समझे कि जीवन की पूर्णता किस में है?"

"मैं जो कुछ समझा हूँ, वह तो पीछे बताऊँगा। पहले आप ही बताइये न कि आपको जीवन की पूर्णता किस बात में प्रतीत होती है।"

"देखिये। प्रभु ने मनुष्य को अपने साँचे में बनाया है। धर्म-पुस्तक में ऐसा लिखा है। यदि हम भगवान् की नक्ल हैं तो हमको असल में भगवान् बनने का यत्न नहीं करना चाहिए क्या?"

"यही तो प्रश्न है कि भगवान् क्या है, कहाँ है और कैसा है?"

"वह दया का भण्डार है। वह कृपा सागर है। वह हमारा संरक्षक है, पालनकर्ता और पिता है।"

"होगा। पर मैं पूछता हूँ कि इससे हमारा क्या सरोकार है? क्या वह हम पर अपने इन सब गुणों का प्रयोग करता है? क्या यदि मैं आफिस न जाऊँ तो वह दया कर मुझे बचा लेगा?"

"क्यों नहीं। परन्तु शर्त यह है कि आपको दफ्तर से बचाया हुआ समय उसकी सेवा में व्यतीत करना चाहिए। यदि उस काल में आप शैतान की आज्ञा का पालन करते हैं तो वह कैसे आपको बचा लेगा।"

मीनाक्षि गिरजाघर में जो उपदेश सुना करती थी, उसे ही मैनन को सुना रही थी। मैनन भी ऐसी बहुत-सी बातें सुन चुका था। इस कारण मीनाक्षि को इस प्रकार बातें करते देख, उसमें बचपन की झलक अनुभव कर मुस्कराया। मीनाक्षि ने यह देख एक सीधा प्रश्न कर दिया, "क्या आपने इस जीवन में कभी कोई 'कमाटमेंट' नहीं तोड़ा?"

"तोड़ा है और उससे परम् सुख प्राप्त किया है।"

"तो भगवान् आप पर कैसे दया दिखा सकता है? आप निश्चय ही नरक में जावेंगे।"

"मैं नहीं जानता कि नरक कहाँ है। मैं तो यह जानता हूँ कि आप मेरे सामने बैठी हैं और मैं स्वर्ग में हूँ। मैं जब मद्यपान करता हूँ तो स्वप्नलोक में पहुँच जाता हूँ और उसमें जो आनन्द अनुभव करता हूँ, वही मेरे लिए सब कुछ है।"

"परन्तु स्वर्ग से बढ़िया तो कुछ है नहीं। जो पुरुष स्वर्ग में पहुँच जाता है उसकी सब इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। तो क्या मैं यह समझूँ कि मेरे सामने बैठने-मात्र से आपकी पूर्ण अभिलाषाएँ पूर्ण हो गई हैं। तब तो ठीक है। जब आप स्वर्ग पा गए हैं तो अब आपके लिए इस जीवन में कुछ करने को रहा नहीं। न नौकरी करने की आवश्यकता है और न भोजन करने की। आप तो पूर्णानन्द पा गए। अब इससे अधिक आपको कुछ नहीं चाहिए।"

मैनन समझाने लगा, "मैं तो इस क्षण की बात कह रहा हूँ। पूर्ण जीवन में न तो तुम मेरे सामने रहोगी न ही मेरा स्वर्ग स्थिर रहेगा।"

"तो यह अस्थिर अनुभव स्वर्ग नहीं है। मैं यदि आपके सामने सदैव के लिए बैठी भी रहूँ तब भी तो मैं सदैव ऐसी नहीं रह सकती जैसी हूँ। जब बूढ़ी हो जाऊँगी तब तो मेरे आपके सम्मुख रहने से भी आपका स्वर्ग नहीं रहेगा। जब मैं विनाशमय हूँ तब मेरे से स्वर्ग स्थापना नहीं हो सकती।

"फिर क्या आप मुझको अपने सामने बैठाना मात्र ही चाहते हैं या मुझसे कुछ अधिक आशा रखते हैं?"

"मैं आपको अपनी पत्नी बनाना चाहता हूँ।"

"तो जो कुछ वर्तमान में है, उससे आप कुछ अधिक चाहते हैं। तब यह स्वर्ग नहीं है, क्योंकि स्वर्ग से अधिक उत्तम और कुछ नहीं।"

बैरा चाय लगा रहा था इस कारण मीनाक्षि चुप कर गई। मैनन को विचार करने का अवसर मिल गया। वह यह तो समझ गया कि मीनाक्षि युक्ति करने में उससे अधिक योग्य है। इस पर भी आयु में बड़ा होने के कारण और एक सरकारी अधिकारी होने के नाते वह उसे समझाने के लिए उपाय ढूँढने में लग गया। जब बैरा चला गया तो उसने कहा, "देखो मीनाक्षि! मैं तुमसे यहाँ धर्म-चर्चा करने नहीं आया। मैं तो तुमको यहाँ इसलिए लाया हूँ कि तुमको 'प्रपोज़' करूँ।"

मीनाक्षि मुस्कराई। वह बोली, "आप विवाह करके क्या करेंगे? आप को तो मुझको सामने बैठा कर ही स्वर्ग-सुख मिल गया है। विवाह तो आपके लिए अर्थहीन बात होगी।"

"फिर तुमने वही कथा आरम्भ कर दी। बताओ तुम मेरा घर बसाओगी?"

"पर स्वर्ग और नरक की बात तो आपने ही आरम्भ की थी। यदि यह सब व्यर्थ की बात थी तो अब अर्थयुक्त बात करिये। आप मुझसे विवाह करना चाहते हैं क्या?"

"हां।"

"क्यों?"

"भला यह भी कोई पूछने की बात है। विवाह किस लिए किया जाता है?"

मीनाक्षि अब भूषण की मां से सुनी बातें कहने लगी। वह उसकी संगत से बहुत कुछ जान गई थी और उनमें से एक इस विषय में भी थी। मीनाक्षि ने कहा, "मैं जानती तो हूँ, परन्तु क्या इसकी व्याख्या आप मेरे से सुनना चाहते हैं? तो सुनिये। पुरुष-स्त्री में यौन आकर्षण रहता है। उसकी पूर्ति विवाह का एक उद्देश्य है। यह तो मैं देखती हूँ कि बिना विवाह के ही आपको इसकी प्राप्ति हो जाती है। आप इतनी बड़ी आयु तक स्त्री से अछूते रहे हों, यह मैं मान नहीं सकती। तो क्या आप विवाह इसके दूसरे उद्देश्य, अर्थात् परिवार स्थापना के लिए कर रहे हैं?"

"परिवार! हां परिवार भी तो चाहिए।"

"क्या करने के लिए परिवार की आवश्यकता है आपको?"

"तो तुमको नहीं चाहिए? न सही। मैं इसके लिए किंचित् मात्र भी चिन्तित नहीं हूँ।"

मैनन मीनाक्षि के इन प्रश्नों से घबरा उठा था। उसके मन पर यह बात भली भांति अंकित हो चुकी थी कि वह युक्ति करने में उससे

मीनाक्षि बहुत ही शान्ति से मैनन से बात आरम्भ करने की प्रतीक्षा करने लगी। उसने अपने ग्लास में मद्य नहीं डाली। मैनन ने सिगार को ऐश ट्रे में रख दिया और ग्लास उठा एक ही घूँट में आधा ग्लास खाली कर गया। पश्चात् पुनः सिगार उठाकर कश लगाने लगा। जब उसने देखा कि मीनाक्षि पी नहीं रही और उत्सुकता से उसके मुख की ओर देख रही है तो उसने बोतल उठाकर थोड़ी उसके ग्लास में भी उड़ेल दी और कहा, "मेक ए कम्पनी।"

"थैंक यू! मैं पीती नहीं।"

"क्यों?"

"मेरे सिर चढ़ जाती है और मुझको कै होने लगती है।"

"दैन यू आर नो गुड ऐज ए कम्पनी।"

"केवल शराब मेरे स्वभाव के विपरीत है।"

"तो तुम और क्या करती हो?"

"मैं बातें करती हूँ।"

"यह तो कुछ भी नहीं। देखो मीनाक्षि! यदि तुमने किसी भले पुरुष की पत्नी बनना है तो शराब पीने की आदत डालनी चाहिए। इसके बिना तुम सफल नहीं हो सकोगी। देखो तुम्हारी बहन तो पीती है।"

"मैंने यत्न किया है, पर मैं पी नहीं सकती। मैं पूछती हूँ कि क्या ससार में कोई भला पुरुष ऐसा नहीं, जो मद्य न पीता हो?"

"हमारे समाज में तो नहीं मिलेगा।"

"बहुत कठिनाई होगी तब तो।"

"हां! स्टार्ट फ्रौम टुडे। थोड़ी पियो और फिर सिगरेट पीकर उसको पचाने का यत्न करो।"

"सिग्रेट से तो मैं कोसों भागती हूँ। इसकी बदबू मैं सहन नहीं कर सकती।"

"तभी तो तुम्हारा अभी तक विवाह नहीं हुआ। तुम्हारी आयु

कितनी होगी ?"

"अभी उन्नीस वर्ष की हूँ। मैं समझती हूँ कि मेरा विवाह शीघ्रातिशीघ्र भी हुआ तो दो वर्ष पश्चात् ही होना चाहिये।"

"पर तुम बातें तो बड़ी आयु वालो की-सी करती हो ? कल तुम धर्म और फिलौसोफी की बहुत लम्बी-चौड़ी बातें कर रही थी। ये उन्नीस वर्ष की आयु की लड़की के मस्तिष्क मे कैसे आ सकती हैं।"

"मै अपने से बड़ों की संगत में रहती हूँ और उनसे ज्ञान-विज्ञान की बातें सीखती रहती हूँ।"

"पर तुम्हारी बहन तो इन विषयों मे बात भी नहीं करती।"

"वह शायद अपने से छोटों की संगत मे रहती हैं।"

"मैंने सुना है कि मिस्टर स्टोपस उनके मित्र थे।"

"होंगे। मैं तो अन्य कई लोगो को उसके आसपास घूमते देखती रहती हूँ।"

इस समय मैनन ने अपना ग्लास खाली कर दिया और फिर सिगार पीने लगा। मीनाक्षि ने उसके ग्लास में और मद्य उड़ेल दी और पीने के लिए उसके सामने रख दी।

मैनन ने युक्ति करने के स्थान उसको आप-बीती बाते सुनानी आरम्भ कर दीं। वह इंग्लैण्ड और फ्रांस की बातें बताने लगा। उसने चीन और मंगोलिया की बातें बताईं। वह इन सब स्थानों पर जा चुका था। उसने बताया कि अमेरिका की धनी स्त्रियाँ विवाह पसन्द नहीं करतीं। इस पर भी अपनी यौन-तृषा की तृप्ति के लिए होटलो मे जाकर युवकों को किराये पर कर लेती है।

इस समय तक मैनन को नशा चढ़ने लगा था। उसने जब दूसरा ग्लास खाली किया तो मीनाक्षि ने तीसरा भर दिया। अब वह बिना मीनाक्षि के कहने की प्रतीक्षा किये स्वयं आप बीतियें बताने लगा। जापान में स्त्रियों का यौन सम्बन्धी अबाध जीवन, मंगोलिया में स्त्रियों का पहले यौन सम्बन्ध और पीछे विवाह की याचना इत्यादि बातें करता रहा।

ज्यों-ज्यों समय व्यतीत होता गया मैनन को नशा चढ़ता गया और वह अनर्गल बातें, जो किसी भी सभ्य समाज में पसन्द नहीं की जातीं, करने लगा। इस पर भी वह अधिक और अधिक पीता गया। बोतल समाप्त होते तक वह बातें करते-करते बीच में चुप करने लगा। उसका मस्तिष्क बीच-बीच में काम करना छोड़ देता था। अब वह सोफा पर आधा ढासना लगाकर लेट गया और पूर्ण रूप से अचेत हो गया। इस समय मीनाक्षि उठ खड़ी हुई और चपरासियों को बुला कर, उसको सोने के कमरे में ले जाने के लिए कहने लगी।

जब चपरासी मैनन को उठाने लगे तो विनोद और नलिनी भी वहाँ आ गए। उन्होंने देखा कि बोतल खाली हो चुकी है और मीनाक्षि ने एक बूंद भी नहीं पी। इससे वे मैनन के अचेत हो जाने के कारण को जान गए।

नलिनी जो शराब से उत्तेजित हो रही थी, बोली, "यह तुमने क्या किया है मीनाक्षि?"

"क्या किया है दीदी?"

"पूरी बोतल उसको पिला दी है।"

"मैंने नहीं पिलाई। वह स्वयं पी गया है।"

"पर आधी तुम्हारे लिए थी।"

"मैं मद्यपान नहीं करती।"

"परन्तु हम दोनों ने तो अभी चौथाई बोतल भी नहीं पी।"

"वह महा मूर्ख है, तो मैं क्या करूँ?"

इस समय नलिनी मीनाक्षि को एक कमरे में अलहदा ले गई। वहाँ अपने समीप बैठा कर कहने लगी, "देखो मीनाक्षि, पुरुष मूर्ख ही होते हैं और यह हमारे लाभ की बात है। पति जितना अधिक मूर्ख हो, स्त्री को उतनी ही अधिक स्वतन्त्रता और सुविधा रहती है। यह विचार कर ही मैंने उससे तुम्हारे साथ विवाह का प्रस्ताव किया था। इससे तुम्हारा जीवन सुख में व्यतीत होगा।"

मीनाक्षि ने इस बात का उत्तर नहीं दिया। इस कारण भी नलिनी ने मीनाक्षि को मैनन का और अधिक परिचय दिया। उसने कहा, "मिस्टर मैनन इस समय तो पाँच सौ वेतन पाते हैं, परन्तु वह होम-मेम्बर के पी० ए० होने से लाखों बना रहे हैं। बड़े-बड़े राजा-महाराजा और प्रान्तों के सचिव इनके पाओं पर लोटते रहते हैं। यहाँ पर भी वे एक बात की जाँच करने आये हुए हैं। इस जाँच में अपनी इच्छानुसार रिपोर्ट लिखवाने के लिए हम इनको एक लाख तक देने को तैयार हैं। यदि तुम मान जाओ और इनसे विवाह के लिये राजी हो जाओ, तो जहाँ तुम महारानी बन घूमती रहोगी, वहाँ हमारा एक लाख बच जावेगा।"

अब मीनाक्षि ने अपना मुख खोला, "बहुत अच्छी बात है। मैं अपना निर्णय कल तक बता दूँगी। पर दीदी उसने आज एक बार भी तो मुझसे नहीं कहा कि वह मुझसे विवाह करना चाहता है।"

"तो कल तुम कहाँ मिलोगी?"

"कल मेरे आफिस का समय मध्याह्न दो बजे से रात के दस बजे तक है। मैं लन्च के समय ही मिल सकती हूँ।"

"वह लन्च तो आफिस में ही लेता है।"

"तो मैं उसको ब्रेक फास्ट के समय मिल सकती हूँ।"

"उस समय तक तो वह कठिनाई से जाग सकेगा। कल तुम चाय के समय छुट्टी लेकर नहीं आ सकती क्या?"

"अच्छी बात! यत्न करूँगी।"

नलिनी का विश्वास था कि मीनाक्षि मान गई है। इस कारण उसने कुछ आशाजनक संकेत मैनन को कर दिया।

मीनाक्षि के माता-पिता इस विवाह के कराने में बहुत रुचि रखते थे। उन्होंने अगले दिन मीनाक्षि को स्मरण करा दिया कि उसने छुट्टी लेकर चाय मैनन के साथ पीनी है।

मीनाक्षि को कार्यालय में मध्याह्न पश्चात् दो बजे जाना था। इतने समय तक घर ठहरना अति कठिन हो गया। उसकी मा उसको बार-बार कह रही थी कि ऐसा अवसर फिर नहीं आवेगा। इस कारण वह घर से प्रातः आठ बजे ही निकल पड़ी। मा ने पूछा, "कहाँ जा रही हो इस समय ?"

"अपने आफिसर से मिलने। उनसे छुट्टी का प्रबन्ध करना है।"

"अच्छी बात है जाओ और देखो आज सब कुछ निश्चय हो जाना चाहिए। हमारी इच्छा है कि इस रविवार को ही विवाह सम्पन्न हो जाये।"

मीनाक्षि का विचार अपने आफिसर के पास जाने का नहीं था। वह रात-भर मैनन और भूषण में तुलना करती रही थी और सब प्रकार से विचार करने पर इस परिणाम पर पहुँची थी कि वह मैनन से विवाह नहीं करेगी। अब तो वह अपने इस विचार को कार्य में लाने के लिए प्रबन्ध करना चाहती थी। इसके लिए वह भूषण की मा से मिलने चली गई।

भगवतस्वरूप भोजन करने बैठा ही था कि मीनाक्षि आ पहुँची। कान्ता कॉलेज जा चुकी थी। भगवतस्वरूप ने पूछा, "कैसे आई हो बेटी मीनाक्षि ? आज आफिस नहीं जाना क्या ?"

"आज आफिस में सायंकाल की ड्यूटि है। माताजी से एक विषय में परामर्श करना है।"

"आज ही और अभी ही ?"

"जी। आज सायंकाल से पूर्व ही कुछ करना है और मैं राय करने चली आई हूँ।"

"तो बैठो भोजन कर लो। वह अभी अवकाश पा जाएँगी तब बातचीत कर लेना।"

मीनाक्षि हाथ धो एक आसन पर बैठ गई। सुशीला ने उसके सामने भी थाली लगा दी और वह खाने लगी।

भगवतस्वरूप भोजन कर, कपड़े पहन, अपने दफ्तर चला गया तो सुशीला मीनाक्षि को अपने कमरे में ले गई। घर में और कोई नहीं था। दोनों वहाँ बैठ परामर्श करने लगीं। पहले मीनाक्षि ने मैनन के विषय में बताया। उसकी पदवी, उसका वेतन, ऊपर से आय की बात बताई। इसके पश्चात् उसके साथ दो भेंटों का वर्णन कर दिया और अन्त में उसने रात-भर में किये विचारों पर प्रकाश डाला। उसने कहा, "मैं चार वर्ष से भूषण जी से प्रेम करती हूँ। भूषण जी ने मुझको कहा था कि यदि मैं उससे विवाह करना चाहती हूँ तो मुझको उसके समाज के आचार-व्यवहार को सीखकर अपनाना चाहिए। यदि मैं उसके समाज में रह सकूँगी तो मैं उनसे विवाह भी कर सकूँगी। परिणाम-स्वरूप मैं आपकी समाज के आचर-व्यवहार को सीखने के लिए आपकी संगत में रहने लगी हूँ।

"मैं नहीं जानती कि अभी भी मैं उनके योग्य हुई हूँ या नहीं। इस बीच में यह मैनन आ टपके हैं। मेरी बहिन, मेरे जीजाजी और साथ ही मेरे माता-पिता मुझको उससे विवाह करने के लिए विवश कर रहे हैं। मैंने जो-कुछ देखा है, उससे मैं इस परिणाम पर पहुँची हूँ कि मैंने उससे विवाह नहीं करना। इस पर भी मैं उसको न तब ही कर सकती हूँ जब मैं अपने माता-पिता का घर छोड़ दूँ। बताइये मैं क्या करूँ?"

"तुम्हारी आयु कितनी है?"

"अभी उन्नीस वर्ष की है।"

"इस आयु में तुम अपने माता-पिता की संरक्षता छोड़ नहीं सकती। तुम घर से बाहर बिना उनकी स्वीकृति के नहीं रह सकती।"

"तो फिर क्या किया जावे?"

"मैं तो यही कह सकती हूँ कि तुम स्पष्ट रूप में कह दो कि तुम उससे विवाह नहीं करोगी। सरकार तुम्हारी रक्षा कर सकती है या नहीं मैं नहीं जानती। भूषण के पिताजी से पूछने पर कि और क्या हो सकता है, पता चल सकेगा।"

आत्मा का अस्तित्व। काम शरीर का विषय है। आत्मा परमात्मा का अंग है। मेरी आत्मा अपने पूर्ण में मिल जाने के लिए तड़फड़ाती रहती थी। यही कारण था कि मैं अपनी वासनाओं पर विजय पाती रहती थी और अब मैं अपने में परमानन्द की व्याप्ति पाती हूँ।'

"मैंने पूछा, 'यह भ्रम नहीं है क्या?'

"उनका उत्तर था, 'इस विषय में मैं कुछ कह नहीं सकती। देखो मीनाक्षि! यदि यह भ्रम है तब भी बहुत ही मधुर है।'

"जीजाजी!" मीनाक्षि ने अब विनोद को सम्बोधन कर कहा, "एक बात मैं आपसे पूछती हूँ कि यदि कोई औरत विधवा रहना चाहे तो आप उसके विरुद्ध क्यों हैं। जहाँ तक सरकारी कानून का सम्बन्ध है, विधवा को विवाह करने की स्वीकृति है। इस कानून के बनवाने में एक हिन्दू विद्वान ने ही यत्न किया था। इस पर भी यदि कोई विधवा विवाह करना नहीं चाहती तो हिन्दू जाति कैसे खराब हो गई।"

अपनी बूआ के विषय में विनोद यह सब कुछ जानता था, परन्तु हिन्दुओं की निन्दा करने वालों के लेख और व्याख्यान पढ़ और सुनकर वह उक्त निन्दा की बात कह सका था। एक बात उसके मन में थी। वह उसने कह दी, "कानून का बन जाना तो ठीक ही हुआ है, परन्तु हिन्दू लोग विधवा औरतों से घृणा जो करते हैं। उनको हँसने-खेलने नहीं देते।"

"यह आप कैसे कहते हैं? आपके पिता तो अपनी बहन की बहुत प्रशंसा और मान करते हैं। वे उनको सदा घर में बुलाते रहते हैं।

"कोई हिन्दू वैसे भी हो सकते हैं जैसा आप कहते हैं। मैंने तो उनको देखा नहीं। पर मैं कहती हूँ कि आज से सौ वर्ष पहले ईसाई लोग ईसा पर ईमान न लाने वाले व्यक्तियों को जीता जला देते थे। अब वह मूर्खता दूर हो गई है। इसी प्रकार यदि कोई विधवाओं से बुरा व्यवहार करता भी है तो वह विचार-परिवर्तन से बदल नहीं सकता क्या?"

इस समय वे कोठी में पहुँच गये। मैनन वहाँ उपस्थित था। नलिनी उससे बैठी बातें कर रही थी। मीनाक्षि उसको बैठा देख मुस्कराई। दोनों ने हाथ मिलाया और मीनाक्षि मैनन के दूसरी ओर सोफा पर बैठ गई। बैरा चाय ले आया। ऐसा प्रतीत होता था कि मैनन उसके आने की प्रतीक्षा कर रहा था।

चाय पर तो इधर-उधर की बातें होती रहीं। पश्चात् चारों उठकर ड्रायंग रूम में चले गये। वहाँ बैठ बात विनोद ने आरम्भ की। उसने कहा, "मीनाक्षि! मिस्टर मैनन तुमसे विवाह करने के इच्छुक हैं। इनका कहना है कि वे एक लाख रुपया तुम्हारे नाम लिख देंगे। मैं समझता हूँ कि आर्थिक दृष्टि से यह विवाह अति सफल सिद्ध होगा।"

"केवल यही नहीं।" मैनन ने कहा, "यह तो प्रथम भेंट होगी। इसके पीछे भी मैं तुमको कुछ-न-कुछ देता रहूँगा।"

मीनाक्षि ने दृढ़ता से कहा, "यदि इस पर भी मैं आपके प्रस्ताव को न मानूँ तो क्या होगा?"

"सर्वनाश। तुम्हारे जीजाजी हवालात में होंगे और इन पर रिश्वत लेने का मुकद्दमा चलेगा।"

"क्यों! इन्होंने क्या किया है?"

"लाखों रुपये रिश्वत लिये हैं। एक केस तो पकड़ भी लिया गया है। उसके प्रमाण मिल गये हैं। मैं केवल तुम्हारे एक शब्द की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

"यदि मैं विवाह स्वीकार कर लूँ तो?"

"तो वे सब प्रमाण मैं तुम्हारे हाथ में दे दूँगा। तुम उनको जिस प्रकार प्रयोग करना चाहो कर सकोगी।"

"तो मैं स्वीकार करती हूँ।" मीनाक्षि ने मुस्कराते हुए कहा।

"सच! गुड है। वेरी गुड आफ यू।" मैनन ने मीनाक्षि से हाथ मिलाया और उसको दोनों कन्धों से पकड़कर उसका मुख चूमना चाहा। इस पर मीनाक्षि ने मुख मोड़ कर कह दिया, "ठीक है। 'वट, डोंट

मैट का लिखा है। अन्य प्रमाण भी हैं, यद्यपि वे गौण हैं।"

"देखिये, जीजाजी! मैं इस मूर्ख से विवाह नहीं कर सकती। इस पर भी मैं ये पत्र उसके अधिकार से निकालने का प्रयत्न करूँगी।"

"कैसे?"

"अभी नहीं बता सकती। मेरा अनुमान है कि ऐसे मूर्ख को ठग लेना कुछ भी कठिन बात नहीं होनी चाहिये। मै यत्न करूँगी।"

"पर हम तो विवाह का प्रोग्राम बनाने आये हैं।"

"तो बना लीजिये। प्रोग्राम बनाने मे क्या रखा है? आज से पन्द्रह दिन के पश्चात् जो रविवार होगा, उस दिन विवाह होगा। कल ही हम रेक्टर को प्रार्थना-पत्र दे देंगे। इस रविवार को सगाई की दावत होनी चाहिये। उसको कहिये कि उस दिन खाना और नाच दे। उसी रात सगाई की घोषणा होगी। फिर अगले रविवार को विवाह होगा।"

प्रोग्राम सब को पसन्द आगया। विनोद का विचार था कि यदि मीनाक्षि सफल न हुई तो विवाह होगा ही और तब भी वह मुकद्दमे से बच जायेगा।

अगले दिन मीनाक्षि स्वय विवाह का प्रोग्राम मैनन को बताने के लिये गई। मैनन का प्रश्न था कि विवाह का दिन इतनी दूर क्यों रखा है। इसपर मीनाक्षि का कहना था कि धैर्य से किया कार्य ही सुन्दर होता है। 'बाल' का प्रोग्राम रविवार के स्थान शनिवार की रात कर दिया। इससे एक दिन पहले अर्थात् शुक्रवार को मीनाक्षि मैनन के साथ चाय पीने का प्रोग्राम बना चुकी थी। दोनों सेसिल में मिले। दोनों ने चाय पी और पीछे प्लाजा में पिक्चर देखने गये। पिक्चर से लौटते समय मीनाक्षि ने हँसी-हँसी में कह दिया, "मैं विनोद जी को बहुत ही ईमानदार व्यक्ति मानती थी।"

मैनन हँस पड़ा। इस पर मीनाक्षि ने कह दिया, "सत्य कहूँ? मुझको अब भी विश्वास नहीं आता कि उन्होंने इतना रुपया घूँस में

ा होगा।"
"पर अब तो वह स्वयं भी मान गया है कि उसने वह भारी धन-
ा ली है।"
"क्या यह लिख कर माना है?"
"लिखित प्रमाण तो पहले ही उपस्थित हैं।"
"पर वह नकली भी तो हो सकता है! विनोद जी के किसी शत्रु
उनसे बदला लेने के लिए यह प्रमाण नकली बना दिये हों।"
"तुम उनका हस्ताक्षर पहिचानती हो क्या?"
"बहुत अच्छी तरह से।"
"तो तुम को उनके अपने हाथ का लिखा पत्र दिखा सकता हूँ।
पत्र में उन्होंने रुपये की प्राप्ति स्वीकार की है।"
"मुझको विश्वास नहीं आता।"
"मैं अभी दिखा सकता हूँ। अपने वचन के अनुसार मैं वह सब
ु तो तुम को कल देने ही वाला हूँ। चलो आज देख लो। आज
कल में क्या रखा है।"
"सत्य ही यह आश्चर्य करने की बात है।"
दोनों मोटर में विनोद की कोठी पर पहुँचे तो मीनाक्षि ने सुझाव
स्थित कर दिया कि विनोद के हस्ताक्षर पहिचानने के लिए वह पत्र
ाको दिखा दिया जावे। उस समय दोनों बाँह-में-बाँह डालते हुए चल
ये। मीनाक्षि ने प्रस्ताव करते समय उसको कुछ अपनी ओर खेंच
अपने साथ सटा लिया। मैनन को इससे बहुत प्रसन्नता अनुभव हुई
र वह पत्र दिखाने पर उद्यत हो गया।
मैनन मीनाक्षि को अपने कमरे में ले गया और वहाँ उसको एक
ी पर बैठाकर अपने पलंग के नीचे रखी एक 'चेस्ट' को निकालकर,
ं पलंग पर बैठ गया। चेस्ट को घुटनों पर रख उसने अपनी पतलून
जेब में से एक चाबी निकाली और चेस्ट खोलते हुए बोला, "मैं
ाझता हूँ कि उसने ऐसा काम किया है, जिससे उसकी नौकरी तो जा

मैंट का लिखा है । अन्य प्रमाण भी हैं, यद्यपि वे गौण हैं ।"

"देखिये, जीजाजी ! मैं इस मूर्ख से विवाह नहीं कर सकती । इस पर भी मैं ये पत्र उसके अधिकार से निकालने का प्रयत्न करूँगी ।"

"कैसे ?"

"अभी नहीं बता सकती । मेरा अनुमान है कि ऐसे मूर्ख को ठग लेना कुछ भी कठिन बात नहीं होनी चाहिये । मैं यत्न करूँगी ।"

"पर हम तो विवाह का प्रोग्राम बनाने आये हैं ।"

"तो बना लीजिये । प्रोग्राम बनाने में क्या रखा है ? आज से पन्द्रह दिन के पश्चात् जो रविवार होगा, उस दिन विवाह होगा । कल ही हम रेक्टर को प्रार्थना-पत्र दे देंगे । इस रविवार को सगाई की दावत होनी चाहिये । उसको कहिये कि उस दिन खाना और नाच दे । उसी रात सगाई की घोषणा होगी । फिर अगले रविवार को विवाह होगा ।"

प्रोग्राम सब को पसन्द आगया । विनोद का विचार था कि यदि मीनाक्षि सफल न हुई तो विवाह होगा ही और तब भी वह मुकद्दमे से बच जायेगा ।

अगले दिन मीनाक्षि स्वयं विवाह का प्रोग्राम मैनन को बताने के लिये गई । मैनन का प्रश्न था कि विवाह का दिन इतनी दूर क्यों रखा है । इसपर मीनाक्षि का कहना था कि धैर्य से किया कार्य ही सुन्दर होता है । 'बाल' का प्रोग्राम रविवार के स्थान शनिवार की रात कर दिया । इससे एक दिन पहले अर्थात् शुक्रवार को मीनाक्षि मैनन के साथ चाय पीने का प्रोग्राम बना चुकी थी । दोनों सेसिल में मिले । दोनों ने चाय पी और पीछे प्लाज़ा में पिक्चर देखने गये । पिक्चर से लौटते समय मीनाक्षि ने हँसी-हँसी में कह दिया, "मैं विनोद जी को बहुत ही ईमानदार व्यक्ति मानती थी ।"

मैनन हँस पड़ा । इस पर मीनाक्षि ने कह दिया, "सत्य कहूँ ? मुझको अब भी विश्वास नहीं आता कि उन्होंने इतना रुपया घूँस में

लिया होगा।"

"पर अब तो वह स्वयं भी मान गया है कि उसने बहु भारी घन-राशि ली है।"

"क्या यह लिख कर माना है?"

"लिखित प्रमाण तो पहले ही उपस्थित है।"

"पर वह नक्ली भी तो हो सकता है। विनोद जी के किसी शत्रु ने उनसे बदला लेने के लिए यह प्रमाण नक्ली बना दिये हों।"

"तुम उनका हस्ताक्षर पहिचानती हो क्या?"

"बहुत अच्छी तरह से।"

"तो तुम को उनके अपने हाथ का लिखा पत्र दिखा सकता हूँ। उस पत्र मे उन्होंने रुपये की प्राप्ति स्वीकार की है।"

"मुझको विश्वास नहीं आता।"

"मैं अभी दिखा सकता हूँ। अपने वचन के अनुसार मैं वह सब कुछ तो तुम को कल देने ही वाला हूँ। चलो आज देख लो। आज या कल मे क्या रखा है।"

"सत्य ही यह आश्चर्य करने की बात है।"

दोनों मोटर में विनोद की कोठी पर पहुँचे तो मीनाक्षि ने सुझाव उपस्थित कर दिया कि विनोद के हस्ताक्षर पहिचानने के लिए वह पत्र उसको दिखा दिया जावे। उस समय दोनों बाँह-मे-बाँह डालते हुए चल रहे थे। मीनाक्षि ने प्रस्ताव करते समय उसको कुछ अपनी ओर खेंच कर अपने साथ सटा लिया। मैनन को इससे बहुत प्रसन्नता अनुभव हुई और वह पत्र दिखाने पर उद्यत हो गया।

मैनन मीनाक्षि को अपने कमरे मे ले गया और वहाँ उसको एक कुर्सी पर बैठाकर अपने पलंग के नीचे रखी एक 'चैस्ट' को निकालकर, स्वयं पलंग पर बैठ गया। चैस्ट को घुटनों पर रख उसने अपनी पतलून की जेब मे से एक चाबी निकाली और चैस्ट खोलते हुए बोला, "मैं समझता हूँ कि उसने ऐसा काम किया है, जिससे उसकी नौकरी तो जा

हो सकती है, साथ ही उसको पाँच वर्ष का कारावास भी हो सकता है।"

चैस्ट खोलकर उसमें से उसने एक फाईल निकालकर कुछ पत्र निकाल लिये और एक-एक कर मीनाक्षि को दिखाने लगा। मीनाक्षि ने पत्र पढ़े और विस्मय प्रकट करते हुए, उसके हाथ को अपने हाथ में लेकर उसका धन्यवाद करने लगी। उसने कहा, "मैं इतनी गम्भीर बात पर बिना देखे तो विश्वास कर ही नहीं सकती थी। मैं मिस्टर विनोद को बहुत ही अच्छा आदमी समझती थी। पर आप कितने अच्छे हैं। मुझको इस बात का गर्व है कि मेरे पति इतने दयालु हैं।"

मैनन इस प्रशंसा से फूला नहीं समाया। उसने कहा, "मीनाक्षि! मैं तुमको पाकर बहुत प्रसन्न हूँ और तुम्हारी सगाई के अवसर पर ये सब पत्र तुमको भेंट मे दे देने वाला हूँ।"

"सत्य? मैं इस बात के लिए आपकी जीवन-भर कृतज्ञ रहूँगी। हौ गुड यू आर।"

मैनन की आँखें वासना से लाल होती जाती थीं। मीनाक्षि ने यह देखा और कहा, "बहुत भूख लगी है। अब भोजन करना चाहिए।"

"यहीं न मँगवा लें?" मैनन ने प्रस्ताव कर दिया।

"जैसे आपकी इच्छा हो।"

मैनन ने सब पत्र फाईल में रखकर पुनः 'चैस्ट' में रख दिये और चैस्ट को बन्द कर बैरा को खाना लाने के लिए कहने बाहर चला गया। मीनाक्षि ने इतने में अपनी योजना बना ली। उसने पलग के समीप तिपाई लगा ली और उसके समीप दो कुरसियाँ लगाकर एक पर बैठ गई।

मैनन आज बहुत प्रसन्न था। वह कमरे मे आकर बैठा तो मीनाक्षि का हाथ पकड़कर कहने लगा, "मैं उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा हूँ, जब तुम पूर्ण रूप से मेरी होगी।"

मीनाक्षि ने बात बदलकर कहा, "मेरी सगाई के पश्चात् तो आपकी जाँच समाप्त हो जावेगी न?"

"मेरी जाँच तो उसी दिन समाप्त हो गई थी, जिस दिन तुमने मुझसे विवाह करना स्वीकार किया था।"

"तो हम विवाह के तुरन्त पीछे दिल्ली लौट जावेंगे क्या ?"

"हाँ। यहाँ से दिल्ली और फिर दार्जिलिंग। वह बहुत ही बढ़िया पहाड़ी स्थान है।"

"बहुत आनन्द रहेगा।"

"हाँ। हम दोनों अकेले होंगे। दिन-रात प्रेम करने के अतिरिक्त और कोई काम नहीं होगा।"

इस समय बैरा खाना परसने लगा। खाना लगा देने के पश्चात् वह एक ह्विस्की की बोतल रख गया।

भोजन होने के साथ-साथ दोनों बातें करते रहे। बातों में मैनन ने मुख्य भाग लिया। वह सब समय में अपने भिन्न-भिन्न स्त्रियों से सम्पर्क की कहानियाँ सुनाता रहा। भोजन समाप्त होने पर शराब पीनी आरम्भ हो गई। पहले की भाँति मीनाक्षि भर-भरकर उसको पीने को देती गई। वह मद्यपान करता गया और सिगार पी-पीकर उसको पचाता रहा। बीच-बीच में अपने वासनामय अनुभव बताता रहा। कुछ मद्य पीने तक तो उसकी वासना बढ़ती गई। जब वह एक सीमा से ऊपर पी गया, तब उसकी वात-शिराएँ और मस्तिष्क शिथिल होने लगा। इसके साथ-ही-साथ उसको अचेतनता होने लगी और मन में भारी इच्छाएँ रखता हुआ भी उनकी पूर्ति की सामर्थ्य खो बैठा। वह अचेत हुआ तो मीनाक्षि उठी और एक क्षण में उसने चाबी उसकी जेब से निकाल चैस्ट खोल डाली। उसमें से फाईल निकालकर उसने चैस्ट बन्द कर चाबी उसकी जेब में रख दी। पश्चात् वह फाईल अपने कुरते के नीचे छिपा, कमरे के बाहर आकर बैरा से बोली, "साहब को पलंग पर लिटा दो।"

बैरा मुस्कराया और कमरे में चला गया।

मीनाक्षि सीधी नलिनी के कमरे में पहुँची और नलिनी को वह पत्रों

वाली फाईल देकर बोली, "इसको अभी आग लगा दो। कल तक बहुत देरी हो जावेगी। मैं अब इस घर में पाँव नहीं रखूँगी।"

"क्यों?"

"अपने मन से पूछो। एक छोटी बहन को जो-कुछ बड़ी बहन के लिए करना चाहिए था, उससे कहीं अधिक मैंने कर दिया है।"

इतना कह वह लगभग भागती हुई कोठी से निकल गई। रात के ग्यारह बज रहे थे। सड़क पर कोई टाँगा टैक्सी नहीं था। इस पर भी उसने इसकी प्रतीक्षा करने का विचार भी नहीं किया। वह कोठी से ऐसे भागी, जैसे वहाँ प्लेग की महामारी फैली हुई हो।

अगले दिन मैनन की नींद बहुत दिन चढ़ जाने पर खुली। उठते ही वह गुसलखाने में चला गया। वहाँ स्नानादि से निवृत्त होकर कपड़े पहन ब्रेकफास्ट पर जा बैठा। विनोद आफिस चला गया था। नलिनी प्रात. का अल्पाहार कर, अपनी एक सहेली के घर जाने के लिए तैयार खड़ी थी। जब मैनन आकर खाने की टेबल पर बैठा तो नलिनी ने मुस्कराते हुए पूछा, "रात कैसी बीती है? मीनाक्षि कब गई थी?"

मैनन को नलिनी की मुस्कराहट का अर्थ यह समझ में आया कि मीनाक्षि उसके पास रात-भर रही है। इस कारण उसने उसका भ्रम निवारण करने के लिए कह दिया, "जब तक हमारा विवाह नहीं हो जाता, तब तक तुम्हारी बहन मेरे कमरे में एक चिड़िया की भाँति पवित्र और सुरक्षित रहेगी।"

नलिनी ने गम्भीर होकर कहा, "मेरा यह अभिप्राय नहीं। मेरा तो यह अभिप्राय था कि वह कहीं लड़ तो नहीं पड़ी? लड़की बहुत चुलबुली है। जब तक विवाह नहीं हो जाता, हमारा मन डरता ही रहता है।"

"अब सब ठीक है। कोई चिन्ता की बात नहीं।"

बैरा ब्रेकफास्ट लगाने आया तो मैनन ने बात बदल दी। उसने

पूछा, "मिस्टर विनोद कहाँ है ?"

"वे तो आफिस गये हैं।"

"रात भोज और 'बाल' के प्रबन्ध का क्या हो रहा है ?"

"एक सौ के लगभग मेहमान आमन्त्रित हैं। बाहर लान में शामियाना लग जावेगा। वहाँ रात का भोजन भी होगा और नाच भी। सब प्रबन्ध सैमिल वालों को दे दिया गया है।"

मैनन बहुत प्रसन्न था। वह इस प्रतीक्षा के समय के शीघ्र व्यतीत हो जाने की इच्छा करता हुआ खाना लेता रहा। इस समय उसको एक धीमी-सी स्मृति हुई। उसने चिट्ठियाँ चैस्ट खोलकर मीनाक्षि को दिखाई थीं। एकाएक उसका हाथ पतलून की जेब पर, जहाँ वह चैस्ट की चाबी रखा करता था, चला गया। चाबी को वहाँ देख वह निश्चिन्त हो खाता रहा। भोजन के पश्चात् वह विनोद के आफिस में चला गया। वहाँ वह चीफ सैक्रेटरी टू दि पंजाब गवर्नमेंट से मिला। उसको डिनर और बाल का निमन्त्रण मिल चुका था। इससे उसने मैनन को बधाई दी। पश्चात् पूछा, "जाँच का क्या हो रहा है ?"

"वह लगभग समाप्त हो चुकी है। ठेके तो पी० डब्ल्यू० डी० की जानकारी के बिना दिये गए हैं। यह बात सर्वथा सत्य है, परन्तु यह सिद्ध नहीं हो सका कि मिस्टर विनोद ने कोई रिश्वत खाई है। न ही यह कहा जा सकता है कि रिश्वत खाने के लिए यह अनियमित बात की गई है।"

चीफ सैक्रेटरी बहुत प्रसन्न था। उसने कहा, "यह बात भी कि पी० डब्ल्यू० डी० की जानकारी के बिना ठेकों का देना, गवर्नर बहादुर की राय से किया गया है। उन्होंने ही यह नीति निर्धारित की थी कि कार्य को शीघ्र सम्पन्न करने के लिए साधारण दफ्तरी कार्यवाई बन्द कर दी जाय। इस सब कुछ करने पर भी काम को पास तो उचित अधिकारी ही करते रहे हैं। 'बिल' भी वे ही पास करते हैं। इससे किसी प्रकार की गड़बड़ी की सम्भावना कम ही होती है।"

"गवर्नर बहादुर की यह आज्ञा दिखा दें तो बात कुछ भी नहीं रह जाती। मेरी जाँच समाप्त हो जावेगी।"

"लिखित आज्ञा तो नहीं है। आप गवर्नर बहादुर से मिल लें तो बात का स्पष्टीकरण हो जावेगा।"

"मैं शीघ्रातिशीघ्र उनसे मिलकर बात का निश्चय कर लूँगा।"

"यदि आप आज ही मिल लेते तो बहुत अच्छा रहता।"

"मैं यत्न करूँगा।"

उसी मध्याह्न को विनोद मिस्टर मैनन से मिला और कहने लगा, "गवर्नर बहादुर आपको याद कर रहे हैं।

"उनके ए० डी० सी० का अभी टेलीफोन आया था कि मिस्टर मैनन को गवर्नर बहादुर ने तीन बजे याद फरमाया है। शायद भारत सरकार का कोई सन्देश उनके पास आया होगा।"

"मैंने स्वयं उनसे भेंट के लिए समय माँगा है।"

"यही बात हो सकती है। क्या वहाँ हमारे विषय में बात होने वाली है?"

"हाँ। मैं उनको अपनी जाँच के परिणाम बताने वाला हूँ। मेरी जाँच तो ऐसे है जैसे खोदा पहाड़ और निकली चुहिया। एक मामूली सी दफ्तरी अनियमितपन के लिए इतना हल्ला किया गया है। इसके लिए मैं अफसरों को कष्ट में डालना नहीं चाहता।"

विनोद मन-ही-मन प्रसन्न था और प्रत्यक्ष में उसने मैनन का धन्यवाद कर दिया। वह जानता था कि रात नाच के समय भारी गड़-बड़ होने वाली है और उससे पहले ही गवर्नर से मैनन को मिलकर सब बात मान जानी चाहिए। उसने ही चीफ सैक्रेटरी से कहकर मैनन की गवर्नर से भेंट करवा दी थी।

मैनन सायंकाल मीनाक्षि से मिलने उसके माता-पिता के घर गया। वह वहाँ पर नहीं थी। मैनन ने पूछा, "क्या वह आज भी दफ्तर गई है?"

"नहीं। उसने वहाँ से आज की छुट्टी ले ली है। शायद अपनी सहेलियों के घर उनको निमन्त्रण देने गई है।"

"मैं यह कहने आया था कि उसको ठीक आठ बजे तक पहुँच जाना चाहिए। उसको अपनी सहेलियों के स्वागत के लिए वहाँ उपस्थित होना चाहिए।"

"हाँ उसको समय से पूर्व ही वहाँ पहुँच जाना चाहिए।" मीनाक्षि की माँ ने कह दिया।

मैनन कुछ इधर-उधर की बातें कर विनोद के घर लौट आया। होटल वाले बहुत सतर्कता से प्रबन्ध कर रहे थे। नलिनी उस प्रबन्ध का निरीक्षण कर रही थी।

ठीक आठ बजे मैनन भोजन की पोशाक पहन मेहमानो के स्वागत के लिए शामियाने के द्वार पर आ खड़ा हुआ। इक्के-दुक्के मेहमान भी आने लगे। नलिनी भी अपनी सबसे बढ़िया पोशाक में स्त्री-मेहमानो के स्वागत के लिए आ खड़ी हुई।

पूर्ण कोठी जगमग कर रही थी। बिजली के बल्ब कोठी के लान में लकड़ी के स्टेंडों पर और पेड़ों पर जल रहे थे। रात के साढ़े आठ बजे भोजन का समय था और तब तक प्रायः सब मेहमान आ गये थे। मीनाक्षि अभी भी नहीं आई थी। मैनन कुछ चिन्तित प्रतीत होने लगा। मीनाक्षि के माता-पिता आये तो मैनन, नलिनी और विनोद उन के चारों ओर आ खड़े हुए। सब उनसे पूछने लगे कि मीनाक्षि कहाँ है? मीनाक्षि की माँ ने बताया कि वह दिन के दस बजे कहीं गई थी। तब से लौटी नहीं।

विनोद और नलिनी को यह तो विदित था कि मीनाक्षि वहाँ नहीं आएगी, परन्तु वे यह नहीं जानते थे कि वह कहाँ गई होगी। इस कारण उन्होंने यह बताना उचित नहीं समझा कि पिछली रात वह उनको कह गई है कि वह उस कोठी में नहीं आवेगी।

समय होने पर सब मेहमान भोजन पर बैठ गये। मैनन के साथ

की कुर्सी खाली रखी गई थी। विनोद, नलिनी और उसके माता पिता खाने के लिए नहीं बैठे। मैनन ने उनसे कहा भी, परन्तु उन्होंने कहा कि मीनाक्षि के आने पर ही वे खाने पर बैठ सकते हैं।

भोजन लगभग समाप्त हो चुका था, जब दो पुलिस कान्स्टेबल और एक मजिस्ट्रेट मीनाक्षि के साथ वहाँ आ पहुँचे। मजिस्ट्रेट ने एक आज्ञापत्र मिस्टर रेड्डी और मिसेज रेड्डी को और एक मिस्टर मैनन को दे दिया। जब उन्होंने आज्ञापत्र पढ़ लिया तो मजिस्ट्रेट ने मैनन से हाथ मिलाया और कहा, "अब मुझको जाने की इजाजत दीजिये।"

मैनन ने आज्ञापत्र पढ़ा और फिर मीनाक्षि को देखकर खिलखिला-कर हँस पड़ा। जब हँस चुका तो उसने मजिस्ट्रेट को कहा, "हमारे भोज में सम्मिलित होईये।"

"पर यह भोज तो व्यर्थ हो गया है न ?"

"नहीं। आप पधारिये। मैं अभी सब मेहमानों को बता देता हूँ।" उसने ऊँचे स्वर में सब उपस्थित लोगों को सम्बोधन कर कहा, "लेडीज ऐंड जैन्टलमैन! आज मेरा काम लाहौर में समाप्त हो गया है। मैं यहाँ तीन सप्ताह के लगभग रहा हूँ और इस काल में मिस्टर विनोद और उनकी पत्नी श्रीमती नलिनी ने मेरी बहुत ही आवभक्त की है। इनके अतिरिक्त जिन-जिन मित्रों और सहयोगियों के साथ मेरा सम्पर्क आया है, सबने मेरे काम में मेरी बहुत ही सहायता की है। जाने से पूर्व मैंने अपना यह कर्तव्य समझा कि आप सबका धन्यवाद करूँ। वास्तव में यह आज के भोज और नाच का प्रबन्ध इसी बात के उपलक्ष में किया गया है।

"मेरे यहाँ पर निवास काल में कुछ लोगों ने षड्यन्त्र कर मीनाक्षि देवी को मेरे सम्पर्क में किया। उन लोगों ने उससे विवाह करने का मुझसे आग्रह किया। मेरे लिए इतनी सुन्दर लड़की के आग्रह को टालना न केवल व्यर्थ था, प्रत्युत् असम्भव भी था। इस कारण आज के भोज में ही मैंने उसको अपनी पत्नी बनाने की घोषणा करने का निर्णय किया था,

परन्तु मैजिस्ट्रेट द्वारा हमारे विवाह पर इन्जेक्शन की आज्ञा मीनाक्षि देवी लाई हैं। यद्यपि मैं इसको अपना भारी अपमान मानता हूँ, परन्तु इस भोज और नाच का प्रयोजन तो अभी भी विद्यमान है।

"अतएव मैं सब मेहमानों से निवेदन करता हूँ कि वे भोज में सम्मिलित रहें और पीछे होने वाले नाच में वैसे ही भाग लें, जैसे वे इस कार्य के लिए तैयार होकर आये हैं।

"मैं मीनाक्षि देवी से भी प्रार्थना करूँगा कि वे मेरी सम्मानित मेहमान हैं। वे निस्संकोच भाव से इस भोज और नाच में सम्मिलित हो सकती हैं।"

इस पर भी मीनाक्षि, नलिनी, विनोद और मीनाक्षि के माता-पिता, वहाँ से कोठी में चले गए। कुछ मेहमान, जो मीनाक्षि और नलिनी के परिचित थे और उसी नाते आये थे, चुपचाप खिसक गए, शेष वहाँ बैठे भोज में सम्मिलित रहे।

मैनन ने देने को तो भाषण दे दिया, परन्तु मन-ही-मन वह क्रोध, ग्लानि और घृणा से भर रहा था। उसका वश चलता तो वह मीनाक्षि की गर्दन पकड़कर वहाँ ही मरोड़ देता, परन्तु मीनाक्षि की रक्षा के लिए डिप्टी-कमिश्नर ने दो कॉन्स्टेबल साथ भेजे थे। मैजिस्ट्रेट ने मैनन का भाषण सुना और मीनाक्षि की रक्षा के लिए कान्सटेबलों को वहाँ छोड़, स्वयं मोटर पर सवार होकर चला गया।

जब मैनन मेहमानों को समझा-बुझाकर नाच और भोज में सम्मिलित होने की प्रेरणा दे रहा था, विनोद, नलिनी, मीनाक्षि और उसके माता-पिता कोठी के ड्रायंग रूम में बैठकर विचार करने लगे कि आगे क्या होगा। जहाँ तक विनोद पर मुकद्दमे की बात थी, उसका भय नहीं रहा था। इस पर भी मैनन से विवाह के न हो सकने का मीनाक्षि के माता-पिता को भारी शोक था। मीनाक्षि की मा ने उसको कहा, "यह

तुमने क्या किया है ? हमारी नाक कटवा दी है।"

"मा ! तुम वहाँ से क्यों आ गई हो ? तुम्हारी नाक तो मैनन के साथ है न ?"

इस पर विनोद ने सबको बैठा कर कहा, "यह तो अभी कुछ भी नहीं हुआ ! जब मैनन को पता चलेगा कि हमारे विरुद्ध सब पत्र उसकी 'चैस्ट' से लापता हैं, तब वह पागल हो जावेगा। वास्तव में विचारणीय बात यह है कि उस समय हमको क्या करना चाहिए।"

मीनाक्षि ने अपने स्थान से उठते हुए कहा, "मैं तो जा रही हूँ।"

"कहाँ ?"

"घर और कहाँ ! दो कान्स्टेबल मेरे साथ हैं। वे मेरी रक्षा के लिए डिप्टी-कमिश्नर ने दिये हैं।"

"यह सब कुछ करने के लिए तुमको किस ने बताया है ?"

"मेरे मन ने। मैं सुबह एक वकील के पास गई थी। उसने मेरी प्रार्थना लिखकर सब जज साहब के सम्मुख रखी और वहाँ से आज्ञा मिलने पर, उस आज्ञा को कार्य मे लाने के लिए हम डिप्टी कमिश्नर के पास सहायता के लिये गए। वहाँ से ये मेजिस्ट्रेट और दो कान्सटेबल मिल गए। अब आप मेरे बालिग होने तक मेरा विवाह नहीं कर सकते।"

सब ने यही राय दी कि मीनाक्षि और उसके माता-पिता अपने घर चले जावें और मैनन के साथ विनोद और नलिनी उचित व्यवहार करें।

भोजन के पश्चात् नाच का रंग फीका रहा। रात के अभी बारह नहीं बजे थे कि नाच में सम्मिलित होने वाली स्त्रियाँ तथा पुरुष वहाँ से चले गए। मैनन ने होटल वालो का बिल चुकाया और लज्जा तथा ग्लानि से सिर झुकाये हुए अपने कमरे में जा पहुँचा। वहाँ बैठकर विचार करने लगा कि अब उसको क्या करना चाहिए। उसके लिए

चिन्ता की बात यह थी कि वह गवर्नर महोदय से कह चुका था कि विनोद के विरुद्ध कोई केस सिद्ध नहीं हो सकता। वह विचार करना चाहता था कि इस सब कुछ मान जाने के पश्चात् वह अपनी बात कैसे बदल सकता है।

उसने आज मद्यपान नहीं किया था, इस कारण वह बहुत तीव्रता से विचार कर रहा था कि वह किस प्रकार विनोद को जेल की हवा खिलाये।

उसने अपनी रिपोर्ट तैयार करने के लिए विचार किया कि इस विषय के कागज-पत्रों की आवश्यकता है। इस कारण उसने जेब से चैस्ट की चाबी निकाल चैस्ट खोली। चैस्ट में विनोद के विषय की फाईल ही नहीं थी। फाईल को लापता देख उसको पिछली रात मीनाक्षि का पत्रों को देखने का हठ करना और उसको मद्यसेवन करने में प्रोत्साहन देना, सब समझ में आ गया। विनोद और नलिनी का पूर्ण षड्यन्त्र उसकी आँखों के सामने आ गया।

पर अब वह क्या करे, इस बात पर वह विचार करने लगा। एकाएक उसको विचार आया कि इस चोरी की पुलिस में रिपोर्ट लिखवा देनी चाहिये। इसके लिए वह कमरे से बाहर निकल आया। टेलीफोन कमरे से बाहर बरामदे में पड़ा था। उसने इसके द्वारा पुलिस स्टेशन 'चेरिंग क्रास' पर सूचना कर दी कि उसकी चोरी हो गई है और इसका सुराग निकालने के लिए एक उचित अधिकारी का वहाँ आना अत्यावश्यक है।

इस समय वहाँ कोठी के बरामदे में केवल कोठी का चौकीदार खड़ा था और अन्य कोई व्यक्ति नहीं था। थाने में रिपोर्ट करते समय मैनन ने जब विनोद की कोठी का पता दिया तो एक सब इन्सपैक्टर और दस कान्स्टेबल एक पुलिस वैन में सवार हो वहाँ आ पहुँचे। उस समय भी चौकीदार वहाँ पर ही खड़ा था। मैनन ने पुलिस इन्सपैक्टर को बिठाया और अपने बयान इस प्रकार दिये, "मैं भारत सरकार से एक मामले की जाँच के लिए यहाँ आया हुआ हूँ। इस जाँच के सम्बन्ध में

मैंने कुछ कागज-पत्र एकत्रित किये थे। वे कमरे में एक सन्दूकची में रखे थे। उसको ताला लगा था और ताले की चाबी मेरी जेब में थी।

"आज रात कुछ मेहमानों को एक भोज और नाच दिया गया था। मैं उसमें बारह बजे तक सम्मिलित रहा। जब वहाँ से मैं अपने कमरे में आया और सन्दूकची खोली तो उन कागजों को लापता पाया।"

"विनोद साहब कहाँ है?"

"वे सो रहे हैं।"

"सन्दूकची की चाबी कहाँ रखी थी?"

"मेरी पतलून की ऊपर की जेब में थी।"

"सन्दूकची कहीं से टूटी तो नहीं है?"

"मालूम तो नहीं होती।"

"क्या मैं सन्दूकची देख सकता हूँ?"

मैनन इन्सपैक्टर को लेकर अपने सोने के कमरे में जा पहुँचा। इन्सपैक्टर ने पूछा, "कमरा खुला रहता है क्या?"

"हाँ नौकर सफाई करने आता है।"

इन्सपैक्टर ने सन्दूकची देखी। वह न तो कहीं से टूटी-फूटी थी और न ही उस पर किसी प्रकार का निशान था, जिससे पता चले कि किसी ने उसको तोड़ने का यत्न किया है। इसके पश्चात् इन्सपैक्टर ने सन्दूकची को एक कपड़े में बन्द कर उसको सील लगा दी और पूछा, "आपको किसी पर सन्देह है क्या?"

"हाँ। विनोद पर और उनकी एक साली मीनाक्षि जोजफ पर।"

यह नाम सुनकर इन्सपैक्टर भौचक्का रह गया। उसने कितनी ही देर तक विचार कर पूछा, "इस सन्देह में कारण क्या है?"

"उसमें कुछ कागजात थे, जो मिस्टर विनोद के रिश्वत लेने से सम्बन्ध रखते थे। विनोद की साली मीनाक्षि ने मुझसे प्रेम प्रकट कर मुझको ठगा प्रतीत होता है।"

इन्सपैक्टर ने धीरे से कहा, "मिस्टर मैनन! जो कुछ भी हो अपने

से बडों के साथ झगडा करने की क्या आवश्यकता है ?"

"मैं सरकारी कार्यवश यहा आया था। तुमको इसमे मेरी सहायता करनी चाहिए।"

इन्स्पैक्टर ने बात बदल दी और पूछ लिया, "विनोद के विरुद्ध जो कागजात थे, वे क्या थे। उनका हुलिया बताइये, जिससे मैं उनकी तलाशी लेने की स्वीकृति ले सकूं।"

मैनन ने कुछ विचारकर कहा, "एक पत्र है, जो विनोद ने सरदार गुरुवचन सिंह को लिखा था, जिसमें उसने यह स्वीकार किया है कि उसको तीन लाख रुपया मिल गया है। एक और पत्र था, जो चीफ सैक्रेटरी टू दि पजाब गवर्नमेंट ने लिखा था। उसमे मिस्टर विनोद को लिखा था कि पत्रवाहक रुपया लाया है, ले लो। और भी पत्र है। मैं उनको पहचान सकता हूँ।"

इन्स्पैक्टर पुलिस ने मैनन की रिपोर्ट कच्चे कागज पर लिखली और अपने उच्च अधिकारी से टेलीफोन द्वारा मैनन की रिपोर्ट सुना दी। उसने गवर्नर से राय की तो गवर्नर ने कहा, "इस चोरी की जाच होनी चाहिए। इस कारण रिपोर्ट दर्ज कर ली जाये। परन्तु मुकद्दमा चलाने से पूर्व जाच का परिणाम मुझको बता दिया जाये।"

अगले दिन पुलिस विनोद की कोठी मे आ बैठी और चपरासी इत्यादि से मैनन और उसके कागजों के विषय मे पूछगीछ करने लगी। पुलिस ने मैनन की मीनाक्षि से सगाई की बात भी लिख ली। विनोद की कोठी की तलाशी भी ले ली गई। मीनाक्षि के भी बयान हुए और उसके कमरे की भी तलाशी हुई।

पुलिस की जाच का परिणाम गवर्नर के पास पहुँचा दिया गया। उसमें पुलिस वालों ने यह लिखा कि चोरी होने के प्रमाण नहीं मिले। सदूकची, जिसमें कागज रखे हुए कहे जाते हैं, बन्द थी। उसकी ताली मिस्टर मैनन की जेब मे रही है। मिस्टर मैनन ने चीफ सेक्रेटरी को भोज वाले दिन कहा था कि विनोद के विरुद्ध कोई प्रमाण नहीं

"जो कुछ मेरे साथ वहाँ बीती है, उससे वहां जाते ही दम घुटने लगता है। मेरी बहन ने अपने पापों के प्रतिकार में मुझको बलि चढ़ाने की ठान ली थी।"

भगवतस्वरूप ने अपने लड़के को इस अपराध से बचाने के लिए स्वयं वहां जाने का निश्चय कर लिया। सुशीला ने पूछा, "क्या विचार कर रहे हैं आप ?"

"मैं समझता हूँ कि जैसे किसी नौका के, लंगर टूट जाने से, डूबने की सम्भावना हो जाती है, वैसे ही विनोद की अवस्था परिवार से पृथक् हो जाने के कारण हो रही है। हमको, जो किनारे पर सुरक्षित स्थान पर खड़े हैं, उनको भी किनारे लगाने का यत्न करना चाहिए।"

कान्ता के मन में इस घटना को सुनकर दूसरे ही विचार उत्पन्न हुए। वह विचार करती थी कि वह यूरोपियन समाज में प्रविष्ट होने जा रही थी। उसको नलिनी और विनोद का व्यवहार बहुत सभ्य और सरल प्रतीत हो रहा था और उनके रहन-सहन ने उसको भी आकर्षित किया था। अब उसे यह विदित हुआ कि उस सभ्यता तथा सरलतायुक्त व्यवहार के नीचे कितना पाप छिपा है। लाखों रुपये रिश्वत लिए जा रहे थे और वह सब कहा गया है। उन चाय-पार्टियों और नाच-तमाशों के नीचे कितनी अनियमितता और पाप है, यह समझ में आते ही वह कांप उठी। वह अपने को एक खाई में गिरते-गिरते बची समझने लगी थी।

भगवतस्वरूप अगले दिन ही विनोद से मिलने गया। अपने दफ्तर से अवकाश पाकर वह उसकी कोठी में जा पहुँचा।

विनोद अपने बाल-बाल बच जाने और मैनन के काम से पृथक् किए जाने की खुशी में, अपनी कोठी में कुछ मित्रों को कॉकटेल पार्टी दे रहा था। नलिनी के माता-पिता भी इस खुशी में सम्मिलित होने के लिए आये हुए थे। ऐसी पार्टी के अवसर पर विनोद अपने पिता को आते देख झेंप गया। वह मित्रों को छोड़कर पिताजी के स्वागत के

लिए उनके टांगे तक चला आया। नमस्कार कर पूछने लगा, "पिताजी! आज आप आये हैं। बहुत ही अच्छा हुआ है। नलिनी ने कुछ मित्रों को, मेरी भारी मुसीबत से बच जाने की खुशी में दावत दी है।"

"मैं भी उसी सम्बन्ध में आया हूँ।"

"आपको किसने बताया है?"

"मीनाक्षि ने।"

मीनाक्षि का नाम सुन विनोद के मुख का रंग उड़ गया। उसको भय लग गया था कि मीनाक्षि ने सब बात बता दी होगी। इस पर भी उसने अपने को सम्हालकर कहा, "आईये बैठिए। आपके लिए चाय बनवा देता हूँ।"

"मैं चाय पीने नहीं आया। तुम से पृथक् में कुछ बात कहना चाहता हूँ। इस समय तुमको समय नहीं मिल सकेगा तो फिर कभी आऊँगा।"

"आप बैठिये तो सही। अभी आधे घंटे से अवकाश पा जाऊँगा।"

"नहीं। इस समय बात बनेगी नहीं।"

"तो कल मैं घर पर आ जाऊँगा।"

"हमारा घर शायद तुम्हारे जैसे बड़े अफसर के योग्य नहीं। इसी कारण तुम्हारे यहाँ आया हूँ।"

"नहीं आप कष्ट न कीजियेगा। मैं स्वयं ही आप से मिलूँगा।"

"अच्छी बात है। नलिनी को साथ ले आना।"

भगवतस्वरूप समझ गया था कि कॉकटेल पार्टी हो रही है। वह यह भी जानता था कि ऐसी पार्टी के पीछे शान्तिपूर्वक किसी गम्भीर विषय पर बात नहीं हो सकती। इस कारण वहाँ बैठ उसने अपना समय व्यर्थ गवाना उचित नहीं समझा।

घर पर सुशीला उत्सुकतापूर्वक अपने पति की प्रतीक्षा कर रही थी। नित्य प्रति दफ्तर से वापस आने का समय निकल चुका था। वह समझ

गई थी कि पिता पुत्र को समझाने गया है और वह समझाने का परिणाम जानने के लिए उत्सुक थी।

अगले दिन भगवतस्वरूप ने सायकाल दफ्तर से लौटने पर देखा कि गली के बाहर विनोद की मोटर खड़ी है। घर पर विनोद और नलिनी सुशीला से बातें कर रहे थे। माँ ने पुत्र को नहीं बताया था कि उनके पिता कोठी मे क्या कहने गये थे। वास्तव में वह जानती भी नहीं थी कि विनोद के पिता उसको कहना क्या चाहते हैं।

भगवतस्वरूप आया और कपड़े बदलकर अपने पुत्र और पुत्रवधू के पास बैठकर कहने लगा, "मै कल तुम दोनो से मिलने गया था। यह तो जानते ही हो कि मै तुम्हारे रहन-सहन पर प्रसन्न नहीं हूँ। साथ ही मीनाक्षि ने जो कल बताया है, उसके पश्चात् मैंने पिता के नाते अपना यह कर्तव्य समझा है कि एक बार फिर तुमको समझा दूँ।"

विनोद और नलिनी चुपचाप सुनते रहे। वह कुछ ऐसे ही उपदेश की आशा कर रहे थे। उन्हे चुप देख भगवतस्वरूप ने कहा, "मीनाक्षि ने बताया है कि वास्तव मे तुमने रिश्वत ली है और यदि वह यह घृणित कार्य, कि एक ऐसे व्यक्ति को अपना पति मानना, जिससे वह विवाह की इच्छा नहीं रखती, न करती तो तुम इस समय हवालात मे होते और पूर्ण परिचित ससार मे तुम्हारी निन्दा हो रही होती। क्या वह ठीक कहती है?"

विनोद अब भी चुप रहा। उसे चुप देख पिता ने अपना कहना चालू रखा, "यदि यह ठीक है तो मै तुम से यह कहना चाहता हूँ कि तुम्हारी निन्दा से मेरी भी निन्दा होगी। इस कारण तुमसे यह प्रार्थना करता हूँ कि यह काम छोड दो।"

इतना कह भगवतस्वरूप ने पुनः उसके कहने की प्रतीक्षा की। विनोद आँखें नीची किए बैठा रहा। पिता ने आगे कहा, "मैं यह बात भली भाँति समझता हूँ कि तुम्हारा व्यय तुम्हारे वेतन मे नही चलता। कल की कॉकटेल पार्टी मे पचास मेहमान उपस्थित थे और

उन पर एक सहस्र रुपया तो व्यय हुआ ही होगा। ग्यारह-बारह सौ रुपया वेतन लेने वाला अफसर इस प्रकार की पार्टियाँ नहीं दे सकता। इस कारण मेरा कहना यही है कि तुम अपने वेतन में रहना सीखो।"

विनोद ने मन में दृढ निश्चय कर रखा था कि पिता की डाट-डपट चुपचाप सुन लेगा, परन्तु नलिनी से नहीं रहा गया। उसने कह ही दिया, "पिता जी! बिना ऐसी सोशल लाईफ के आज संसार में उन्नति नहीं की जा सकती और इसके लिए अपार धन चाहिए। वेतन से इस प्रकार के जीवन का खर्चा चल नहीं सकता।"

"तो क्या लाभ है ऐसी उन्नति का? उन्नति से यदि खर्चा नहीं चल सकता और इसको बनाये रखने के लिए घूस लेनी पडती है तो यह उन्नति न होती, यही अच्छा था।"

"पर पिताजी! आज संसार में यही कुछ हो रहा है। हम दूसरों से भिन्न नहीं हो सकते।"

"अब तो तुमको बचाने वाली मीनाक्षि मिल गई है पर क्या सदा वह तुम्हारी सहायता कर सकेगी?

"मैं एक बात जानता हूँ।" भगवतस्वरूप ने आगे कहा, "मैं जब पचास वेतन लेता था, तब भी जीवित था और अब सात सौ वेतन ले रहा हूँ, तो अब भी जीवित हूँ। मेरे सब सगी-साथी जानते हैं कि मैं ईमानदार और न्यायप्रिय व्यक्ति हूँ। वे लाखों रुपयों तक का मुझ पर विश्वास करते है। साथ ही मैंने अपने लडके और लडकियों को अच्छी शिक्षा दी है और उनको जीवन आरम्भ करने के लिए भी मैं उनकी सहायता कर सकता हूँ। जब मैं ऐसा कर सका हूँ तो तुम लोग क्यों नहीं ऐसा कर सकते? अपनी चादर देखकर पांव पसारना चाहिए।"

"पर हमको उच्च पदवी भी तो चाहिए।" विनोद ने अपनी जबान खोली। उसने कहा, "इस पदवी को प्राप्त करने के लिए और इस पर बने रहने के लिए हमें सोशल लाईफ रखनी पड रही है और यह बहुत खर्चीली है।"

"भाई विचार लो। एक गहरी खाई के किनारे खड़े हो इसमें गिर पड़े तो कोई बाहर निकालने का विचार भी नहीं करेगा। खाने के सब मित्र हैं। पदवी धारियों की सब खुशामद करते हैं। परन्तु जब अवस्था बिगड जायगी तो कोई मुख भी नहीं देखेगा।"

विनोद ने न हाँ की और न ही न की। एक बात उसने मन मे निश्चय कर ली थी-कि वह भविष्य मे बहुत सावधानी रखेगा। उसको पकडा नहीं जाना चाहिए।

भगवतस्वरूप के कहने का कुछ भी प्रभाव विनोद पर नहीं हुआ। वह यह समझ ही नहीं सकता था कि वह एक सचिव होता हुआ, कैसे एक मकान में रह सकता है, जिसमें न लान हो, न ही कोई हाल हो और न ही अलग-अलग काम के अलग-अलग कमरे हों। यदि इतनी बड़ी कोठी में रहना ही है तो चपरासी, माली, बैरा, खानसामा, नौकर इत्यादि कर्मचारी रखने ही पड़ेंगे। मोटर भी होनी चाहिए। दूसरों की दावतों पर भी जाना पड़ेगा और उनको दावतें भी देनी पड़ेंगी। यदि यह सब कुछ होगा तो वेतन में गुजारा चलाना असम्भव है। ये सब बातें ग्यारह सौ मे नहीं चल सकती। तो क्या किया जाय? क्या नौकरी छोड दे और निर्धनता का जीवन व्यतीत करे? उससे यह नहीं हो सकता था। इस कारण उसने सोचा कि उसे यह सब-कुछ करना ही होगा और इस सब-कुछ के लिए धन चाहिए। धन पैदा करने का ढग घूस लेने के अतिरिक्त वह जानता नहीं था।

इस प्रकार विचार कर वह पुनः अपने जीवन में लग गया।

विनोद के घर एक लडकी हुई। इसका नाम एमेलीन विनोद रखा गया। इस अवसर पर विनोद ने अपने माता-पिता और भाई-बहनों को निमन्त्रण दिया। परन्तु कोई भी इस अवसर पर नही पहुँचा। नलिनी ने अपने माता-पिता और भाई-बहनों को बुलाया हुआ था। नलिनी

का भाई स्कूल मे मास्टर था और बहुत ही निर्धन था। वह बड़ों की संगत मे आते हुए लज्जा अनुभव करता था। मीनाक्षि ने कसम खा रखी थी कि वह इनके घर में पाँव नहीं रखेगी। इस कारण वह भी नहीं आई। नलिनी इस बहिष्कार से पागल हो उठी। वह मीनाक्षि पर सारा क्रोध निकालने लगी। उसने विनोद से कहा कि वह अपना प्रभाव प्रयोग कर मीनाक्षि को दफतर से निकलवा दे।

विनोद यह बच्चों की-सी बात समझता था, इस कारण वह नलिनी की माग को टालता रहता था। वह नलिनी के इस बार-बार आग्रह से तग आ गया था। परन्तु वह मीनाक्षि के व्यवहार से भी प्रसन्न नहीं था। नलिनी के मन मे मीनाक्षि के प्रति द्वेप इस घटना के एक वर्ष उपरान्त तक भी नहीं गया।

नलिनी ने जब देखा कि विनोद मीनाक्षि के विषय मे कुछ नहीं करना चाहता तो उसने स्वयं पोस्टमास्टर जनरल से परिचय प्राप्त कर उसको मीनाक्षि के विषय मे कार्यवाई करने के लिए कहा। पोस्टमास्टर जनरल विनोद को प्रसन्न करने के लिए नलिनी के आग्रह को मान गया और उसने मीनाक्षि को नोटिस दे दिया।

मीनाक्षि को जब यह आज्ञा मिली तो उसने पोस्टमास्टर जनरल से भेंट कर अपने विषय में बातचीत करने की प्रार्थना कर दी। भेंट तब ही स्वीकार हुई, जब उसको नौकरी से पृथक् कर दिया गया। भेंट में मीनाक्षि ने कहा, "मैंने ऐसी कोई भी बात नहीं की, जिससे मुझको इस कार्य के अयोग्य समझा जावे।"

"लड़की! तुम ठीक कहती हो। परन्तु एक बात तुमको विदित होनी चाहिए कि मिस्टर विनोद सैक्रेटरी टु दि पंजाब गवर्नमेंट का विरोध मैं नहीं कर सकता। यह मैंने तुमको इस कारण बता दिया है कि तुम मिस्टर विनोद की रिश्तेदार हो और तुम उनसे अपने लिए सिफारिश का पत्र ला सकती हो।"

"तो क्या मुझको मिस्टर विनोद के कहने पर पृथक् किया गया है?"

"अब तुम यह स्वय समझने का यत्न करो। मैंने तुमको पुनः नौकरी पाने का मार्ग बता दिया है।"

"अच्छी बात है। इस सूचना के लिए धन्यवाद।" इतना कह वह एकदम कमरे से बाहर निकल गई।

मीनाक्षि के लिए अब एक नवीन समस्या उत्पन्न हो गई। आज-कल वह एकसौ चालीस वेतन पाती थी। इसमें से वह घर में रहने के और भोजनादि के लिए पचहत्तर रुपया मासिक अपने माता-पिता को देती थी। वे यह धन माँगेंगे तो वह कहाँ से देगी! शेष पैंसठ रुपया वह अपने पर व्यय करती थी।

उसकी शिक्षा सीनियर कैम्ब्रिज तक की थी। इस कारण वह टेली-फोन विभाग के अतिरिक्त कहीं अन्य कार्य पाने में आशा कम रखती थी। किसी स्कूल में अध्यापिका बनने के लिए कम-से-कम ग्रेजुएट होना आवश्यक था। इस पर भी नौकरी ढूँढने का यत्न करने लगी। जहाँ किसी रिक्त स्थान का पता चलता, वह वहाँ पहुँचकर यत्न करती। कहीं तो टाईप-शॉर्टहैंड न जानने के कारण, कहीं कम शिक्षा के कारण, वह काम नहीं पा सकती थी।

उसका नित्य का यह काम था कि प्रातःकाल अपने माता-पिता का सिविल एण्ड मिलिटरी गजट पत्र लेकर आवश्यकताओं के विज्ञापन पढ़ लिया करती और जहाँ जहाँ कार्य का पता चलता, वहाँ का पता नोट कर दिन के समय वहाँ जाया करती।

माँ उसको कई दिनों से यह कार्य करते देख रही थी। उसको विदित नहीं था कि उसकी नौकरी छूट चुकी है। मीनाक्षि नित्य दस बजे काम ढूँढने निकल जाया करती थी। उसके माता-पिता यही समझते थे कि वह अपने दफ्तर जाती है।

एक दिन समाचार-पत्र में से पते नोट करते हुए, उसको माँ ने देख लिया। इस पर उसने पूछा, "क्या पहली नौकरी छोड़ने का विचार कर रही हो? तुम नित्य नौकरियों के विज्ञापन देखा करती हो।"

"नौकरी छोड नहीं रही, वह तो छूट गई है।"

"कब से ?"

"इस मास की पहली तारीख से।"

"क्यों ? क्या खराबी की थी तुमने ?"

"नलिनी की छोटी बहन होने का अपराध किया है।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह कि मिस्टर विनोद ने मेरी शिकायत कर मेरी नौकरी छुडवा दी है। क्यो ? यह तो वे ही बतावेंगे। मैंने अपनी जानकारी में कोई बुरी बात नहीं की। उनका तो मैं भला ही करती रही हूं।"

"तुम मेरे साथ विनोद के पास चलो। मैं उससे पूछना चाहती हूँ।"

"पूछो चाहे न पूछो। मैं तो उस कृतघ्न व्यक्ति का मुख तक देखना नहीं चाहती।"

इस दिन उसने एक विज्ञापन पढा था। 'मैसर्स बर्ड एण्ड कं० इञ्जीनियर्स एण्ड बिल्डर्स' उनको एक क्लर्क की आवश्यकता थी। उसने यह अपनी डायरी में लिख लिया था और वह ठीक दस बजे वहाँ पहुँचना चाहती थी। यह भी एक कारण था कि वह मा के साथ विनोद को मिलने नहीं जा सकी।

ठीक दस बजे वह बर्ड कम्पनी के जनरल मैनेजर के कार्यालय के बाहर जा पहुँची। दस के लगभग अन्य प्रार्थी भी उपस्थित थे। चपरासी ने सबके नाम लिख लिए और सूची भीतर मैनेजर के पास ले गया। साढ़े दस बजे तक चार और प्रार्थी भी आ पहुँचे। उनके नाम भी ले लिए गये। पश्चात् मैनेजर ने एक-एक कर प्रार्थियों को भीतर बुलाना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक प्रार्थी को दस से पन्द्रह मिनट भीतर लगते थे। मीनाक्षि के बुलाए जाने से पूर्व आठ व्यक्ति अन्दर बुलाये जा चुके थे और वे जब बाहर आए तो कुछ तो बिना कुछ बात किये वापिस चले गए। उनमें से एक-दो ने अन्य प्रार्थियो को भेंट का विवरण बताया। उस विवरण से अन्य प्रार्थियों के मन मे आतंक छा गया। सब

बाहर आने वाले कह रहे थे कि मैनेजर बहुत ही कठोर परीक्षा ले रहा है। वह अनेक प्रकार के प्रश्न पूछता है, जिनका सम्बन्ध नौकरी के काम से नहीं रहता और अन्त में बता भी देता है कि प्रार्थी को इस नौकरी पाने की आशा छोड़ देनी चाहिए। एक का यह भी कहना था कि इनको क्लर्क की आवश्यकता नहीं है। किसी का कोई सम्बन्धी पहले ही नियुक्त किया जा चुका प्रतीत होता है और यह आज की भेंट तो कम्पनी के मालिकों को धोखा देने के लिए है।

मीनाक्षि इन समाचारों से निराश हो रही थी। उसकी बारी जब आई तो चपरासी उसको भीतर ले गया। मैनेजर को देख मीनाक्षि ठिठककर खड़ी रह गई। उसको आज तक यह विदित नहीं था कि 'वर्ड एण्ड कम्पनी' का जनरल मैनेजर भगवतस्वरूप ही है। भगवतस्वरूप के घर मे दफ्तर के विषय में कभी चर्चा नहीं होती थी और मीनाक्षि को कभी पूछने की आवश्यकता भी नहीं पड़ी थी।

मीनाक्षि को अवाक्, दरवाजे के पास खड़े देख भगवतस्वरूप मुस्कराया और कहने लगा, "मीनाक्षि! आओ बैठो।"

मीनाक्षि ने इस समय तक अपने मन पर अधिकार कर लिया था और वह आगे बढ 'गुडमार्निंग' कर मेज के समीप ही खड़ी हो गई।

भगवतस्वरूप ने उसे बैठने के लिए कहा। जब वह बैठ गई तो पूछना आरम्भ कर दिया, "पहली नौकरी छोड़ने का विचार है क्या?"

"वह छूट गई है, पिताजी!"

"क्यों?"

"मेरी जानकारी में तो कोई कारण नहीं था। सुना है विनोद जी ने मेरी शिकायत पोस्टमास्टर जनरल से की है।"

भगवतस्वरूप एक क्षण तक विचार करता रहा। पश्चात् बोला, "तो अब तुम नौकरी ढूँढ रही हो?"

"जी हाँ।"

"नौकरी की आवश्यकता तुरन्त है?"

"वैसे तो पहली तारीख को वेतन मिला था और बैंक में मेरा लगभग तीन सौ रुपया जमा है। इस पर भी नौकरी करनी है तो जितनी जल्दी मिले उतना ही अच्छा है।"

"पर नौकरी करनी ही है क्या?"

"नहीं करूँगी तो यह तीनसौ कब तक सहारा देगा?"

"तीन मास तक तो चल सकता है।"

"और पश्चात्?"

भगवतस्वरूप ने यह प्रश्न अनसुना कर कहा, "भूषण की माँ पन्द्रह-सोलह दिनों से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही है। कब जाओगी वहाँ?"

"मैंने यह सकल्प किया हुआ था कि जब तक नौकरी नहीं मिलेगी, आपके घर नहीं जाऊँगी।"

"क्यों?"

"कुछ मन में छोटेपन की भावना उत्पन्न हो गई थी। मैं यह आपके मन में अंकित नहीं होने देना चाहती थी कि मैं आपसे कठिनाई में सहायता चाहती हूँ।"

"तो तुम मुझको पिता किस लिए कहती हो? पिता तो परिवार का मुख्य स्तम्भ होता है न? उसके आश्रय तो परिवार चलता है। परिवार के सब लोग उससे सहायता की आशा रखते हैं।"

मीनाक्षि इस प्रश्न और पिता की व्याख्या से लाल मुख हो चुप कर गई। उसे चुप देख भगवतस्वरूप ने कहा, "मैं समझता हूँ कि तुमसे नौकरी के लिए भेंट कल करूँगा। पहले तुम माताजी से मिल लो। उसे तुमने मा बनाकर अपनी कठिनाई कहने का अधिकार पा रखा है। वह तुम्हारे विषय में दिन-रात सोचा करती है। अब तुम जा सकती हो। आवश्यकता होगी तो कल चली आना। तब विचार कर लिया जायगा।" मीनाक्षि किंकर्तव्य विमूढ कुछ काल तक बैठी रही। पश्चात् 'थैंक यू' कहकर बाहर चली गई।

प्रतीत होने लगी है।"

इस पर भूषण ने कहा, "यही तो मैं कह रहा हूँ। हमारे परिवार में रहने का भी एक प्रकार है। यदि वह उसमें इस प्रकार से रहना चाहे तभी तो उसमें रह सकती है। जब वह हमारे प्रकार से रहना स्वीकार कर ले, तब हमारा सरक्षण उसको मिलना चाहिए।"

इस समय मीनाक्षि आ गई। सबको बैठक में इस प्रकार बैठे देख वह झेंप गई। इस पर भी स्वभाववश वह कमरे में चली आई और नमस्कार कर कान्ता के समीप बैठ गई। सब चुप थे। वे यह नहीं समझ सके थे कि मीनाक्षि की बात उसके सम्मुख की जाय अथवा न। भगवतस्वरूप ने ही विषय को चलाया। उसने अपनी पत्नी को सम्बोधन कर कहा, "आज मीनाक्षि हमारे दफ्तर में नौकरी ढूँढने गई थी। इसकी पहली नौकरी छूट गई है। मैंने इससे पूछा कि यह आज-कल हमारे घर क्यों नहीं आ रही तो इसने कहा कि यह हमारे मन पर ऐसी बात अंकित होने नहीं देना चाहती, जिससे यह प्रकट हो कि यह हमसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता पाना चाहती है। इस कारण यह नौकरी मिल जाने के पीछे ही आना चाहती थी।"

इस पर मीनाक्षि ने आँखें नीचे किये हुए कह दिया, "केवल यही नहीं पिताजी! मैं यह नहीं जानती थी कि आप वर्ड एण्ड कम्पनी में मैनेजर हैं। यदि यह पता होता तो मैं वहाँ नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र लेकर भी नहीं जाती। परन्तु आप ने एक बात कहकर मेरी यह सब धारणा विलीन कर दी है। आपने कहा था कि यदि सहायता मागनी उचित नहीं मानती, तो आप को 'पिताजी' क्यों कहती हूँ?"

"हाँ। हम हिन्दुओं में कोई स्त्री जब किसी पुरुष को भाई कह देती है, अथवा पुरुष किसी स्त्री को बहिन कह देता है, तो वह स्त्री उस पुरुष की सुरक्षा में वैसे ही आ जाती है, जैसे सगे मा-भाई-बहिन। मैं विचार करता हूँ कि यह बात पिता और पुत्री में क्यों नहीं?"

मीनाक्षि ने कहा, "मैं अपने माता-पिता से यह आशा नहीं कर

सकती। उनसे आवश्यकता पड़ने पर उधार माँग सकती हूँ, परन्तु यह कहकर कि तुम 'मेरे माता और पिता हो इस कारण मुझको यह दो, हमारे समाज में उचित नहीं माना जाता।"

"वास्तव में तुम्हारे समाज में परिवार समाज का एक आवश्यक अंग नहीं है। कहीं परिवार बन गया तो बन गया, नहीं बना तो न सही। फिर जहाँ परिवार बनता है, वहाँ यह केवल-मात्र एक आर्थिक इकाई बनकर ही होता है। उसमें धन सीमेंट का काम करता है। हमारे यहाँ स्नेह मुख्य है और आर्थिक सम्बन्ध गौण।"

अब फिर सुशीला ने बातचीत में भाग लेते हुए कहा, "बिना आर्थिक विधान के परिवार रह कैसे सकता है ? भाई-भाई पाई-पाई के लिये लड़ पड़ते हैं।"

"तुम ठीक कहती हो शील ! यह देखने में आता है। पर हिन्दू समाज इस अवस्था को प्रशंसनीय नहीं मानता। गोपीनाथ के पुत्रों में मुकद्दमेबाजी हुई। सिर-फुटौअल भी हो गई। पर हिन्दुओं में क्या कोई ऐसा है जो यह कहता है कि यह ठीक हुआ है ? व्यक्ति काम-क्रोध लोभ-मोह, अहंकारवश बुरी बातें करते हैं। समाज और धर्म की अव-हेलना भी करते हैं, परन्तु समाज सामूहिक रूप में उनको कभी ठीक नहीं समझता। सब यही कहेंगे कि भाई-भाई थे, परस्पर घर बैठकर निर्णय कर लेना चाहिए था। ऐसी हिन्दू समाज की आत्मा बोलती है। यही इसकी विशेष बात है।"

"तो आप क्या कहते हैं ?" सुशीला ने हार मानते हुए पूछा।

"मैंने तो केवल यह कहा था, कि यदि मीनाक्षि मुझको पिता समान समझ पिता कहकर पुकारती है, तो इसको आकर बताना चाहिये था कि इस पर कोई कठिनाई आन पड़ी है। इसी कारण यह अब आई है। क्यों बेटी मीनाक्षि !"

"हाँ, पिताजी ! इसी कारण आई हूँ। मैं मान गई हूँ कि मेरी धारणा, कि तब तक यहाँ नहीं आऊँगी, जब तक नौकरी लग नहीं

प्रतीत होने लगी है।"

इस पर भूषण ने कहा, "यही तो मैं कह रहा हूँ। हमारे परिवार में रहने का भी एक प्रकार है। यदि वह उसमें इस प्रकार से रहना चाहे तभी तो उसमें रह सकती है। जब वह हमारे प्रकार से रहना स्वीकार कर ले, तब हमारा सरक्षण उसको मिलना चाहिए।"

इस समय मीनाक्षि आ गई। सबको बैठक में इस प्रकार बैठे देख वह झेंप गई। इस पर भी स्वभाववश वह कमरे में चली आई और नमस्कार कर कान्ता के समीप बैठ गई। सब चुप थे। वे यह नहीं समझ सके थे कि मीनाक्षि की बात उसके सम्मुख की जाय अथवा न। भगवतस्वरूप ने ही विषय को चलाया। उसने अपनी पत्नी को सम्बोधन कर कहा, "आज मीनाक्षि हमारे दफ्तर में नौकरी ढूँढने गई थी। इसकी पहली नौकरी छूट गई है। मैंने इससे पूछा कि यह आज-कल हमारे घर क्यों नहीं आ रही तो इसने कहा कि यह हमारे मन पर ऐसी बात अंकित होने नहीं देना चाहती, जिससे यह प्रकट हो कि यह हमसे किसी प्रकार की आर्थिक सहायता पाना चाहती है। इस कारण यह नौकरी मिल जाने के पीछे ही आना चाहती थी।"

इस पर मीनाक्षि ने आँखें नीचे किये हुए कह दिया, "केवल यही नहीं पिताजी! मैं यह नहीं जानती थी कि आप वर्ड एण्ड कम्पनी में मैनेजर हैं। यदि यह पता होता तो मैं वहाँ नौकरी के लिए प्रार्थना-पत्र लेकर भी नहीं जाती। परन्तु आप ने एक बात कहकर मेरी यह सब धारणा विलीन कर दी है। आपने कहा था कि यदि सहायता मागनी उचित नहीं मानती, तो आप को 'पिताजी' क्यों कहती हूँ?"

"हाँ। हम हिन्दुओं में कोई स्त्री जब किसी पुरुष को भाई कह देती है, अथवा पुरुष किसी स्त्री को बहिन कह देता है, तो वह स्त्री उस पुरुष की सुरक्षा में वैसे ही आ जाती है, जैसे सगे मा-भाई-बहिन। मैं विचार करता हूँ कि यह बात पिता और पुत्री में क्यों नहीं?"

मीनाक्षि ने कहा, "मैं अपने माता-पिता से यह आशा नहीं कर

सकती। उनसे आवश्यकता पड़ने पर उधार माँग सकती हूँ, परन्तु यह कहकर कि तुम 'मेरे माता और पिता हो इस कारण मुझको यह दो, हमारे समाज में उचित नहीं माना जाता।"

"वास्तव में तुम्हारे समाज में परिवार समाज का एक आवश्यक अंग नहीं है। कहीं परिवार बन गया तो बन गया, नहीं बना तो न सही। फिर जहाँ परिवार बनता है, वहाँ यह केवल-मात्र एक आर्थिक इकाई बनकर ही होता है। उसमें धन सीमेंट का काम करता है। हमारे यहाँ स्नेह मुख्य है और आर्थिक सम्बन्ध गौण।"

अब फिर सुशीला ने बातचीत में भाग लेते हुए कहा, "बिना आर्थिक बिधान के परिवार रह कैसे सकता है? भाई-भाई पाई-पाई के लिये लड़ पड़ते हैं।"

"तुम ठीक कहती हो शील! यह देखने मे आता है। पर हिन्दू समाज इस अवस्था को प्रशसनीय नहीं मानता। गोपीनाथ के पुत्रों में मुकद्दमेबाजी हुई। सिर-फुटौअल भी हो गई। पर हिन्दुओं मे क्या कोई ऐसा है जो यह कहता है कि यह ठीक हुआ है? व्यक्ति काम-क्रोध लोभ-मोह, अहंकारवश बुरी बातें करते हैं। समाज और धर्म की अवहेलना भी करते हैं, परन्तु समाज सामूहिक रूप में उनको कभी ठीक नहीं समझता। सब यही कहेंगे कि भाई-भाई थे, परस्पर घर बैठकर निर्णय कर लेना चाहिए था। ऐसी हिन्दू समाज की आत्मा बोलती है। यही इसकी विशेष बात है।"

"तो आप क्या कहते हैं?" सुशीला ने हार मानते हुए पूछा।

"मैंने तो केवल यह कहा था, कि यदि मीनाक्षि मुझको पिता समान समझ पिता कहकर पुकारती है, तो इसको आकर बताना चाहिये था कि इस पर कोई कठिनाई आन पड़ी है। इसी कारण यह अब आई है। क्यों बेटी मीनाक्षि!"

"हाँ, पिताजी! इसी कारण आई हूँ। मैं मान गई हूँ कि मेरी धारणा, कि तब तक यहाँ नहीं आऊँगी, जब तक नौकरी लग नहीं

जाती, अशुद्ध थी। अब आपको तो सब बात विदित ही है। बताइये मैं क्या करूँ ?"

"मैं तुम्हारे विषय में ही विचार कर रहा हूँ। जब तक कोई निश्चय नहीं कर पाता, तुमको स्थान-स्थान पर जाकर नौकरी ढूँढने की आवश्यकता नहीं है। रहा आर्थिक संकट। उसका उपाय किया जा सकता है। हम एक परिवार हैं। परिवार में नियम होता है कि सब एक-दूसरे के साथी होते हैं।"

"पर मैं आपके परिवार में हूँ क्या ?"

"तुम क्या समझती हो ?"

"मैं तो इससे लाभ उठाने वाली हूँ। इस कारण मुझसे पूछने की बात नहीं। जिनको मेरा भार वहन करना होगा, उनके ही तो विचार करने की बात है।"

"तुम्हारे आने से पूर्व हम इसी विषय पर बात कर रहे थे। भूषण का कहना था कि जैसे किसी समाज में रहने के लिए उस समाज का आचार-विचार अपनाना पड़ता है, वैसे ही किसी परिवार में रहने के लिए उस परिवार के जीवन के प्रकार को स्वीकार करना होता है। यदि तुम यह कर सको तो तुम हमारे परिवार का अंग हो सकती हो।"

"पर मैं तो परिवार में रहती नहीं। मैं अपने माता-पिता के पास रहती हूँ और अभी एक वर्ष तक और रहने के लिए विवश की जा सकती हूँ।"

"यह तो कोई बात नहीं।" भगवतस्वरूप ने कहा, "मान लो आज भूषण कहीं अन्य स्थान पर नौकरी पा जाता है और वहाँ जाकर रहने लगता है, तो क्या वह परिवार से बाहर हो गया माना जाएगा ?"

"तो कौनसी बात है जो एक परिवार में रहने के लिए आवश्यक है और फिर आपके परिवार का कौनसा विशेष प्रकार है ?"

मीनाक्षि का विचार था कि भूषण से विवाह की बात होगी। उसके

विस्मय का ठिकाना नहीं रहा, जब एक शब्द भी विवाह का नहीं कहा गया। बात चल पड़ी परिवार में सम्मिलित करने की। जब उसने पूछा कि परिवार में रहने के लिए कौनसी बात आवश्यक है तो भगवत-स्वरूप ने विचार कर कहा, "परस्पर स्नेह, सहानुभूति और सह-योगिता।"

"क्या सबकी साँझी सम्पत्ति एक परिवार को संगठित रखने में आवश्यक नहीं ?"

"यह उक्त मन की अवस्था का परिणाम है परन्तु यह कारण नहीं। परिवार में आर्थिक-प्रपञ्च उसके सदस्यों की मानसिक अवस्था का बाहरी रूप है। यह आभ्यान्तरिक प्रेरणा नहीं। जब मन ठीक होते हैं तो रुपया-पैसा गौण हो जाते हैं। मन कलुशित होने पर परिवार की भावना टूट जाती है और रुपया-पैसा बँट जाता है।"

"पर पिताजी ! आज एक सदस्य सत्य हृदय से अथवा स्वार्थवश परिवार में सम्मिलित होता है और कल विचार-परिवर्तन से अथवा स्वार्थ-सिद्धि कर, वह परिवार छोड़ जाता है, तब क्या होगा ?"

"वही जो विनोद के साथ हुआ है। मैंने उसका पालन-पोषण किया। उसको पढ़ा-लिखाकर एक कॉलेज में प्रोफेसर बनाया और जब वह इस योग्य हुआ कि परिवार की गाड़ी को चलाने में सहयोग दे, वह पृथक् परिवार बनाने चला गया। इस पर भी परिवार ने उसको छः सहस्र रुपया दिया, जिससे वह अपने नवीन परिवार की स्थापना कर सके।"

"यह तो कुछ भी न हुआ। मान लीजिये मैं आपके परिवार में सम्मिलित हो जाऊँ और जब पुनः अपनी गाड़ी चलाने योग्य हो जाती हूँ, तो अपना पृथक् प्रबन्ध कर लेती हूँ। तब तो आपको भारी दुःख होगा।"

"दुःख तो होता है। यह विनोद के चले जाने पर भी हुआ था। परन्तु हमने यह विचार किया कि जब मन में सहयोग की भावना ही

नहीं रही, तो विवश कर उसको साथ रखने में कोई लाभ नहीं। हाँ उस पर किया गया व्यय उससे माँगा जा सकता था, परन्तु वह तो उस स्नेह और सहानुभूति का मूल्य होता, जिससे प्रेरित होकर मैंने यह धन व्यय किया था। मैने उसको अमूल्य मान उसका दाम नहीं माँगा।"

"मेरे लिए आपके ऐसे विचार बहुत ही अच्छे सिद्ध हो सकते है। आपके मस्तिष्क मे परिवार की कल्पना है एक कम्पनी के समान, जिसमे अधिकार तो हैं, परन्तु कर्तव्य निश्चित नहीं।"

"तुम मेरा आशय नहीं समझीं। परिवार मे रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति के कर्तव्य भी हैं और अधिकार भी। विशेषता यह है कि उन कर्तव्यों का पालन और अधिकारों का भोग राज्य नियम से नहीं, प्रत्युत् मन की प्रेरणा से चलता है। हम स्वेच्छा से एकत्रित होते हैं और जब पृथक्-पृथक् होते हैं तब भी स्वेच्छा से।"

मीनाक्षि इस जीवन-मीमासा को सुन चकित रह गई। वह सोचती थी कि इसे पागलपन कहा जाय अथवा साधुवाद। उसको यह समझ आया कि ऐसे परिवार को सफल बनाने के लिए मन की निर्मलता, त्याग की भावना और सयम अत्यावश्यक है। ये बातें मनुष्य में कैसे आ सकती हैं, वह विचार करने लगी थी। इस समय उसको मिसेज एनी बेसन्ट द्वारा दिये गए गीता के अनुवाद में आत्मा और शरीर के सम्बन्ध की बात स्मरण हो आई। गीता में लिखा था कि आत्मा अमर है। यह मरती नहीं, गलती नहीं, जलती नहीं और न ही हवा में सूखती है। जैसे पुराने वस्त्र बदले जाते हैं, वैसे ही आत्मा शरीर बदलता है। अच्छी बुरी, जो भी मनुष्य के साथ बीतती है, वह पूर्व-जन्म के कर्मों के कारण है।

आज उसको समझ आई कि हिन्दू-समाज में स्वेच्छा से कर्तव्य पालन की भावना क्यों स्वीकार की गई है और यह क्योंकर चलती है। दूसरी समाजों में कर्तव्य पालन के लिए स्वर्ग और नरक की प्रेरणा है,

परन्तु यहाँ, यह मनुष्य-जीवन ही कर्मों के फल का स्थान है। आज की वार्तालाप मे उसको विचार करने की सामग्री मिल गई। वह कितनी ही देर तक बैठी विचार करती रही।

इस बीच मे कान्ता के विषय में बातचीत प्रारम्भ हो गई। बात कान्ता की माँ ने आरम्भ की थी। उसने अपने पति मे कहा, "लाला रामस्वरूप की पत्नी आई थी। वह अपने लडके सुरेश के विषय में कहती थी। सुरेश कान्ता के कॉलेज मे पढता था और अब अनारकली बाजार मे कपड़े की दुकान करता है।"

"कान्ता क्या कहती है ?" भगवतस्वरूप का प्रश्न था।

"वह सामने बैठी है। आप ही पूछ लीजिये न ?"

"तुमने इस लडके को देखा है ?"

"हाँ देखा है, पिताजी! वह फिफ्थ ईयर में पढाई छोड दुकान पर चला गया था।"

"क्यो ? कुछ कारण पता है ?"

"कॉलेज मे कोई नहीं जानता।"

"क्या वह पढाई मे दुर्बल था ?"

"उसने बी० ए० प्रथम श्रेणी में पास किया था।"

"क्या उसका प्रोफेसरो से झगडा होता रहता था ?"

"नहीं, ऐसा कुछ नहीं। हाँ वह लडकों से अवश्य झगडता रहता था।"

"उसकी माँ के प्रस्ताव के विषय में तुम्हारी क्या सम्मति है ?"

"ज्यूँ-ज्यूँ मै अधिक पढती जाती हूँ, मुझको अपनी सूझ-बूझ पर अविश्वास होता जा रहा है।"

"इस पर भी तुम उनके विषय मे क्या समझती हो ?"

"जो मै पिछले वर्ष समझती थी, वह इस वर्ष ठीक नहीं मानती।

जिस बात को मैं कल गलत समझती थी, आज ठीक मानने लगी हूँ। मेरी बुद्धि अभी स्थिर नहीं हुई।"

"तुमने बी० ए० की परीक्षा दे दी है और अब भी यदि तुम इस विषय में कुछ सम्मति नहीं रखती तो हम क्या कर सकते हैं।"

"सम्मति तो रखती हूँ। मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि मेरी आज की सम्मति टिकाऊ है अथवा नहीं, मैं नहीं कह सकती। मेरे विचार, मेरी भावनाएँ, मेरा युक्ति करने का ढंग और मेरे लिए जीवनोपयोगी वस्तुओं का मूल्य, द्रुत गति से बदल रहे हैं। इस कारण कुछ भी कहती हुई डरती हूँ।"

"तो कब तक तुम्हारे विचार इतने स्थिर हो जावेंगे कि हम उनके अनुसार निश्चय कर सकेंगे?"

"यह बताना क्या सुगम है पिताजी? आपके जितना अनुभव तो मेरा कभी भी नहीं हो सकता। इस कारण आपका निर्णय ही मान्य होना चाहिए।"

"तुम क्या कहते हो भूषण?"

"मेरा विचार है कि मीनाक्षि की भाँति सुरेश को भी अपने परिवार के अनुकूल होने का अवसर देना चाहिए।"

"देखो भूषण! दोनों में अन्तर है। मीनाक्षि अपना परिवार छोड़ हमारे परिवार का अंग बनने आ रही है। इसके विपरीत कान्ता हमारा परिवार छोड़ एक दूसरे परिवार का अंग बनने वाली है। इस अवस्था में तो इसके बनने वाले स्वसुर के परिवार वालों को देखना चाहिए कि कान्ता उनके परिवार में खप सकेगी अथवा नहीं। उनको चाहिए कि वे कान्ता को अपने परिवार के अनुकूल बनने का अवसर दें।"

"तो कान्ता को देखना चाहिए कि वह सुरेश जी के परिवार के अनुकूल हो सकती है अथवा नहीं।"

"हाँ। इसके लिए जाँच और विचार की आवश्यकता है।"



"तो पिताजी! यह आप ही के करने योग्य है। आप करिये।" कान्ता ने कहा।

मीनाक्षि का ध्यान इस वार्तालाप की ओर तब आकर्षित हुआ, जब भूषण ने उसके इस परिवार में सम्मिलित होने की बात कही। इस समय तक उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपनी तरणी इनकी नौका से बाँध देगी।

भूषण समझ गया कि उसके पिता का कहना बिल्कुल ठीक है कि कान्ता को सुरेश के परिवार के अनुकूल बनना चाहिए। उसे अब पता चला कि उसके भाई विनोद ने कहाँ भूल की थी। नलिनी के विनोद के परिवार में आने के स्थान, विनोद नलिनी के माता-पिता के परिवार में चला गया है। उसने अपने माता-पिता के परिवार के प्रकार को छोड़कर अपने श्वसुर के परिवार के प्रकार को स्वीकार किया है। इससे वह अपने माता-पिता से दूर होकर अपने श्वसुर के परिवार के समीप हो गया है।

रात के भोजन के समय तक बातचीत चलती रही। मीनाक्षि के विषय में यही निश्चय हुआ कि वह अभी अपने माता-पिता के पास ही रहे। उसके वहाँ रहने का खर्चा भगवतस्वरूप दे। जहाँ तक उसके अपने शेष-खर्च का सम्बन्ध है, वह अभी अपने पास से खर्च करे। पीछे इस पर विचार कर लिया जावेगा। भगवतस्वरूप ने बता दिया कि वह अपने परिवार की किसी स्त्री को नौकरी करने की स्वीकृति तब तक नहीं दे सकता, जब तक पुरुष कमाने के लिए उपस्थित है।

इसका अर्थ यह हुआ कि मीनाक्षि पूर्ण रूप में भगवतस्वरूप के परिवार में सम्मिलित हो गई। मन से वह इसमें ही अपनी भलाई मानने लगी थी। अगले दिन से उसको समाचारपत्रों में 'आवश्यकता है' के विज्ञापन पढ़ने को रुचि नहीं रही। आज उसकी मा ने उसको समाचारपत्र के स्थान गीता को पढ़ते देखा तो पूछ लिया, "नौकरी पा गई हो मीनाक्षि?"

"नहीं मा !"

"कहीं यत्न कर रही हो क्या ?"

"नहीं अब नौकरी करने में रुचि नहीं रही ।"

"तो गुजर कैसे होगा ?"

"आपको खर्चा मिलता रहेगा ।"

"पर कब तक ? तुम्हारे बैंक में तो केवल पौने तीन सौ रुपये जमा हैं ।"

"तो मा ! तुम मेरे बैंक की पास बुक देखती रहती हो क्या ?"

"हाँ कल देखी थी । मुझको चिन्ता लग गई थी कि निर्वाह किस प्रकार करोगी ? पिछले महीने तुम्हारे भाई ने मकान का किराया नहीं दिया । हमको मकान के किराये का भुगतान करने में भारी कठिनाई अनुभव हुई थी ।"

"मेरे विषय में आप निश्चिन्त रहें । आपको पूर्ण खर्चा मिलता रहेगा ।"

मा को उस मास का खर्चा मिल चुका था, अतः उसको अगले मास की दूसरी तारीख तक कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं थी ।

अब मीनाक्षि की दिनचर्या कुछ ऐसी हो गई थी कि प्रातःकाल उठकर, स्नानादि से छुट्टी पाकर वर्जिन मरियम की तस्वीर के सामने बैठ प्रार्थना करती थी । पश्चात् वह गीता पढ़ती थी । मरियम से वह सुख-शान्ति और दिन-भर की रोटी की याचना करती थी और गीता से वह आत्मा-परमात्मा और जीवन मरण की बातें समझने का यत्न किया करती थी । पश्चात् ब्रेकफास्ट का समय हो जाता । वह उसको खाकर भूषण के घर चली जाती । इस समय तक बच्चे स्कूल चले जाते थे । कान्ता घर पर सीने-पिरोने का काम करती रहती थी । मीनाक्षि इसमें सहायता देती थी । मध्याह्न पश्चात् वह वहाँ चाय पीती और जब भगवतस्वरूप दफ्तर से लौटता तो वह अपने घर चली जाती ।

भूषण प्रति शनिवार को घर आया करता था । यह उसकी पढ़ाई

का अन्तिम वर्ष था और वह परीक्षा में प्रथम रहने का यत्न कर रहा था। शनिवार रात और रविवार दिन को वह घर पर रहता था और मीनाक्षि शनिवार रात को उनके घर पर बहुत देर तक रहती थी। पूर्ण परिवार उस रात को देरी से सोता था।

एक शनिवार भूषण आया तो कान्ता से कहने लगा, "पिताजी पाँच सौ रुपया दे गए हैं और कुछ कपड़ा खरीदने को कह गए हैं। चलो बाजार चलें।"

"क्या खरीदना है? यदि तो पतलून-कोट का कपड़ा लेना है तो मीनाक्षि को ही ले जाओ। वह इस विषय में मुझसे अच्छी सम्मति देगी।"

"और यदि साड़ी खरीदनी हो तो?"

"तो जिसके लिए खरीदनी है, उसको ले जाओ।"

"तो चलो तुम्हारे लिए खरीदनी है। वैसे तो पतलून का कपड़ा भी लेना है। तो मेरी राय है कि तुम दोनों ही चलो तो बहुत ठीक रहेगा।"

इस पर मीनाक्षि ने कह दिया, "मैंने तो कभी पतलून पहनी नहीं। मेरे साथ चलने की क्या आवश्यकता है?"

"यह तो कान्ता से पूछो, मीनाक्षि!"

कान्ता ने उठ कर तैयार होने के लिए अपने कमरे में जाते हुए कहा, "यह मार्ग में बताऊँगी।"

"पर मैं चलूँगी ही क्यों?"

"इसलिए कि भूषण भैया जा रहे हैं।"

इस पर तीनों हँसने लगे। मार्ग में मीनाक्षि ने पूछ लिया, "कान्ता बहिन के लिए साड़ी खरीदने का क्या कोई विशेष अवसर आ गया है?"

"तो साड़ी क्या बिना किसी विशेष अवसर के खरीदी नहीं जाती?"

"खरीदी क्यों नहीं जाती?" कान्ता ने कह दिया।

"इस बात का निर्णय तो उस कीमत से होगा, जितने की साड़ी

खरीदी जायगी।" भूषण ने टेढ़ी दृष्टि से मीनाक्षि की ओर देखते हुए कहा।

"तो बहिन कान्ता के विवाह की तैयारी आरम्भ हो रही है?"

"पर यह तैयारी भूषण के विवाह की भी तो हो सकती है। भाई के विवाह पर भी तो बहिनें साड़ी पहनती हैं।"

"पर पहले तो कान्ता का विवाह ही होगा। वह पढ़ाई समाप्त कर चुकी है। और मेरी पढ़ाई समाप्त होने में तो अभी एक वर्ष के लगभग रहता है।"

"तो मैं एम० ए० में दाखिल हो जाती हूँ, जिससे तुम्हारी पढ़ाई पहले समाप्त हो और तुम्हारा विवाह पहले हो सके।"

"पर मैं पूछता हूँ कि जब विवाह होना ही है, तो एम० ए० लिट्रेचर पास करने से क्या होगा?"

"तो क्या करने से कुछ होगा?"

"ढेरों कपड़े सीने से अथवा भूषण बनवाने से।"

"पर उससे यही सिद्ध होता है कि भूषण भैया का विवाह होगा। कल माताजी बाजार गई थीं और चार सौ रुपये के कपड़े ले आई थीं। आज भैया इसी काम के लिए जा रहे हैं।"

"तो शर्त रही। मैं कहता हूँ कि पहले कान्ता का विवाह होगा।"

"और मैं कहती हूँ कि यह तैयारी भूषण के विवाह की हो रही है।"

"और आज साड़ी मैं अपने लिए खरीदने जा रहा हूँ?"

"नहीं अपनी बहू के लिए।"

जब वे दुकान पर पहुँचे और उस में प्रवेश करने लगे तो कान्ता बाहर ही ठहर गई। यह दुकान लाला रामस्वरूप की थी। कान्ता ने सुरेश को कौन्टर पर खड़े देख लिया था। लाला जी स्वयं एक ओर बैठे हुए सिग्रेट पी रहे थे। कान्ता को सन्देह हो गया कि उसको सुरेश के पिता को दिखाने के लिए वहाँ लाया गया है। इससे उसने दुकान

के बाहर खड़े होकर भूषण से धीरे से कहा, "किसी और दुकान पर चलें तो ठीक नहीं रहेगा क्या ?"

"पर पिताजी ने इसी दुकान से कपड़ा खरीदने के लिए कहा था।"

कान्ता समझ गई, परन्तु वहाँ बाज़ार में खड़े होकर झगड़ा करना उचित न मान दुकान में चली गई। सुरेश उनको आया देख, हाथ जोड़ नमस्ते कर पूछने लगा कि क्या चाहिए उनको।

भूषण ने अपनी आवश्यकता बताई तो सुरेश कपड़े दिखाने लगा। रामस्वरूप अपने स्थान से उठकर कौन्टर के पीछे आ खड़ा हुआ। उसको कान्ता की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखते हुए खड़ा देख, मीनाक्षि ने उससे कहा, "हमको जल्दी है। कुछ आप भी दिखा दीजिये। मुझको सूट के लिए कपड़ा चाहिए।" मीनाक्षि का मतलब यह था कि वह खड़ा उनकी ओर देखता हुआ भला प्रतीत नहीं होता था।

रामस्वरूप ने कपड़ा दिखाने के स्थान कह दिया, "लड़का दिखाता है।"

"तो आप क्या कर रहे हैं।"

रामस्वरूप ने उत्तर नहीं दिया। भूषण मीनाक्षि की बात सुन मुस्कराया तो सुरेश ने पूछ लिया, "क्या मैं आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूँ।"

"कान्ता की सहेली है।"

"तभी। इनकी नाराजगी तो शायद जीवन भर सहन करनी पड़ेगी।"

"मैं समझती हूँ कि मेरा परिचय पाने के पश्चात् क्या यह आपका कर्तव्य नहीं हो गया कि इन महाशय का भी परिचय करा दें, जो हमारी ओर घूर-घूरकर देखने का साहस कर रहे हैं।"

सुरेश हँस पड़ा और बोला, "ये घूरकर नहीं देख रहे देवी जी! ये मेरे पिता हैं और अपने लड़के के मित्र तथा परिचितों को प्रशंसात्मक दृष्टि से देख रहे हैं।"

"ओह !" मीनाक्षि ने हाथ जोड़कर नमस्कार करते हुए कहा, "क्षमा करिये। मैंने कुछ और समझा था।"

रामस्वरूप ने मीनाक्षि का भाव न समझकर कहा, "कोई बात नहीं। ऐसा होता ही है।"

इसके पश्चात् कपड़ा खरीदने तक कोई बात नहीं हुई। भूषण के कहने पर कान्ता ने दो साड़ियाँ, एक सूट का कपड़ा और पिताजी के लिए दो पैन्ट का कपड़ा, कमीजों का कपड़ा और ओढ़नियों के लिए कपड़ा खरीद लिया। दाम देकर वे बाहर आये। कपड़े का बंडल साथ होने के कारण उन्होंने लौटने के लिए टांगा कर लिया था, इस कारण कोई विशेष बात नहीं हो सकी। तीनों के मन में बहुत कुछ कहने को था, परन्तु टांगे वाले की उपस्थिति में किसी ने कुछ नहीं कहा।

रात को जब भगवतस्वरूप ने कपड़ा देखा तो भूषण से पूछा, "लाला रामस्वरूप वहाँ दुकान पर थे क्या ?"

"थे।"

"कुछ कहते थे क्या ?"

इस पर मीनाक्षि ने कह दिया, "मैंने समझा कि कोई दुकान का नौकर है। वे हमारी ओर घूर-घूरकर देख रहे थे। इससे मैंने कह दिया कि एक सूट का कपड़ा दिखा दें। तो वह इसका उचित उत्तर दे नहीं सके। एक योग्य दुकानदार की तरह उनको तुरन्त हम को कपड़ा दिखाना चाहिए था।"

इस पर भगवतस्वरूप ने कह दिया, "सुरेश के विषय में तुम क्या कहती हो, मीनाक्षि ?"

"कान्ता बहिन के लिए यह काम ठीक रहेगा।"

"भूषण ! तुम क्या कहते हो ?"

"मैं मीनाक्षि के कहने का समर्थन करता हूँ।"

इस पर सब हँस पड़े।

"बहुत ठीक कहते हो भूषण !" भगवतस्वरूप ने कह दिया।

"मैं समझता हूँ कि मैं कल उनको मिलकर सगाई के लिए दिन निश्चय कर लूँगा।"

इस पर सुशीला ने कह दिया, "सुरेश की मा आई थी और वह चाहती थी कि सगाई अगले मगल के दिन हो जावे।"

"इतनी जल्दी ?"

"आप कल लाला जी से मिल लीजिये और यदि वे चाहें तो मगल के दिन सगाई का प्रबन्ध कर दिया जावे।"

अगले दिन प्रातःकाल भगवतस्वरूप सुरेश के पिता से मिलने गया और उनसे सगाई की तिथि निश्चय कर आया। मगल का दिन ही निश्चय हुआ। रविवार के दिन जब मीनाक्षि आई तो भगवतस्वरूप ने सुशीला को कहकर, दोनों साड़ियाँ, जो पिछले दिन भूषण खरीदकर लाया था, उसके सामने रखवा दीं और कहा, "देखो मीनाक्षि ! ये तुम ले जाओ। एक तो उस दिन पहिनने के लिए है। जिस दिन कान्ता के ससुराल की स्त्रियाँ कान्ता को देखने आवेंगी और एक उस दिन के लिए है, जिस दिन तुम सब सुरेश को देखने जाओगी।" साथ ही रेशमी कपड़ा ब्लाउज इत्यादि के लिए दिलवाकर कहा कि इसको सिलवा लो।

मीनाक्षि को समझ आया कि उस दिन की सब खरीद उसके लिए ही थी।

मीनाक्षि ने कहा, "कान्ता बहिन ! तुम ने मुझको पहले क्यों नहीं बताया कि साड़ी मेरे लिये खरीदी जा रही है ?"

"यदि बता देती तो तुम क्या करती ?" कान्ता ने मुस्कराते हुए पूछा।

"बहुत साधारण सी साड़ी खरीदती। यह अढाई सौ रुपये वाली तो कभी नहीं खरीदती।"

"पर जानती हो पिताजी ने भूषण को क्या कहा था ? उनका

कहना था कि भूषण मीना के लिये कान्ता से बढ़िया कपड़े नहीं लाना।"

"पर ....।" वह कुछ कहने जा रही थी, परन्तु चुप कर गई। कान्ता ने उसकी बात का अनुमान लगाकर कहा, "तुम यही कहना चाहती हो न कि विवाह का तो निश्चय नहीं हुआ और तुम पर इतना कुछ व्यय किया जा रहा है।"

"देखो कान्ता बहिन! मै भूषण जी से प्रेम करती हूँ। जब मैंने उनसे अपने मन के भाव बताये तो उन्होंने कहा कि मैं हिन्दू समाज में रहना सीखूँ। इस बात को आज तीन वर्ष से ऊपर हो गये है। मैं दिन-प्रति-दिन यह तो अनुभव करती हूँ कि मैं आपके समीप और समीप होती जा रही हूँ, परन्तु यह निश्चय नहीं कर सकी कि म उतने समीप, जितना में चाहती हूँ, पहुँची हूँ या नहीं।"

इस पर कान्ता की माँ ने कहा, "हमारी ओर से तो सब कुछ निश्चय हो चुका है। इस पर भी यही उचित समझा गया था कि तुम और भूषण अपने विषय में स्वय निश्चय करोगे। हमारा विचार है कि यह तुम कान्ता के विवाह के पीछे ही निर्णय कर सकोगे।"

मीनाक्षि इस समाचार से बहुत प्रसन्न थी। यद्यपि वह इस प्रकार के निश्चय की तब से ही आशा कर रही थी, जब से वह इस परिवार का अग बनाई गई थी, इस पर भी आज इसको कान्ता की मा के मुख से सुन उसके प्रसन्नता के आँसू निकल गये।

कान्ता की सगाई के दिन मीनाक्षि अढाई सौ की साडी पहनकर घर से चलने लगी, तो उसकी माँ देखकर चकित रह गई। उसने विस्मय में पूछा, "यह साडी कितने की ली हैं मीनाक्षि?"

"अढाई सौ की।"

'और यह ईयर-रिंग्स (कर्णफूल)?"

"ये कान्ता बहिन के पिताजी ने दिये है और यह देखो मा।" उसने गले की कण्ठी और हाथों में चूड़ियाँ भी दिखाई।

मीनाक्षि की माँ देखती रह गई। जब वह घर से बाहर निकलने लगी, तो उसकी माँ ने कहा, "ठहरो मीनाक्षि!"

वह ठहर गई। मा ने उसके पिता को बुलाया और कहा, "ज़रा लड़की के रंग-ढंग देखो। ऐसा प्रतीत होता है कि हम को बताये बिना ही इसने विवाह कर लिया है।"

मिस्टर रेड्डी ने लड़की को सिर से पाँव तक देखा और पूछा, "क्यों मीनाक्षि! यह ठीक है क्या?"

"नहीं पापा! मैंने अभी विवाह नहीं किया। अगले वर्ष पन्द्रह जून को मैं इक्कीस वर्ष की हो जाऊँगी और मेरा विवाह उसके पीछे ही होगा।"

"और यह भूषण और वस्त्र?"

"ये कान्ता के पिता ने दिये हैं। उनकी इच्छा है कि उनके लड़के की बहू उनकी बिरादरी में बढ़िया भूषण-वस्त्र पहन कर जावे।"

"तो आज क्या है उनकी बिरादरी में?"

"कान्ता बहिन की सगाई है।"

"वैसे तो तुम जहाँ चाहो विवाह कर सकती हो।" मीनाक्षि के पिता ने कहा, "इस पर भी तनिक विचार कर लो। हिन्दू समाज में बहुत दोष हैं। मैंने उस समाज को छोड़ तुम्हारी माता से विवाह किया था। जानना चाहती हो क्यों? तो सुनो।

"मैं कालेज में पढ़ता था। हमारी श्रेणी में एक लड़की सुब्बालक्ष्मी आयंगर पढ़ती थी। हम दोनों परस्पर प्रेम करने लगे। मैंने एम० ए० किया तो उससे विवाह की इच्छा करने लगा। लक्ष्मी ने कहा कि मैं उसके पिता से बात कर लूँ। वह मद्रास हाई कोर्ट में रीडर था। मैं उससे मिला तो उसने भूमि पर थूक कर कहा, 'तुम एक अछूत होकर ब्राह्मण की कन्या से विवाह करना चाहते हो? भाग जाओ नहीं तो पुलिस के हवाले कर दूँगा।'

"मेरे मन में आया कि लक्ष्मी को लेकर भाग जाऊँ। मैं उससे मिला

और पहले तो वह इस बात पर तैयार ही नहीं हुई, परन्तु जब मैंने उसकी बहुत मिन्नत की तो वह मान गई और रात का समय नियत कर लिया। मैं नियत समय पर कहे स्थान पर पहुँचा तो पुलिस ने चोरी करने के अपराध में पकड़ लिया। मुझ को एक वर्ष का कठोर दण्ड मिला।

"दण्ड समाप्त होने पर मैं बाहर आया तो मुझ को नौकरी मिलनी कठिन हो गई। इस समय पूना के फरगुसन कौलेज मे प्रोफेसर का स्थान रिक्त हुआ और मैंने वहाँ पत्र भेज दिया और प्रिन्सिपल से मिलने गया। प्रिन्सिपल एक पादरी था। उसने जब मेरी कथा सुनी तो मुझको ईसाई हो जाने की सम्मति दी। मैं ईसाई हो गया और नौकरी मिल गई। वहाँ पर तुम्हारी माँ से भेंट हुई और विवाह हो गया। फिर यहाँ के फोरमैन क्रिश्चियन कौलेज में नौकरी मिली तो मैं परिवार सहित यहाँ आ गया। तब से मैं यहाँ हूँ। अब पैन्शन पाता हूँ। मेरे लिए न तो जातपात के बन्धन हैं, न ही मद्रास-पजाब इत्यादि सूबा के और सुख से जीवन व्यतीत होता है।"

मीनाक्षि इस कथा को सुनकर सशय में पड गई। उसने कहा, "अभी तो मैं कान्ता बहिन की सगाई पर जा रही हूँ। आपकी बात पर विचार करूँगी। इस पर भी इतना तो मैं जानती हूँ कि कान्ता के पिता सूबालक्ष्मी के पिता से भिन्न प्रकार के हैं। वे जानते हैं कि मैं ईसाई हूँ और प्रोफेसर रैड्डी की लड़की हूँ। इसपर भी उन्होंने विवाह की स्वीकृति दे दी है।"

"भगवतस्वरूप अच्छे आदमी हो सकते हैं, परन्तु हिन्दू समाज तुम से घृणा करेगा और तुम्हारे बच्चों को अपने में सम्मिलित नहीं करेगा।"

"यह बात विचारणीय है। अच्छा अब मैं जाती हूँ। समय हो गया है।"

कान्ता की सगाई पर ही मीनाक्षि को भूषण की मगेतर के रूप में

परिचय कराया गया। इस पर उसके विषय में सबके मुख पर चर्चा होने लगी। घर बाहर की स्त्रियाँ पूछती थीं, "किस की लड़की है? कौन बिरादरी से है? कितनी पढ़ी है?" पूछने पर कान्ता की माँ कह देती, "भूषण और उसके पिता ने पसन्द की है और वही जानते हैं।"

भूषण की मौसी ने उसको पकड़कर पूछ ही लिया, "भूषण! इतनी सुन्दर बहू कहाँ से पकड़ लाये हो?"

"इसकी माँ के घर से।"

"बहुत सुन्दर है।"

"मौसी! काली-सी है।"

"हट। ऐनक लगवाओ जाकर। हाँ गोरी मेम की भाँति नहीं है। पर अच्छी है। मोटी-मोटी आँखें हैं। छोटा सा प्यारा मुख है और देखने में बहुत ही भली प्रतीत होती है।"

इस प्रकार भूषण ने मीनाक्षि के माता-पिता का परिचय देने से अपने को बचा लिया।

भगवतस्वरूप ने विनोद और नलिनी को कान्ता की सगाई का समाचार नहीं भेजा था। इस पर भी वे समाचार पा गये। मीनाक्षि की माता ने बता दिया था। सायंकाल वे कान्ता के लिये भेंट लेकर आए। उस समय सब स्त्रियाँ सुरेश की देखनी करने गई हुई थीं। कान्ता घर पर थी।

विनोद ने पिता को उलाहना देते हुए कहा, "आप ने मुझको सूचना भी नहीं भेजी।"

"कोई ऐसी बात नहीं थी, जिसकी सूचना भेजनी आवश्यक समझता।"

"कान्ता की सगाई नहीं हुई है क्या?"

"हुई है। उसी सम्बन्ध में तुम्हारी मा और अन्य स्त्रियाँ कान्ता के ससुराल गई हैं। परन्तु तुम तो इस परिवार का अंग नहीं हो न? इस कारण इस विषय की सूचना देनी आवश्यक नहीं समझी गई।"

उत्तरार्ध

एक

भगवतस्वरूप की बहिन विवाह के एक सप्ताह के भीतर ही विधवा हो गई थी। उसका पति मकान की छत पर से गिर पड़ा था और तुरन्त मृत्यु का ग्रास हो गया था। भगवतस्वरूप उस समय नौकर हुआ ही था और उसके माता-पिता उस समय जीते थे। बहन के विधवा हो जाने पर उसके पुनर्विवाह का प्रश्न उत्पन्न हुआ था, परन्तु भगवत-स्वरूप के माता पिता इसका घोर विरोध कर रहे थे। उस समय विधवा से तो पूछा ही नहीं गया। दोनों परिवारों ने यह निश्चय कर लिया था कि हिन्दू कुलीन परिवारों में विधवा विवाह तो हो ही नहीं सकता।

उस समय भगवतस्वरूप की बहिन पन्द्रह वर्ष की थी। वह स्वयं न तो बहुत कुछ समझती थी और न ही जो कुछ समझती थी, उसको कहने का साहस रखती थी। धीरे-धीरे उसके मन से पति की मृत्यु का शोक शान्त हुआ और दोनों परिवारों मे कार्य साधारण रूप में चलने लगा।

उसको विधवा हुए दस वर्ष व्यतीत हो चुके थे। वह पच्चीस वर्ष की आयु की हो चुकी थी। शरीर युवा हो रहा था और यौवन की मस्ती उसकी आँखों में छा रही थी। मुहल्ले-टोले वालों ने भगवत-स्वरूप की बहिन लक्ष्मी के श्वसुर को कहा कि उसका विवाह कर दिया जावे, नहीं तो परिवार का मुख काला कर कहीं भाग निकलेगी।

लक्ष्मी का एक देवर था। वह भाभी के लिए यह बात ठीक ही समझता था, परन्तु उसको कहने का साहस नहीं रखता था। वह भाभी से डरता था। लक्ष्मी के श्वसुर ने इस समस्या का सुझाव भगवतस्वरूप से बात करना समझा। इस समय तक भगवतस्वरूप के माता-पिता का देहान्त हो चुका था। अपने घर का वही पुरखा था। लक्ष्मी के श्वसुर की बात सुन उसने पूछा, "लालाजी आप क्या चाहते हैं?"

"देखो भगवतस्वरूप! जब लड़के का देहान्त हुआ था, तब लड़की की आयु कम थी। उस समय उसका दूसरा विवाह करना हमारी इच्छा के अधीन था। तब हमने यह उचित नहीं समझा। अब मैं देख रहा हूँ कि हमने भूल की थी। परन्तु इस समय वह सज्ञान हो गई है। हम उसको न तो किसी बात से मना कर सकते हैं और न ही उसको किसी बात के करने के लिए बाध्य कर सकते हैं। मुझको पड़ोसी कहते हैं कि बहू की आँखों में यौवन का उन्माद दिखाई देने लगा है और उसको विवाह कर लेना चाहिए। मैं यदि उसको ऐसा करने के लिए कहता हूँ तो शायद वह यह समझे कि मैं अपने तीस रुपया मासिक बचाने के लिए ऐसा कह रहा हूँ। इस कारण तुमसे कहने आया हूँ।"

"और यदि उसने विवाह करना स्वीकार नहीं किया तो क्या होगा?"

"कुछ नहीं। उसको पूर्ण परिस्थिति समझ आने पर भी यदि वह विवाह के लिए तैयार नहीं होती तो तीस रुपया मासिक देता ही रहूँगा। इस पर भी आप उसको यह तो कह सकेंगे कि यदि कभी भी उसकी विवाह करने की इच्छा हुई तो वह निःसङ्कोच हमको कह सकती

है। हम उसको न केवल स्वीकृति ही देंगे, प्रत्युत् उसमें उसकी सहायता भी करेंगे।"

इन दस वर्षों मे लक्ष्मी के दृष्टिकोण मे भारी अन्तर आ चुका था। नगर मे एक तपोवन नाम का आश्रम था। उसमे प्रायः विधवा स्त्रियो के विषय में ही विचार किया जाता था और उनकी सहायता की जाती थी। आर्थिक सहायता तो विधवा स्त्रियाँ अपनी विधवा बहिनों के लिए क्या कर सकती थीं; हाँ मानसिक शान्ति की प्राप्ति में अवश्य इस आश्रम मे यत्न किया जाता था।

जो भी विधवा इस आश्रम में आना चाहे, आ सकती थी। उसको वहाँ सीना-पिरोना इत्यादि कार्य सिखाये जाते थे तथा ज्ञान-ध्यान की चर्चा की जाती थी।

लक्ष्मी इस आश्रम मे पाँच-छः वर्षों से जाती थी और वहाँ के वातावरण के प्रभाव से अथवा वहाँ की ज्ञान-चर्चा की प्रेरणा से उसके जीवन का दृष्टिकोण बदल चुका था। इस कारण उसके श्वसुर के कहने पर जब भगवतस्वरूप ने उसके विवाह की चर्चा की तो आँखें नीची किये हुए लक्ष्मी ने पूछा, "तो क्या मै समझूँ कि अब मुझे तीस रुपया मासिक देना बोझा प्रतीत होने लगा है?"

"नहीं लक्ष्मी! जब तुम्हारे जीवन मे यह दुर्घटना हुई थी, तब तुम बहुत छोटी आयु की थीं। उस समय तुमको विवाह के लिए किसी ने भी पूछना उचित नहीं समझा। अब तुम जीवन की ऊँच-नीच को भली भाति समझने लग गई हो। इस कारण तुमको इस दिशा मे विचार करने के लिए प्रेरणा देना अपना कर्तव्य मानता हूँ।"

"यदि मैं विवाह करना अस्वीकार करूँ तो?"

"मै तुमको आदेश नहीं दे रहा लक्ष्मी! मैं तो यह चाहता हूँ कि यदि कभी किसी समय तुम्हारी इस ओर रुचि हो तो तुम निःसंकोच मुझको इस विषय में संकेत कर देना। मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने का पूर्ण प्रयत्न करूँगा।"

"मैं विवाह नहीं करना चाहती।"

"क्यों ?"

"मैं इसकी आवश्यकता नहीं समझती। जो शान्ति मेरे चित्त में इस समय उत्पन्न हो चुकी है, मैं उसको मिटाना नहीं चाहती। भगवान् से सदा यही विनती करती रहती हूँ कि यह शान्ति जीवन-पर्यन्त बनी रहे।"

"अच्छी बात है। इस पर भी लक्ष्मी बहिन! मेरे पर सदा भरोसा रख सकती हो।"

इस बात को दस वर्ष और व्यतीत हो चुके थे।

कान्ता का विवाह बहुत धूमधाम से किया गया। भगवतस्वरूप ने दस सहस्र रुपया इस पर व्यय किया। सुरेश और उनके पिता विवाह की धूमधाम से प्रसन्न हो गए।

सुरेश के लिए यह दुगुनी प्रसन्नता का विषय था। कान्ता को वह प्रेम करने लगा था। कालेज में ही वह उसकी रूपरेखा पर मुग्ध था। मालूम करने पर उसे पता चल गया था कि वह उसकी ही बिरादरी की लड़की है। इस पर उसने अपने माता-पिता से बातचीत की थी। उसके पिता ने कहा था, "देखो सुरेश! विवाह करने से पूर्व कुछ कमाना सीखो। एक विद्यार्थी के लिए विवाह की बात उचित प्रतीत नहीं होती। भगवतस्वरूप बिरादरी में बहुत ही मान-प्रतिष्ठा वाला व्यक्ति है। उसकी लड़की के लिए वर का रोटी कमाने योग्य तो होना ही चाहिए।"

परिणाम यह हुआ कि जब कान्ता अभी थर्ड ईयर में ही थी, सुरेश ने कालेज छोड़ अपने पिता की दुकान पर काम करना आरम्भ कर दिया था। डेढ़ वर्ष में उसने न केवल दुकान के काम को सम्हाल लिया था, प्रत्युत् दुकान में भारी उन्नति भी कर दिखाई थी।

जब कान्ता ने बी० ए० की परीक्षा दी तो उसके मन में यह विचार आया कि उसकी सगाई कहीं अन्य स्थान पर हो गई तो वह मुख देखता रह जायेगा। इस कारण उसने माँ को कहकर उनके घर भेजना आरम्भ कर दिया और परिणाम में यह विवाह हो गया।

सुरेश और कान्ता विवाह के पीछे, कुछ दिन तक तो, सम्बन्धियों की बधाईयों में और मेल-मुलाकातों में लगे रहे। धीरे-धीरे जीवन नियमित रूप से चलने लगा और तब समय आया कि कान्ता को अपने ससुराल के चलन का अध्ययन करना पड़ा और फिर अपने को उसमें समन्वित करना पड़ा। यहाँ उसके पिताजी का कहना कि लड़की को अपने पति के परिवार के जीवन-प्रकार को अपनाना चाहिए, न कि पति को अपनी पत्नी के माता-पिता के परिवार के चलन को, स्मरण था। इस कारण जब से वह इस घर में आई थी, वह यह देख रही थी कि किस प्रकार का जीवन उसकी सास-स्वसुर और पति व्यतीत करते हैं।

विवाह के कई मास पश्चात्, सुरेश से इस विषय में उसकी बात-चीत हुई। कान्ता का कहना था, "आपके परिवार में कोई व्यवहार अथवा बात स्थिर नहीं। इससे निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि किस बात का किस पर क्या परिणाम होगा। आप सब के खाने का समय एक नहीं। जो जिस को मिल गया वही उसने पहिन लिया। इससे कभी-कभी मुझ से भारी भूल हो जाती है।"

"तो तुम क्या चाहती हो?"

"मेरे चाहने का प्रश्न नहीं। मेरे जानने की बात है। तीन दिन हुए तो माताजी आठ बजे तक सोई रहीं। मैंने दूध गरम कर दिया, परन्तु कोई पीने वाला नहीं था। कल यह समझ कि माताजी देरी से उठती हैं, मैं प्रातःकाल कुछ स्वाध्याय करने लगी कि माता जी ने कहला भेजा कि वे अल्पाहार को कब से प्रतीक्षा कर रही हैं। इस प्रकार कमलेश स्कूल जाने के कभी आधा घंटा पहिले जाग पड़ता है

कभी दो घंटा पहिले। कभी तो उसको उठते ही बिना शौचादि गए स्कूल जाना पड़ता है।"

"तो तुम भी ऐसा करने लगो। यहाँ मन की स्वतन्त्रता है। हम जब चाहते हैं, सोते हैं, जब चाहते हैं उठ पड़ते हैं। जो चाहे खाते हैं और अपनी इच्छानुसार ही पहिनते हैं।"

"यह बहुत ही मजेदार बात हो सकती है, परन्तु इससे परिवार चल नहीं सकेगा। बहुत ही जल्दी कोई ऐसी बात आ पड़ेगी, जिससे परिवार में कलह-क्लेश उत्पन्न हो जावेगा।"

"जब होगा, तब देख लिया जावेगा। अभी से उसकी चिन्ता करने से क्या लाभ ?"

"तो आप दुकान क्यों करते हैं ? आपके पास चालीस-पचास हजार रुपया तो है ही। मजे से बैठकर खावें। जब समाप्त होगा तब देख लेंगे। मैं तो समझती हूँ कि भविष्य के विषय में चिन्ता न करनी मनुष्यता के विपरीत है।"

सुरेश निरुत्तर हो गया। इस पर भी स्वेच्छा से जीवन व्यतीत करने का स्वभाव था। इस कारण युक्ति से कान्ता की बात मान जाने पर भी कुछ कर नहीं सका। कान्ता ने देखा कि समझाने से कुछ बनता नहीं, इस कारण उसने सोचा कि अपने जीवन को नियमित करने का यत्न करना ही उपाय है, जिससे सुरेश आदि के व्यवहार पर प्रभाव पड़ सके।

वह स्वयं यत्न कर रात को दस बजे सोने और प्रात चार बजे जागने लगी। सुरेश प्रातः गहरी नींद सोया होता था, जब वह स्नानादि से निवृत्त हो कुछ पढ़ने बैठ जाती। कभी उसकी सास अथवा श्वसुर जागे होते तो उनके लिए अल्पाहार बना देती। स्वयं वह सात बजे अल्पाहार करती और दस बजे तक, जब उसके पति और श्वसुर ने दुकान पर तथा घर के बच्चों ने स्कूल जाना होता, भोजन तैयार कर देती। इस नियम से उसने देखा कि दस बजे तक जो काम की उतावली

मची रहती थी, समाप्त हो गई।

घर में एक नौकर भी था। वह भी अनियमित स्वभाव बनाये हुए था। कान्ता ने पहले उसी पर अपनी आज्ञा चलाई। वह स्वयं जागकर, उसको जगा देती और जब तक वह स्वयं स्नानादि से निवृत्त होती, नौकर ग्वाले से दूध ले आता और उसे गरम करने रख देता। इस पर जब कोई जाग कर तैयार होता, अपने लिए अल्पाहार का सामान तैयार पाता।

इस पर भी असन्तोष का कारण बना रहता। सुरेश की माँ को आज परोंठा चाहिए तो कल बिस्कुट। फिर किसी दिन दूध के साथ दालमोठ की आवश्यकता होती। कभी जब माताजी के सामने दूध आता तो वे नौकर को कहतीं, "जाओ हलवाई की दुकान से बर्फी ले आओ।" जब तक वह बर्फी लेकर आता, तब तक दूध ठण्डा हो जाता। वह दोबारा गरम किया जाता, तो पिताजी जाग पड़ते। उनकी तबीयत नमकीन खाने को करती तो फिर नौकर को भगाया जाता और वह हलवाई की दुकान से समोसे आदि लेकर आता।

इस अनियमितपने से खर्चा दुगना पड़ता। बच्चों को प्रायःस्कूल जाने में विलम्ब हो जाता। प्रत्येक बच्चे को फीस से अधिक तो जुरमाना देना पड़ता। इस दुर्व्यवस्था को देख कान्ता का मन उच्चाट होता जाता था।

उसने एक दिन सुरेश से पूछा, "आप घर पर कितना व्यय करते हैं?"

"जितनी आवश्यकता होती है।"

"कुछ गिनती-मिनती नहीं क्या?"

"लिखा तो जाता है। कभी हजार-बारह सौ हो जाता है और कभी सात-आठ सौ में ही काम चल जाता है।"

"इसमें भी कोई नियम नहीं। यह बात आप अच्छी समझते हैं क्या?"

यह रहस्य उसने किसी को नहीं बताया—अपने माता, पिता एव स्त्री तक को भी नहीं। बम्बई से लौटकर उसने दुकान बन्द कर दी और दिवाले की प्रार्थना कर दी। परिणामस्वरूप दुकान और घर को ताले लग गए। परिवार के कुछ थोड़े से भूषण और वस्त्र निजी प्रयोग के लिए छोड कर शेष सब पर सरकारी मुहर लग गई।

कान्ता के लिए यह एक नवीन अनुभव था। यूँ तो वह परिवार की अनियमितता से किसी न किसी कठिनाई की आशा करती ही थी, परन्तु यह कठिनाई इस प्रकार आयेगी और इतने उग्र रूप मे आयेगी, वह नहीं जानती थी।

घर के सब कमरे बन्द कर दिये गए थे। केवल गुसलखाना और तीन कमरे रहने के लिए छोड दिये गए। जब इस दुर्घटना का पहिला प्रभाव मिट गया तो रामस्वरूप और सुरेश बैठकर विचार करने लगे कि यह क्यों हुआ और अब वे क्या करें। सुरेश की माता का कहना था कि घर में भाग्यहीन बहू आई है, जिससे यह मुसीबत घर भर को सहनी पडी है।

सुरेश, जो पूर्ण घटना का इतिहास जानता था, इस विचार को नहीं मानता था। इस कारण जब पिता-पुत्र विचार करने बैठे तो पुत्र ने कान्ता की ओर से सफाई देते हुए कह दिया, "पिताजी! वह तो छः मास से कह रही थी कि हमारा व्यवहार किसी न किसी दिन हमको मुसीवत में डाल देगा। उसका कहना था कि जब भी हम काम करते हैं तो भविष्य के विषय में विचार नहीं करते।"

"वह एक बाबू की लडकी व्यापार की बातों को क्या जानती है?"

"उसने आपके व्यापार में तो हस्तक्षेप किया नहीं। उसने तो हमारे स्वभाव के विषय में कहा था।"

"हमने जो भूल की है, वह उसके दुष्प्रभाव के कारण ही की है।"

"तो आपने जब कॉन्ट्रैक्ट पर हस्ताक्षर किए थे, उससे पूछ कर किये थे?"

"तुम भी अपनी बीवी की गुलामी में फँसकर उसके पक्ष की बात कर रहे हो।"

"क्या पक्ष ले रहा हूँ पिताजी? क्या उसके खाने-पहिरने के लिए कुछ विशेष माँग रहा हूँ? उसका भी तो सब-कुछ सरकारी अधिकार में हो गया है, जैसा माता जी का हुआ है।"

"देखो सुरेश! मेरी राय तो यह है कि उसको कुछ दिन के लिए उसके माता-पिता के यहाँ भेज दो।"

सुरेश इस प्रस्ताव से अवाक् रह गया। वह पिता का मुख देखता रहा। रामस्वरूप ने आगे कहा, "जब तक वह घर में है, मेरा तो मस्तिष्क काम ही नहीं करता।"

सुरेश इस नई परिस्थिति से बहुत घबराया। वह वास्तव में कान्ता से प्रेम करता था और फिर इस दुर्घटना का स्पष्ट कारण जानता था। उसने पिताजी को कॉन्ट्रैक्ट पर हस्ताक्षर करने से पूर्व समझाया भी था, परन्तु उन्होंने माना नहीं था।

सुरेश ने पिताजी के विचार कान्ता को बताये तो उसके मुख का रंग उड़ गया। वह बिना कुछ कहे बैठी रह गई। इस समय वह गर्भिणी थी और यह उसका पाँचवाँ मास था। उसने अपनी पूर्ण परिस्थिति पर विचार किया और कहा, "मैं पिताजी के विषय में कुछ नहीं कहूँगी, परन्तु मैं आप से पूछती हूँ कि आप क्या कहते हैं?"

"मैं तो तुम्हें अपने माता-पिता के घर जाने के लिए नहीं कहता।"

"तो मैं नहीं जाऊँगी।"

"तो कहाँ रहोगी?"

"जहाँ आप रखेंगे।"

"यह तो तुम जानती हो न कि मेरे पास इस समय कुछ नहीं है और तुम्हारी इस अवस्था में तुमको बहुत कुछ चाहिए।"

"मेरे पास कुछ भूषण हैं, जो पुलिस नहीं ले गई। उनसे यह कठिन समय निकल जायेगा।"

"पर मेरे माता-पिता भी तो हैं। उनके विषय में भी सोचना है।"

"माताजी के पास भी कुछ भूषण हैं। उनको बेचकर कुछ काल के लिए निर्वाह किया जा सकता है।"

"वे अपने भूषण बेचेंगी नहीं।"

"इसमें मैं क्या कर सकती हूँ? इस पर भी मैं तो उनके साथ डूबने के लिए भी तैयार हूँ।"

"मेरी भी एक योजना है। मैं अपने माता-पिता से पृथक् होने जा रहा हूँ। माता-पिता के निर्वाह के लिए मैं उनको एक सौ रुपया महीना दे दिया करूँगा। मैं चाहता हूँ कि वे हरिद्वार जाकर रहें।"

"पर वे मानेंगे क्या? और साथ ही आप यह सौ रुपया महीना कहाँ से देंगे?"

"मैंने इस विषय पर विचार किया है। सब मिल-मिलाकर अढाई सौ रुपये का खर्चा होगा। इसके लिए मेरा नौकरी करने का विचार है।"

"इतनी बडी नौकरी कहाँ मिलेगी?"

"एक सौ तक की तो मिल रही है। शेष के लिए भूषण बेच कर काम चलाने का यत्न करेंगे। जब मुकद्दमा समाप्त हो जावेगा, तब किसी स्थान पर नया काम करने का यत्न करूँगा।"

कान्ता सोचती थी कि यदि ये पहले विचारशीलता दिखाते तो आज यह अवस्था उत्पन्न ही नहीं होती। इस पर भी पिछली बात का उल्लेख करना व्यर्थ मान, आगे के लिए कहा, "योजना ठीक ही प्रतीत होती है। इस दिशा में उपाय करना ही एक मार्ग रह गया है। इस मार्ग में भी बाधाएँ तो हैं ही, परन्तु बाधाओं से परास्त होने से तो काम नहीं चल सकता।"

सुरेश ने इस दिशा में काम आरम्भ कर दिया और इसका कुछ

फल निकला। उसको सवासौ रुपये महीने की नौकरी मिल गई। परन्तु उसकी माता-पिता-सम्बन्धी योजना फलीभूत नहीं हुई। रामस्वरूप ने इस समय लाहौर छोडने से इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि यदि वह यहाँ से चला गया तो लोग उसका अपमान करेंगे।

"पर आप तो भाग नहीं रहे न ?"

"मेरे यहाँ से चले जाने को लोग यही कहेंगे।"

"कौन लोग ? हमारे लेनदार ही तो न ? उनके लिए मैं जो यहाँ हूँ और फिर आपका पता भी तो उनके पास होगा।"

"नहीं सुरेश ! मैं नहीं जाऊँगा।"

"तो फिर खाने-पीने का काम कैसे चलेगा ?"

"हमारे पास कुछ रुपया है। तुम अपना प्रबन्ध कर लो।"

सुरेश के लिये यह अवस्था कुछ सुविधाजनक नहीं थी। वह लेनदारों से समझौता करना चाहता था और यह पिताजी की उपस्थिति में हो नहीं सकता था। वह अभी उनके कथन पर विचार कर ही रहा था कि वे कहने लगे, "तुम्हारी स्त्री अब हमारे घर में नहीं रह सकती। यह मुसीबत उसी के कारण आई है। मैं देखूँगा कि वह किस प्रकार तुम्हारा पिंड नहीं छोडती। इसके पहले हम हरिद्वार नहीं जा सकते।"

सुरेश की हँसी निकल गई। उसने कहा, "पिताजी ! वह अच्छी है या बुरी, अब मेरी पत्नी है। मैं उसको घर से निकालूँगा नहीं, प्रत्युत उसके साथ स्वयं ही घर से निकल जाऊँगा। इस पर भी मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यदि मेरे पास कुछ हुआ तो आपकी सहायता करता रहूँगा।"

अगले दिन वह कान्ता को लेकर घर से निकल गया। कान्ता अपने साथ केवल वे भूषण लेकर निकली, जो सरकारी रिसीवर उनके पास छोड गया था। जब वे गये तो रामस्वरूप की आँखों से आँसू निकल रहे थे, परन्तु सुरेश की माँ मुख में बुड-बुड कर रही थी।

दिवाले के लिये प्रार्थना पर सुनवाई तो आरम्भ हो गई, परन्तु उस पर निर्णय कोई सुगम बात नहीं थी। इसमें वर्षों लग जाते हैं। जो माल रिसीवर मुहुर बन्द कर गया था, उसके खराब हो जाने का डर था। इस कारण रामस्वरूप के सब लेनदारों ने परस्पर विचार-विमर्श कर न्यायालय में प्रार्थना कर दी कि उनको स्वयं रामस्वरूप के विषय में निर्णय करने का अवसर दिया जाय। इस प्रकार पहिले लेनदारों की एक सूची बनाई गई। उनकी एक बैठक की गई। इस बैठक में ही इस प्रकार की प्रार्थना का विचार किया गया। जब न्यायालय से इस बात की स्वीकृति मिल गई, तब उन्होंने रामस्वरूप की सम्पत्ति की सूची बनाने के लिए और उसको बेचकर धन एकत्रित करने के लिए तीन लेनदारों की एक समिति बना डाली।

जाँच-पडताल पर यह पता चला कि मारकीन के व्यापार के अतिरिक्त भी दुकान में हानि रही थी। घर का खर्चा आमदनी से बहुत अधिक था और कुल ऋण पाँच लाख के लगभग था।

इस प्रकार सबको बीस प्रतिशत के लगभग हानि हो रही थी। व्यापारियों ने यह निश्चय किया कि यदि रामस्वरूप और उसका लडका सुरेश, अपनी आय दस वर्ष तक लेनदारों को देने का वचन दें, तो उनको दिवालिया घोषित नहीं किया जायगा।

सुरेश तो तुरन्त मान गया, परन्तु रामस्वरूप दस वर्ष की शर्त के स्थान पर छः वर्ष चाहता था। समझौता लगभग टूट ही गया था, जब सुरेश ने अपने श्वसुर लाला भगवतस्वरूप की सेवाओं को माँगा। भगवतस्वरूप बहुत ध्यान से अपने समधी और दामाद के दिवाले के विषय में देख रहा था। इस पर भी वह स्वयमेव इसमें हस्तक्षेप करना नहीं चाहता था। अब सुरेश ने उसके पास पहुँचकर अपनी कठिनाई बताई तो वह इस समस्या को सुलझाने के लिए तैयार हो गया। सबसे पहले वह रामस्वरूप से मिला और उसके विचारों को जानने का यत्न करने लगा। रामस्वरूप के विचारों को जानकर उसको बहुत खेद हुआ।

इस पर भी उसने खेद प्रकट करना उचित न मान, उससे पूछा, "आप क्या चाहते है ?"

"हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे घर मे एक अपशकुन आ पहुँचा है और सुरेश उसको घर से निकालने के लिये तैयार नहीं होता। इस कारण मुझको विश्वास है कि हम तो अब धनी हो नहीं सकते। हमारे लिए यह बात विचारणीय ही नहीं कि हम पुनः अपने कारोबार को उभार सकेंगे। अतएव मेरा यह मत है कि लेनदारों को एक पैसा भी हमसे वसूल न हो सके।"

"आपको क्या लाभ होगा इससे ?" भगवतस्वरूप ने पूछा।

"मन को सन्तोष होगा कि हम अकेले नहीं डूब रहे।"

"यह सब व्यर्थ की बात है। मै आपको कहता हूँ कि यदि अवसर मिले तो आप लोग पुनः अपनी बिगडी बना सकते है। कुछ काल के लिए आप यहाँ से टल जायँ तो सुरेश को काम करने का अवसर मिल जायगा। मैं यत्न करके उसको पूँजी के लिये धन दिलवा दूँगा।"

रामस्वरूप इसको असम्भव समझता था। इस पर भी उसने पूछा, "मेरे यहाँ रहते आप वह पूँजी क्यो नहीं दिलवा सकते ?"

"बाजार वालो को आप पर विश्वास नहीं।"

"इसी से तो मै चाहता हूँ कि बाजार वालो को जितनी हानि पहुँच सके पहुँचाऊँ।"

"आपके किये से बाजार वालो का कुछ नहीं बिगड़ेगा। जो कुछ भी हानि होगी वह आपकी ही होगी। आप यदि हरिद्वार चले जायँ और सुरेश के काम मे हस्तक्षेप न करें, तो आपके खर्च के लिए रुपया प्रति मास वहाँ पर ही मिल जाया करेगा।"

"कितना मिल जाया करेगा ?"

"एक सौ रुपया मासिक।"

"इतने मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। कम-से-कम दो सौ रुपया मासिक होना चाहिए।"

इसके पश्चात् भगवतस्वरूप ने रामस्वरूप के लेनदारों से बातचीत की। उसने उनको बताया कि उनके लिए यह अच्छी बात है कि अस्सी प्रतिशत तो वे माल बेचकर वसूल कर लें और शेष में से दस प्रतिशत वे छोड़ दें। दस प्रतिशत सुरेश उनको छः वर्ष में चुकता कर देगा। इस प्रस्ताव पर बहुत वाद-विवाद हुआ, परन्तु जब भगवतस्वरूप ने बताया कि वह अपने दमाद को बीस तीस हजार से नया काम कराने का विचार रखता है और उस पूँजी से वह अपने ऋण का भुगतान कर सकेगा, परन्तु उसके दिवालिए घोषित होने पर वह यह सहायता नहीं कर सकेगा तो इस पर लेनदार मान गये। रामस्वरूप और सुरेश को दिवालिया घोषित किये जाने पर उनको बीस प्रतिशत की हानि स्पष्ट दिखाई दे रही थी। इस योजना से दस प्रतिशत और मिल जाने की आशा बन गई थी।

जब सब कुछ निश्चय हो गया तो सुरेश ने अपने पचास हजार का सोना छिपा कर रखने की बात अपने स्वसुर को बता दी। यह सुनकर तो भगवतस्वरूप बहुत द्विविधा मे फस गया। उसको यह छिपाया हुआ धन चोरी किया हुआ प्रतीत हुआ। सुरेश ने इस विषय मे अपने मन की धारणा बता दी। उसने कहा, "पिता जी! यदि हम दिवालिये घोषित हो जाते और यह रुपया दुकान में ही रहता, तब भी हमारे सिर पर ऋण बना रहता। नीलामी मे तो माल का यह मूल्य भी न मिलता, जो अब मिल रहा है। परिणाम यह होता कि यह पचास हजार भी जाता और लेनदारों को भी बीस प्रतिशत के स्थान चालीस और पचास प्रतिशत हानि उठानी पड़ती। वह चालीस प्रतिशत की हानि किसी भाँति भी पूरी न की जा सकती। अब आपकी कृपा से एक तो हम स्वय काम कर सकने के योग्य हो गये हैं और फिर इस धन को सुरक्षित कर लेने से लेनदारों को ऋण दे सकने की क्षमता भी हममें आ जावेगी। ये लेनदार, इस पचास हजार का भेद जानकर तो इसको बँटवारे में सम्मिलित किये बिना न रहते। वे हमको काम आरम्भ करने

के लिए हमारे पास एक पाई भी न छोडते। परिणाम हमारे लिए तो भयानक होता ही, साथ ही उनको भी कुछ न मिलता। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि इस छिपाकर रखे धन का सदुपयोग ही किया जावेगा।"

परिणाम यह हुआ कि एक मास के भीतर ही लिखा-पढ़ी हो गई और माल बेचकर रुपया लोगों को दे दिया गया। रामस्वरूप तो दो सौ रुपया महीना लेकर हरिद्वार में जा बैठा और सुरेश उसी दुकान पर पचास हजार की पूँजी से काम करने लगा।

इस समय कान्ता के लडका हुआ। वह अपने पिता के घर प्रसव के लिए गई हुई थी। यद्यपि रामस्वरूप के काम से पृथक् हो जाने के कारण वह अनियमितता नहीं रही थी, जो दुकान और घर पर पहले थी, परन्तु सुरेश के लिए कठिनाई अभी दूर नहीं हुई थी। उसने मन में दृढ संकल्प किया हुआ था कि जब तक वह ऋण चुकता नहीं कर लेता, वह एक पाई भी व्यर्थ व्यय न करेगा। भगवतस्वरूप इस बात के लिए उसको प्रेरणा देता रहता था। सुरेश को दुकान के सब प्रकार के खर्चे देने के पश्चात् दो सौ रुपया पिता जी को देना पडता था और वह सवासौ रुपया मासिक अपने खर्च के लिए निकाल लेता था। अपने सवासौ रुपये में उसका निर्वाह बहुत कठिनाई से होता था।

मीनाक्षि और कान्ता में घनिष्ठता दिन-प्रतिदिन बढती जाती थी। कान्ता पर विपदा पडने के समय वह प्रायः नित्य उससे मिलने जाती थी और वह इस विपदा काल में कान्ता का धैर्य और साहस देख विस्मय करती थी। कान्ता गर्भवती थी। इस पर भी वह प्रातःकाल से लेकर रात के बारह बजे तक निरन्तर कार्य करती रहती थी। पहले पति को काम पर जाने के लिए तैयार करती, पश्चात् पूर्ण घर की सफाई करती। नौकर रखने की क्षमता नहीं थी। साथ ही बच्चे भी

थे। वे सब स्कूल जाते थे। उनका भोजन बनाना, कपड़ों का धोना और सीना तथा मरम्मत करना भी उसका काम था। इस सब के साथ-साथ मन को स्वस्थ रखने के लिए स्वाध्याय भी करती थी।

सायंकाल होने पर बच्चे स्कूल से आ जाते। वह उनके अल्पाहार की व्यवस्था करती और फिर उनकी पढाई में सहायता भी करती। सुरेश के आने तक रात का भोजन भी तैयार करना होता और अन्य सुख-सुविधा का प्रबन्ध भी करती।

मीनाक्षि यह सब देख चकित रह जाती। वह उससे पूछती, "कान्ता बहिन! बहुत कष्ट है न तुमको?"

"नहीं तो।" वह प्रसन्न वदन कहती।

"इस अवस्था में निरन्तर काम करते रहने से थकावट हो जाती होगी?"

"मुझको माताजी ने बताया है कि इस अवस्था में चलते-फिरते रहने से माँ और बच्चा दोनों स्वस्थ रहते हैं।"

"यह तो जब समय आवेगा तब देखा जावेगा। इस समय तो थकावट से कष्ट ही होता होगा?"

"नहीं मीनाक्षि! जब कोई कार्य किसी प्रिय उद्देश्य की सिद्धि के लिए किया जावे तो वह कष्टदायक होने के स्थान सुखप्रद हो जाता है।

"मेरी सास और श्वसुर ने हठ और अनुभवहीनता के कारण यह अवस्था उत्पन्न कर दी थी। हमारा दृढ निश्चय है कि हम इस परिस्थिति से शीघ्रातिशीघ्र निकलें। अपनी योजना की पूर्ति से हमारे भावी जीवन के सुख-सुविधा का सम्बन्ध है। इस कारण इसकी सफलता के लिए किया गया प्रयत्न थकावट नहीं, प्रत्युत सुखकारक अनुभव होता है। उद्देश्य की पूर्ति के ज्यों-ज्यों हम समीप पहुँचते जाते हैं, हमारे चित्त में हलकापन उत्पन्न होता जाता है।"

"मुझको आश्चर्य तो इस बात का हो रहा है कि जिनकी भूल से तुमको यह सब कष्ट भोगना पड़ रहा है, उनको ही तुम दो सौ रुपया

महीना देकर अपनी कठिनाई और अधिक कर रही हो।"

"भूल उन्होंने अवश्य की है और बार-बार समझाने पर भी वे नहीं माने, परन्तु वे मेरे पति के माता-पिता हैं। जिनको मैं प्रेम करती हूँ और जिनके लिए मैं सर्वस्व दे सकती हूँ, उनके पूज्य माता-पिता के लिए भी तो मैं इतना कुछ कर सकती हूँ। परिवार में जब हम एक-दूसरे के लिए कुछ करते हैं, तो यह सौदा नहीं होता, जिसका मूल्य पाना होता है। यह तो प्रेम और स्नेह के नाते ही होता है।"

मीनाक्षि के लिए यह सब एक संयुक्त परिवार का रूप उपस्थित कर रहा था। इस बीच में उसका चिर-प्रतीक्षित विवाह हो गया और वह अनुभव करती थी कि उसका कितना आदर है परिवार में। भूषण की नौकरी बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे में लगी थी और उसको अहमदाबाद भेज दिया गया था। विवाह के पश्चात् वह कुछ दिन तक लाहौर में रहा और फिर अपने काम पर अहमदाबाद चला गया। मीनाक्षि को वह लाहौर में ही छोड़ गया। उसका विचार था कि मकान का उचित प्रबन्ध हो जाने पर साथ ले जावेगा। पीछे वह भूषण के माता-पिता के पास रही और उसने देखा कि उसका परिवार में स्थान कला और शोभा में किसी अंश में भी कम नहीं है।

भूषण की बूआ का विचार था कि विवाह के पश्चात् सब परिवार हरिद्वार की यात्रा के लिए जावे। भगवतस्वरूप ने इस विचार को पसन्द किया और अपने आफिस से पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर परिवार सहित हरिद्वार जा पहुँचा। भूषण की बूआ लक्ष्मी उनके साथ थी।

वहाँ एक दुखद घटना हो गई। वे गंगा घाट पर स्नान कर टहल रहे थे कि कान्ता की सास और स्वसुर मिल गये। हरिद्वार इतनी छोटी-सी जगह है कि दो परिचित बिना एक-दूसरे को मिले रह ही नहीं सकते। भगवतस्वरूप ने उनको पहिचाना तो सुशीला को संकेत कर बता दिया, "लाला रामस्वरूप और कान्ता की सास, वह गंगा के किनारे बैठे हैं।" वे सब वहाँ चले गये और नमस्कार कर

उनके पास बैठ गये। रामस्वरूप ने उनको देखा और पूछा, "आप लोग कुशल से तो आये हैं?"

हरिद्वार में लोग प्रायः सम्बन्धियों के मर जाने पर उनकी अस्थियों के प्रवाह के लिए जाते हैं। इस कारण सुशीला ने रामस्वरूप के इस प्रश्न को बहुत बुरा माना। इस पर भी परदेस में परिचितों से झगड़ा करना अनुचित मान वह चुप रही। भगवत स्वरूप ने कहा, "जी हाँ। यह भूषण की बहू है। इस ने यह तीर्थ स्थान देखा नहीं था। मेरी छुट्टियाँ भी थीं। इस कारण कुछ दिन के लिए भ्रमणार्थ यहाँ चले आये हैं। लक्ष्मी तो पहिले भी यहाँ आया करती है।"

रामस्वरूप को भूषण की बहू को आशीर्वाद देना चाहिए था। परन्तु उसने इसके स्थान पर यह कह दिया, "इस लड़की को तो सुरेश के विवाह पर भी देखा था।"

"जी हाँ। भूषण की सगाई हुए तीन वर्ष हो चुके थे। यह हमारे घर में आती जाती थी।"

इस पर कान्ता की सास ने नाक चढ़ा कर मुख मोड़ लिया। मीनाक्षि ने यह देखा और इसको अपमानजनक माना, परन्तु वह यह नहीं समझी कि कौन-सी बुरी बात उसमें देख कर यह किया गया है। इस समय रामस्वरूप ने पूछ लिया कि "आपकी बड़ी पुत्र वधू कहाँ है?"

"लाहौर में ही है। विनोद बहुत बड़ा आफिसर हो गया है और उसको अपने गरीब माता-पिता से सम्बन्ध रखने में लज्जा लगती है।"

"हाँ! वह सुरेश के विवाह मे भी नहीं आया था।"

इस पर कान्ता की सास ने फिर इनकी ओर मुख कर कह दिया, "हमें पहिले मालूम होता तो सुरेश का विवाह कभी यहाँ नहीं करते।"

"क्यों क्या हुआ है?" सुशीला ने कुछ चिन्ता प्रकट करते हुए पूछा।

"होना क्या है! पहिले धर्म से पतित परिवार में लड़के का विवाह करने से अपमान सहन करना पड़ा और फिर मनहूस लड़की के घर में

आने से सर्वनाश हुआ।"

कान्ता की सास के मुख से यह वाक्य सुन भगवतस्वरूप और सुशीला विस्मय से उसका मुख देखते रह गये। इस प्रकार अपने सामने ही अपनी लडकी और पतोहू की निन्दा सुन वे अवाक् रह गये। उनको चुप देख कान्ता की सास ने यह समझा कि उसने भारी विजय प्राप्त की है। इस विजय मे प्रसन्न हो उसने फिर कहा, "वह ईसाई की बेटी, जो विनोद को अपने जाल मे फँसाये हुए है, सारे नगर में बद-नाम हो रही है। तुम्हारा लडका अपनी औरत की कमाई पर बडा आफिसर बना बैठा है। ऐसे लडके की बहिन से हम अपने लडके का विवाह कर बैठे हैं। ऐसे लोगों से सम्बन्ध बनाने से जो कुछ होना था सो हो गया है। लाहौर का राजा अब हरिद्वार की गलियों में ठोकरें खाता फिरता है।"

मीनाक्षि यद्यपि अपनी बहन के व्यवहार मे प्रसन्न नहीं थी, इस पर भी उसकी इस प्रकार निन्दा सुन क्रोध से तमतमाने लगी। भगवतस्वरूप बिना उत्तर दिये उठ बैठा। सुशीला ने उठते हुए कला और शोभा को कहा, "बेटा! चलो चलें।"

मीनाक्षि से इस समय चुप-चाप चला जाना नहीं बना। उसने कह दिया "चलो माता जी! हम क्या जानते थे कि इन कमीनो मे वास्ता पड रहा है।"

"कमीनी तुम। कमीनी तुम्हारी मा। कमीना तुम्हरा बाप और सारा परिवार।"

कला और शोभा हँस पडीं। लाहौर की अनपढ स्त्रियें इसी प्रकार लडा करती थीं और कला और शोभा उसका नमूना हरिद्वार में देख हँस पडीं। उनको हँसते देख तो कान्ता की सास का पारा और भी चढ गया और वह खडी होकर, हाथ लम्बे करती हुई, उच्च स्वर मे उनको गालियाँ देने लगी। घाट पर बैठे और सैर करते दो चार-सौ लोग वहाँ एकत्रित हो गए। भगवतस्वरूप ने कला और शोभा को डाँट

कर हँसने से मना किया और सब को लेकर वहाँ से खिसक गया।

इस घटना का प्रभाव मीनाक्षि के मन पर कई दिशाओं में हुआ। जहाँ कान्ता के साथ उसकी सहानुभूति बढ गई, वहाँ उसकी सास-स्वसुर के लिए उसका मन भर गया। जहाँ अपने स्वसुर की सज्जनता के लिए वह कृतज्ञ थी, वहाँ हिन्दू समाज के लिए उसके मन की श्रद्धा को भारी ठेस पहुँची थी। जहाँ परिवार प्रथा से वह अपने यहाँ सुख-सुविधा पाती थी, वहाँ इस प्रथा की अनुपयोगिता का उदाहरण भी दृष्टि-गोचर हुआ था। जहाँ प्राकृतिक सम्बन्ध से स्नेह और सहयोगिता का उदाहरण वह अपने परिवार मे देख चुकी थी, वहाँ इस के सर्वत्र विद्यमान होने में सदेह हो गया।

उसकी हिन्दू समाज के प्रति बन रही सुनहरी धारणाओं को आघात पहुँचा और वह विचार करती थी कि क्या उसकी मा का कहना सत्य है कि हिन्दू-समाज बहुत ही घटिया स्तर के जनों का समूह है और इसमे जाने से उसको दु.ख के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलेगा।

इस घटना के पश्चात् वह बहुत ही उदासी अनुभव करने लगी। वह विचार करने लगी कि क्या सत्य ही वह न घर की रही है न घाट की। इस विचार से वह अति भयभीत हो रही थी। उसकी मा ने कहा था कि उसकी सतान के साथ हिन्दू समाज घृणा करेगा और उनके लिए इस समाज में मानयुक्त स्थान नहीं होगा।

इस प्रकार के विचारों से उत्पीड़ित मन लिए हुए, वह घाट से अपने निवास-स्थान पर लौटी। भगवत स्वरूप भी कान्ता की सास के व्यवहार से अति दु.खी था और वह उन से मिलने को भूल मानता था कला और शोभा परिवार के अन्य सदस्यों से कम दु.खी थीं। वे तो उस प्रकार के व्यवहार को अपने पडोसियों में देखती रहती थीं। कहीं सास बहू में झगडा होता था, कहीं भाभी ननद में। कहीं पिता पुत्र में मुक

हमा चलता था और कहीं भाई-भाई में। वे इन सब बातों को देख हँसा करती थीं और अपने परिवार की श्रेष्ठता पर गर्व किया करती थीं। आज भी यही भाव उनके मन में उठे थे।

कला कालेज में दाखिल नहीं हुई थी। उसको संगीत से प्रेम था और वह अपना सब समय इसी विद्या में निपुणता प्राप्त करने में लगा रही थी। उसने अपने पिता से कह दिया था कि वह कॉलेज की पढ़ाई में कोई लाभ नहीं समझती। यदि कान्ता बहिन की भाँति उसको भी अपने ससुरालवालों की रोटियाँ ही सेकनी हैं, तो 'शेक्सपियर' और 'कीथ' पढ़ने से क्या लाभ होगा। संगीत उसकी प्रिय वस्तु थी और वह इसको छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुई।

हरिद्वार में भगवतस्वरूप स्वामी शिवानन्द के आश्रम में ठहरा हुआ था। यह आश्रम हरिद्वार से कनखल जाने वाली सड़क के किनारे एकान्त में बना था। ये लोग पैदल ही वहाँ लौट रहे थे और मार्ग में सब के मन इतने खिन्न थे कि कोई किसी से बात नहीं कर रहा था। केवल कला और शोभा, जो अपने माता-पिता से कुछ आगे निकल गई थीं, परस्पर बातचीत करती जा रही थीं। पहिले तो वे कान्ता की सास के उठ कर पागलों की भाँति हाथ ऊँचा कर, उनको गाली देने की नकल उतारती रहीं। पीछे वे कुछ गम्भीर हो विचार करने लगीं। शोभा कह रही थी, "यह क्या हो गया था मौसी जी को?"

कला ने गम्भीर हो कहा, "मेरा विचार है कि इस औरत का दिमाग खराब हो गया है।"

"मीना भाभी का मुख देखा था तुमने?" वे मीनाक्षि को इस प्रकार सम्बोधित करने लगी थीं। "उसकी बातें सुनकर पहिले उसका मुख क्रोध से लाल हो गया था, पीछे वह पीला पड़ गया था।"

"मौसी की बातों पर उसको भारी शोक हुआ प्रतीत होता है। मौसी ने उसकी बहिन को दुराचारिणी कहा था। इसका वह उत्तर देना चाहती थी, परन्तु पिताजी की उपस्थिति में वह कुछ कह नहीं सकी।"

"आज आश्रम में चल कर हँसी की बातों से भाभी मीना को प्रसन्न कर देंगे। वे भूल जायँगी कि कान्ता की सास जैसा कोई प्राणी भी ससार मे है।"

आश्रम में दो कमरे उन्होंने ले रखे थे। एक में लड़कियाँ, लक्ष्मी और सुशीला रात को सोती थीं और दूसरे में भगवतस्वरूप। लक्ष्मी इन के साथ घाट पर नहीं गई थी। वह आश्रम मे बैठी गीता पढ़ रही थी। कला अपने कमरे में पहुँच अपना तानपूरा निकाल स्वर करने लगी।

शोभा एक पुस्तक निकाल पढने लगी। कान्ता ने तानपूरा स्वर किया और स्वर भरने लगी। स्वर भीमपलासी राग के थे। मन की व्यथा प्रकट करने में जितना यह राग सफल है, और कोई नहीं। इसके स्वरों में ऐसा जादू भरा है कि इनसे मन के दुःख तथा क्लेश धुल-धुल-कर बाहर निकलते प्रतीत होते हैं।

मीनाक्षि आई तो मन में भारी क्लेश अनुभव कर रही थी। वह बैठी तो उसको भी अनुभव हुआ कि कला का सगीत उसके हृदय पर मर-हम का काम कर रहा है। उसको ऐसा अनुभव हुआ कि माँ उसको थप-कियाँ दे-देकर सात्वना दे रही है।

कला ने गाना आरम्भ कर दिया था। वह गा रही थी :

"स्वर वीणा के बोल रहे यह मधुर-मधुर सगीत।
सुन भवरे मन विकल न हो, है त्याग मे मन की जीत॥
भरा जगत् दुविधाओं से है कठिन इसका गीत।
कटकमय कालियन से ही है प्रेम करन की रीत॥ यह मधुर-मधुर"

पौन घण्टा के लगभग कला गाती रही। तानालाप और फिर बोलतान चलता रहा। इस समय में मीनाक्षि ने यह अनुभव किया कि किसी अतीत काल में कोई दुर्घटना हुई थी, जिसने मन पर घाव उत्पन्न किया था। अब समय व्यतीत होने पर घाव भर गया है। इसका चिह्न-मात्र रह गया है। वह भी इतना धीमा कि घाव होने में सन्देह

होने लगा है।

कला को गाते सुन भगवतस्वरूप और सुशीला भी वहाँ आ बैठे। वे भी अपनी दुखित अवस्था में संगीत का शान्तिमय प्रभाव अनुभव करने लगे थे। भगवतस्वरूप ने देखा कि मीनाक्षि आँखें मूँदे दीवार से ढासना लगा सुन रही है और उसकी मुँदी आँखों में से आँसू अनायास ही गालों पर टपक रहे हैं।

जब गाना समाप्त हुआ और कला ने तानपूरे से हाथ उठाया तो गंगा घाट पर की कलह का बहुत कुछ प्रभाव मिट चुका था। मन उद्गारों के अंधकार से निकल युक्ति करने के लिए तैयार हो गया था।

भगवतस्वरूप ने पूछा, "यह क्या राग था, कला?"

"भीम पिलासी, पिताजी!"

"बहुत ही मधुर है यह। ऐसा प्रतीत हुआ है कि इसके स्वर मन के काले विचारों को लेकर मन से बाहर निकल वायुमण्डल में विलीन हो रहे थे। अब मन बहुत ही हलका और सुखी हो गया प्रतीत होता है।"

मीनाक्षि उठी और बाहर जा, लोटे में से पानी ले मुख धो आई। आकर बैठी तो वह मुस्करा रही थी।

"क्या हुआ है भाभी?" शोभा ने पूछ लिया।

"मुझको कान्ता की अवस्था का अनुमान लगा, उस पर दया आने लगी थी, परन्तु अब समझती हूँ कि यदि केवल कलियों से ही प्रेम करना है, तो प्रेम का महत्त्व ही क्या हुआ? इसमें महानता तो तब ही आती है जब कलियों के साथ काँटे भी प्रेम करने को मिलते हैं।"

भगवतस्वरूप ने इस ही विचार की और अधिक व्याख्या कर दी। उसने कहा, "समाज में सब प्राणी एक समान नहीं होते। इनमें अच्छे-बुरे सब प्रकार के लोग रहते हैं। एक व्यक्ति का कौशल इसी बात में है कि वह इस काँटों से भरे संसार में कलियों का ही स्वाद ले और काँटों से अछूता निकल जावे।"

"पर पिताजी ! हिन्दू समाज में काँटे क्या बहु सख्या में नहीं हैं ?"

"हाँ अनाज के साथ भूसा अधिक पैदा होता है। इस पर भी गेहूँ के पौदे का मूल्य भूसे से नहीं, प्रत्युत गेहूँ के दानों से लगाया जाता है। समाज मे जो दस-बीस महापुरुष होते हैं, वे ही उसके मूल्याकन में गिने जाते है। बुरे लोगो को भूसा मानकर छोड दिया जाता है।"

मीनाक्षि के मन में प्रकाश हो गया। जहाँ तक निज के जीवन का सम्बन्ध था, वह सुलभ गया। वह समझ गई थी कि उसने बुरे लोगो के समीप रहते हुए भी उनसे सम्पर्क नहीं रखना। इस पर भी समाज की श्रेष्ठता के विषय में उसका सन्देह बना ही हुआ था। इसके निवारण के लिए उसने अपने प्रश्न की व्याख्या कर दी। उसने पूछा, "यह तो ठीक है, परन्तु एक साधारण मनुष्य का सम्बन्ध तो समाज के बहु सख्यक जनों से ही पड़ता है। वह बुरे जनों की सगत मे आकर दुःख ही उठाता है। तो क्या लाभ हुआ ऐसे समाज मे रहने का, जिसमें बुरे व्यक्ति अधिक है ?"

"पर ऐसा तो सभी समाजो में है। समाज में रहने के लिए तो उसकी धारणाओं को देखना चाहिए। उदाहरण के रूप मे मैं कहता हूँ कि हिन्दू समाज में कुटुम्ब का सिद्धान्त मान्य है। जो इस पर विश्वास रख इसको अपनाते हैं, वे हिन्दू हैं। इस पर भी हिन्दू कहलाने वाले अनेकों हैं, जो परस्पर लड़ते-झगडते हैं।

"हिन्दू समाज इन लडने-झगड़ने वालों की निन्दा करता है और वसुधैव कुटुम्बकम् मानने वालों की प्रतिष्ठा और मान करता है।

"देखो बेटा मीनाक्षि ! हमारे समाज में हैनरी दि एट्थ, ! नैपोलियन, सिकन्दर और सीजर प्रतिष्ठा के पात्र नहीं हुए। हमारे समाज मे गुरुनानक, कबीर, तुलसी, वाल्मीकि इत्यादि श्रेष्ठजन ही मान, प्रतिष्ठा के पात्र हुए हैं। राम और कृष्ण तो परमात्मा का अवतार ही माने जाते हैं। इन्होंने ससार विजय नहीं किया था। इन्होंने जातियों को पद-

दलित कर उन पर अपना शासन नहीं जमाया था।

"हमारे यहाँ तैमूर और चंगेज खाँ हुए होंगे, परन्तु उनको कोई भी स्मरण नहीं करता। हमारे यहाँ महमूद गजनवी जैसा लुटेरा भी शायद हुआ हो, पर वह वीर बहादुर नहीं माना गया। हमारे यहाँ धर्म-प्रवर्तक राजा लोग नहीं हुए, परन्तु शंकर, दयानन्द जैसे लंगोट-बन्ध साधु सन्त हुए हैं।"

"ईसाइयों में भी तो अनेक साधु-सन्त हुए हैं, जो धर्म-प्रचार के लिए फाँसी पर लटक गये हैं।"

"हाँ और भी उनकी हिन्दू समाज में भारी प्रतिष्ठा है। हिन्दू समाज को मैं मजहब नहीं मानता। ईसा पर ईमान लाने वाले अथवा मुहम्मद को परमात्मा का पैगम्बर मानने वाले को हम बुरा नहीं मानते। हाँ, हम औरंगजेब को अच्छा नहीं मान सकते। इसी प्रकार हिन्दुओं में अपने कंस और दुर्योधन को भी बुरा माना जाता है।"

इसके पश्चात् भगवतस्वरूप का परिवार पन्द्रह दिन तक हरिद्वार में रहा और वे कान्ता की सास और श्वसुर से न मिले और न मिलने का यत्न ही किया। जहाँ वे चलते-फिरते दिखाई दिये, ये मुख मोड़कर निकल गये। यदि वे कहीं बैठे दिखाई दिये तो वे उधर गये ही नहीं। इस कारण ऐसी घटना फिर नहीं घट सकी।

स्वामी शिवानन्द के आश्रम में कला के संगीत ने धूम मचा रखी थी। स्वामीजी को स्वयं संगीत बहुत प्रिय था। कला की स्वर-माधुरी में वे भी आकर्षित हुए बिना नहीं रह सके। एक दिन इन्होंने भगवत-स्वरूप से कह ही दिया, "आश्रम निवासी आपकी लड़की से भजन सुनने की इच्छा करते हैं। बेटी कला से हमारी ओर से निवेदन कर दीजिये।"

इसके पश्चात् आश्रम में प्रार्थना के समय भजन भी होने लगे और

ये तब तक होते रहे जब तक भगवतस्वरूप आदि वहाँ रहे। इन भजनों का परिणाम यह हुआ कि स्वामी शिवानन्द भगवतस्वरूप के परिवार से और भी समीप हो गये। पहले तो वे केवल भक्त मात्र थे। अब वे उपासक हो गये। प्रार्थना से पूर्व और पश्चात् स्वामीजी इनको विशेष सीख देने लगे और भगवतस्वरूप और उसके परिवार के लोग स्वामीजी से विशेष प्रश्न पूछने लगे। मीनाक्षि इन प्रश्न पूछने वालों में सबसे आगे थी। वह नई-नई हिन्दू समाज में आई थी, इस कारण उसके समझने के लिए बहुत कुछ था और वह समझने के प्रत्येक अवसर से लाभ उठाती रहती थी। उसके प्रश्नों से स्वामीजी को पता चल गया था कि वह ईसाई माता-पिता की लड़की है। पहले तो स्वामीजी को उसका वहाँ होना एक विचित्र बात प्रतीत हुई। हिन्दू समाज में किसी दूसरे समाज के व्यक्ति बहुत कम आते हैं और फिर ऐसे व्यक्ति तो और भी कम हैं, जो हिन्दू समाज को इस प्रकार समझते थे, जैसा मीनाक्षि ने समझा था। इस कारण जब स्वामीजी को मीनाक्षि ने बताया, "मेरे माता-पिता ईसाई हैं," तो एक क्षण के लिए वे विस्मय में चुप कर गये। पश्चात् कुछ विचार कर बोले, "इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। यह ठीक है कि हिन्दू समाज में भी ऐसे अभिमानी उपस्थित हैं, जो दूसरों से घृणा करते हैं। परन्तु उनकी घृणा अथवा प्रीति से कोई यहाँ आता अथवा जाता नहीं। यह तो समाज की धारणाओं के कारण ही होना चाहिए। हिन्दू कोई मजहब नहीं है बेटी! यह समाज है, जो किसी की भी उन्नति में सहायक हो सकता है।"

"मैं तो यह जानना चाहती हूँ कि आप मेरे हिन्दू समाज में आने को ठीक समझते हैं अथवा नहीं?"

"देखो बेटी! इस समाज में तुम्हारे आने का प्रयोजन क्या है, उसीसे तुमको पता चलेगा कि तुमने अच्छा किया है या बुरा। यदि किसी को ठगने के लिए यहाँ आई हो, तब तो मैं इसको अच्छी बात नहीं कह सकता।"

"ठगना तो नहीं कह सकती। इस पर भी स्वार्थ और मोह तो है ही। मैं इनके लड़के से प्रेम करती थी। उन्होंने कहा था कि वे विवाह कर लेंगे, यदि मैं उनके समाज में प्रविष्ट हो सकूँ। मैंने उनसे पूछा था कि हिन्दू समाज में प्रविष्ट होने के लिए मुझको क्या करना होगा। तब उन्होंने बताया कि जिस प्रकार हिन्दू रहते हैं, वैसे ही रहना होगा। मैंने सीखने का यत्न किया कि हिन्दू किस प्रकार रहते हैं। जब मैं वैसा रहना सीख गई और वैसे ही रहने लगी, तब उनसे विवाह हो गया।"

"प्रेम स्वार्थ और मोह नहीं होता। यह त्याग और तपस्या का दूसरा नाम है। इस पर भी मेरा प्रश्न यह है कि तुम हिन्दुओं की भाँति रहना अच्छा समझती हो या नहीं? यदि अच्छा समझती हो तब तो ठीक ही कर रही हो।"

इस प्रश्न से मीनाक्षि गम्भीर हो गई। उसके मन में चल रहे द्वन्द को प्रकट होने का अवसर मिल गया। उसने कहा, "महाराज! यदि मैं अपनी ससुराल के रहन-सहन को हिन्दू समाज का रहन-सहन मानूँ, तब तो यह श्रेष्ठ ही है। मुझको यह रहन-सहन भला प्रतीत हो रहा है; परन्तु कभी-कभी परिवार से बाहर झाँककर देखती हूँ तो हिन्दू समाज का एक दूसरा रूप दिखाई देता है और उसको देख मेरा हृदय भय से काँप उठता है।"

"पर तुम तो भगवतस्वरूप जी के समाज में सम्मिलित हुई हो न? तुमको दूसरों से क्या मतलब हो सकता है? वे लोग न तो तुमको कुछ दे सकते हैं और न ही तुमसे कुछ पाने के अधिकारी हैं।"

"पर स्वामी जी! मैं तो हिन्दू समाज की बात कह रही हूँ। जहाँ तक इस अपने परिवार की बात है, मैं अति सुखी और प्रसन्न हूँ। परिवार से उतर कर हमारा सम्बन्ध अपने समाज से भी तो है।"

"ठीक है। परन्तु भले लोगों के समाज में भले लोग ही तो हो सकते हैं। कबीर जी ने कहा है, 'कबीरा तेरी झोंपडी गल कटयों के

पास। जो करनगे सो भरनगे तुम क्यो भये उदास।'

"आज संसार में समाज का कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे को कुछ भी करने के लिए बलपूर्वक विवश नहीं कर सकता। जो हिन्दू समाज में तुमको श्रेष्ठ प्रतीत होता है, तुम उस पर आचरण करो। इसमें ही तुम्हारा कल्याण है।"

मीनाक्षि का संशय निवारण हुआ अथवा नहीं, कहना कठिन है। हाँ इस वार्तालाप ने उसको एक नवीन दिशा में विचार करने के लिए लगा दिया। वह विचार करने लगी कि क्या वह हिन्दू समाज में रहती हुई भी कोई ऐसा व्यवहार अपना सकती है, जो बहु संख्यक हिन्दुओं को स्वीकार न हो? वह यह भी विचार करती थी कि क्या वह ऐसा करती हुई हिन्दू रह सकती है?

एक अन्य दिन उसने स्वामी जी से पूछ लिया, "महाराज! एक हिन्दू क्या है और उसको कैसे रहना चाहिए?"

स्वामी शिवानन्द मीनाक्षि के मन में उठ रहे संशयों का अनुमान लगा रहा था। उनको शान्त करने के लिए उसने कह दिया, "मनुष्य समाज में अनेक स्तर के लोग हैं। मैं आर्थिक दृष्टि से नहीं कह रहा। मेरा अभिप्राय आत्मिक तथा मानसिक स्तर से है। हिन्दू समाज उन सबको स्वीकार करता है। यह स्वतन्त्रता हिन्दू समाज की विशेषता है। हम मनुष्य-समाज के उस विभाग को हिन्दू कहते हैं, जो व्यक्ति को अपने ध्येय-साधन में पूर्ण स्वतन्त्रता देता है। प्रतिबन्ध है केवल उस व्यवहार में, जिसका सम्बन्ध दूसरों के साथ होना होता है। ऐसे व्यवहार पर स्मृति का अनुशासन रखा गया है।"

"स्मृति क्या है?"

"समय-समय पर बने राज्य-नियम को स्मृति कहते हैं। इस पर भी, हिन्दू समाज की मूल बात को राज्य उससे छीन नहीं सकता।"

"हिन्दू समाज की मूल बात क्या है?"

"विचार की स्वतन्त्रता और व्यवहार पर स्मृति का नियन्त्रण।"

"पर महाराज ! क्या विचार की स्वतन्त्रता स्मृतिकार छीन सकते हैं ?"

"नहीं, व्यक्ति की स्वतन्त्रता और राज्य के अधिकारों की सीमा पृथक्-पृथक् क्षेत्रों में हैं।

"व्यक्तिगत स्वतन्त्रता है विचारों की। राज्य का सम्बन्ध न विचारों से है और न होना चाहिए। राज्य केवल उस कार्य पर नियन्त्रण रखता है जिसमें एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से सम्बन्ध बनता है। एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जावेगी। तुम पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानो चाहे न मानो। राज्य को इसमें हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह एक विचार की बात है। परन्तु जब तुम पुनर्जन्म की बात को न मानकर, इस जन्म में कोई अत्याचार अथवा कोई पाप करने लगती हो, तब तुम राज्याधिकार की सीमा में प्रवेश करती हो।

"एक और उदाहरण दे दूँ तो तुमको समझने में सुविधा होगी। मान लो एक आदमी विधवा-विवाह को बुरा मानता है, तो वह माने। अथवा कोई विधवा अपना दूसरा विवाह न करना चाहे तो न करे। राज्य इसमें हस्तक्षेप नहीं कर सकता। परन्तु जब कोई किसी विधवा को अपना दूसरा विवाह करने में बाधा डाले तो वह राज्याधिकार की सीमा उल्लंघन करता है। यह हिन्दू विचारधारा है।"

"मान लीजिए कि मैं ईसाई कन्या हूँ और मेरी सन्तान का विवाह हिन्दू समाज में इस कारण से ही नहीं होता, तो मैं इस विषय में क्या समझूँ ?"

"हमारे समाज में प्रत्येक व्यक्ति को विवाह कहाँ करे और कहाँ न करे, इस बात की पूर्ण स्वतन्त्रता है। कोई ईसाई कन्या से विवाह न करना चाहे तो उसको विवाह करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इसके विपरीत कोई ऐसा विवाह कर ले तो उसको भी रोका नहीं जा सकता। बाधा यदि है तो इस बात की है कि हिन्दू समाज के रहन-सहन में भेद न पड़े।"

"यदि मैं मा मरियम की पूजा करती हूँ तो क्या आप इसको भी सामाजिक रहन-सहन की परिधि मे मानते है ?"

"नहीं। तुम दुर्गा भवानी की पूजा करो चाहे मा मरियम की। यह तुम्हारी निज की बात है। इसमें तुमको पूर्ण स्वतन्त्रता है। परन्तु तुम लोग गोमास खाते हो। यह हिन्दू समाज के रहन सहन की बात है। ऐसा करती हुई तुम हिन्दू नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार अन्य बाते समझ लेनी चाहिएँ।"

"प्रश्न तो यह है कि हिन्दू लोग ईसाई और मुसलमान से भेद-भाव क्यो रखते हैं ?"

"इसमे कारण है। मुसलमान और ईसाई हिन्दुओ की मूलभूत बात को स्वीकार नही करते। मैने बताया है न कि हमारी मूल बात है विचार स्वतन्त्रता। मुसलमान और ईसाई यह हमको नही देते। इन लोगो का कहना है कि मुहम्मद अथवा ईसा पर इमान लाओ। यह ईमान की बात तो विचार के साथ सम्बन्ध रखती है। इसमे हम स्वतन्त्रता चाहते है। ऐसी स्वतन्त्रता हमको हिन्दू समाज मे ही मिल सकती है। एक आदमी भैरव को अपना इष्टदेव माने अथवा अम्बा भवानी को, हम मना नही करते। यह स्वतन्त्रता न तो मुसलमान देते है, न ईसाई। इमी प्रकार किसी का इष्टदेव राम है अथवा कृष्ण हमारे यहाँ विवाद का विषय नही है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता अन्य समाजो मे नहीं है।"

मीनाक्षि को स्मरण आ गया कि नलिनी के विवाह के समय इस प्रश्न पर उसके माता-पिता के परिवार मे विचार किया गया था और सबने ही यह कहा था कि नलिनी का विवाह गिरजाघर मे होगा।

इस प्रकार मीनाक्षि के मन मे उठ रहे सशय मिट रहे थे। स्वामी शिवानन्द का कहना था कि प्रेम स्वार्थ और मोह नहीं। यह त्याग और तपस्या है। यह व्याख्या प्रेम की वह कान्ता के मुख से सुन चुकी थी। उसके जीवन मे इसका साक्षात् भी वह कर चुकी थी।

भगवतस्वरूप के हरिद्वार से लौटने के पूर्व स्वामी शिवानन्द ने उसके परिवार के सदस्यों को गंगा प्रसाद दिया। यह आश्रम की ओर से वहाँ ठहरने वाले सब यात्रियों को मिला करता था। यह प्रसाद पा सब स्वामीजी को नमस्कार करने गए तो उन्होंने कला और मीनाक्षि को सम्बोधन कर कहा, "देखो बेटा! यह गंगा प्रसाद तो एक संकेत मात्र है। यहाँ का वास्तविक प्रसाद तो हमारी प्राचीन सभ्यता की शिक्षा है, जो इस सहस्रों वर्षों, क्या जाने लाखों वर्षों के पुराने तीर्थ-स्थान से यहाँ आने वालों को मिलती रहती है। वह प्रसाद है हमारा आस्तिकवाद। हम मानते हैं कि हमारे शरीर का अधिष्ठाता एक आत्मा इस शरीर से पृथक् हम में विराजमान है। वह शरीर के साथ मरता नहीं। वह जन्म-जन्मान्तर तक विद्यमान रहता है और अपने कर्मों के फल का भोक्ता है।

"हिन्दू समाज इस सिद्धान्त को मानता है और प्रत्येक हिन्दू अपने प्रत्येक कार्य का, इसी आधारभूत सिद्धान्त के प्रकाश में निर्णय करता है। कभी कोई व्यक्ति इस सिद्धान्त को मानता हुआ भी ऐसा मार्ग ढूँढ लेता है, जो इस सिद्धान्त के अनुकूल प्रतीत नहीं होता, परन्तु इससे सिद्धान्त रद्द हो गया माना नहीं जाता। तुम भी यदि जीवन के प्रत्येक कार्य में इस सिद्धान्त का आश्रय लेकर चलोगी, तो कभी भी पथ-भ्रष्ट नहीं होगी।"

मीनाक्षि के जीवन में यह हरिद्वार का भ्रमण भारी महत्त्व का सिद्ध हुआ। वह अपने से विरुद्ध मत वालों से अब द्वेष नहीं करती थी। जब कोई ऐसी भूल करता था, जिसका परिणाम हानिकर प्रतीत होता तो वह उसके साथ दया और सहानुभूति दिखाती। अपनी बहिन नलिनी के निम्न कोटि के व्यवहार को स्मरण करती हुई भी वह उससे द्वेष छोड़ बैठी थी।

"यदि मैं मा मरियम की पूजा करती हूँ तो क्या आप इसको भी सामाजिक रहन-सहन की परिधि में मानते हैं ?"

"नहीं। तुम दुर्गा भवानी की पूजा करो चाहे मा मरियम की। यह तुम्हारी निज की बात है। इसमें तुमको पूर्ण स्वतन्त्रता है। परन्तु तुम लोग गोमास खाते हो। यह हिन्दू समाज के रहन सहन की बात है। ऐसा करती हुई तुम हिन्दू नहीं रह सकतीं। इसी प्रकार अन्य बातें समझ लेनी चाहिएँ।"

"प्रश्न तो यह है कि हिन्दू लोग ईसाई और मुसलमान से भेद-भाव क्यों रखते हैं ?"

"इसमें कारण है। मुसलमान और ईसाई हिन्दुओं की मूलभूत बात को स्वीकार नहीं करते। मैंने बताया है न कि हमारी मूल बात है विचार स्वतन्त्रता। मुसलमान और ईसाई यह हमको नहीं देते। इन लोगों का कहना है कि मुहम्मद अथवा ईसा पर इमान लाओ। यह ईमान की बात तो विचार के साथ सम्बन्ध रखती है। इसमें हम स्वतन्त्रता चाहते हैं। ऐसी स्वतन्त्रता हमको हिन्दू समाज में ही मिल सकती है। एक आदमी भैरव को अपना इष्टदेव माने अथवा अम्ब भवानी को, हम मना नहीं करते। यह स्वतन्त्रता न तो मुसलमान दे हैं, न ईसाई। इसी प्रकार किसी का इष्टदेव राम है अथवा कृष्ण हमा यहाँ विवाद का विषय नहीं है। इस प्रकार की स्वतन्त्रता अन्य समाज में नहीं है।"

मीनाक्षि को स्मरण आ गया कि नलिनी के विवाह के समय इ प्रश्न पर उसके माता-पिता के परिवार में विचार किया गया था औ सबने ही यह कहा था कि नलिनी का विवाह गिरजाघर में होगा।

इस प्रकार मीनाक्षि के मन में उठ रहे सशय मिट रहे थे। स्वा शिवानन्द का कहना था कि प्रेम स्वार्थ और मोह नहीं। यह त्या और तपस्या है। यह व्याख्या प्रेम की वह कान्ता के मुख से सुन चु थी। उसके जीवन में इसका साक्षात् भी वह कर चुकी थी।

भगवतस्वरूप के हरिद्वार से लौटने के पूर्व स्वामी शिवानन्द ने उसके परिवार के सदस्यों को गंगा प्रसाद दिया। यह आश्रम की ओर से वहाँ ठहरने वाले सब यात्रियों को मिला करता था। यह प्रसाद पा सब स्वामीजी को नमस्कार करने गए तो उन्होंने कला और मीनाक्षि को सम्बोधन कर कहा, "देखो बेटा! यह गंगा प्रसाद तो एक संकेत मात्र है। यहाँ का वास्तविक प्रसाद तो हमारी प्राचीन सभ्यता की शिक्षा है, जो इस सहस्रों वर्षों, क्या जाने लाखों वर्षों के पुराने तीर्थ-स्थान से यहाँ आने वालों को मिलती रहती है। वह प्रसाद है हमारा आस्तिकवाद। हम मानते हैं कि हमारे शरीर का अधिष्ठाता एक आत्मा इस शरीर से पृथक् हम में विराजमान है। वह शरीर के साथ मरता नहीं। वह जन्म-जन्मान्तर तक विद्यमान रहता है और अपने कर्मों के फल का भोक्ता है।

"हिन्दू समाज इस सिद्धान्त को मानता है और प्रत्येक हिन्दू अपने प्रत्येक कार्य का, इसी आधारभूत सिद्धान्त के प्रकाश में निर्णय करता है। कभी कोई व्यक्ति इस सिद्धान्त को मानता हुआ भी ऐसा मार्ग ढूँढ लेता है, जो इस सिद्धान्त के अनुकूल प्रतीत नहीं होता, परन्तु इससे सिद्धान्त रद्द हो गया माना नहीं जाता। तुम भी यदि जीवन के प्रत्येक कार्य में इस सिद्धान्त का आश्रय लेकर चलोगी, तो कभी भी पथ-भ्रष्ट नहीं होगी।"

मीनाक्षि के जीवन में यह हरिद्वार का भ्रमण भारी महत्व का सिद्ध हुआ। वह अपने से विरुद्ध मत वालों से अब द्वेष नहीं करती थी। जब कोई ऐसी भूल करता था, जिसका परिणाम हानिकर प्रतीत होता तो वह उसके साथ दया और सहानुभूति दिखाती। अपनी बहिन नलिनी के निम्न कोटि के व्यवहार को स्मरण करती हुई भी वह उससे द्वेष छोड़ बैठी थी।

इस भ्रमण में वह लक्ष्मी की विशेष रूप में संगत में रही और उससे उसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ गई।

जब ये लोग वापिस लाहौर पहुँचे, तब भूषण मीनाक्षि को अपने साथ अहमदाबाद ले जाने के लिए आया। मीनाक्षि जाने के लिए तैयार थी। वह कान्ता से मिलने के लिए गई और फिर विनोद और नलिनी से मिलने का आग्रह करने लगी। विनोद कान्ता की सगाई के समय आया था और उस समय पिताजी से उसकी भेंट के अस्वीकार किये जाने पर रूठ गया था। नलिनी का व्यवहार मीनाक्षि के साथ भी कुछ शोभनीय नहीं था। इस पर भी मीनाक्षि के मन में उसके लिए किसी प्रकार का मैल नहीं रहा था।

विनोद राज्य में एक उच्चाधिकारी था। वह प्रत्यक्ष रूप में धनी था और उसको प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त प्रतीत होती थी। वास्तव में वह सुखी नहीं था। विवाह होते ही उसको बढ़े हुए खर्चे के लिए चिन्ता ने आघेरा। जब वह पंजाब सरकार का सचिव बन गया तो उसने देखा कि वेतन-वृद्धि के साथ-साथ उसका खर्चा भी बढ़ गया है। इस समय सरकार के चीफ सैक्रेटरी ने उसको अतिरिक्त आय करने का उपाय बता दिया। इससे कुछ देर तक काम चला। उसने लाखों पैदा किये। परन्तु मैनन की जाँच हो जाने के कारण उसकी इस प्रकार की आय समाप्त हो गई। मैनन से तो मीनाक्षि ने उसको बचा दिया परन्तु वह काम उससे ले लिया गया और उसको ऐसा काम मिला, जिससे आय के लिए स्थान नहीं रहा। मैनन की जाँच का एक परिणाम यह हुआ कि नलिनी को पता चल गया कि उसके पति के पास लाखों कहीं छिपाकर रखे हुए हैं। इससे उसके मन मे यह विचार उत्पन्न हो गया कि यह सब धन विनोद ने किसी अन्य स्त्री के साथ भोग करने के लिए छिपा रखा है। इस विचार को उसने विनोद से कहा तो विनोद ने इसका उत्तर दे दिया कि वह कहाँ की पाक-साफ है। इस पर नलिनी भड़क उठी और उसने क्रोध में पूछा, "मैंने क्या

किया है ?"

"तुमने मिस्टर स्टोपस से सहवास किया है।"

"उस बूढ़े खूसट से मेरा क्या सम्बन्ध हो सकता है ! वह मेरे पिता की आयु का है।"

"इस पर भी मैं जो कहता हूँ ठीक है। मेरे पास इसका प्रमाण है"

"कुछ भी हो मिस्टर स्टोपस ने आपका भारी उपकार किया है। आपको कृतघ्न नहीं बनना चाहिए।"

इस बात ने विनोद का मुख बन्द कर दिया परन्तु नलिनी ने अपनी जीत का लाभ उठाने के लिए अपना कहना जारी रखा। उसने कहा, "मैंने जो-कुछ भी भला अथवा बुरा किया है आपकी भलाई के लिए किया है, पर मैं पूछती हूँ कि तुमने जो लाखों व्यर्थ खर्च किये हैं किसकी भलाई के लिए किये हैं ?"

"मैंने जो-कुछ किया है अपने परिवार की भलाई के लिए किया है।"

"क्या भलाई होगी इससे ! किसी दूसरी औरत पर सब रुपया खर्च कर दिया है।"

"देखो नलिनी मैंने एक पाई भी व्यर्थ खर्च नहीं की। सब धन जो आज तक एकत्रित कर सका हूँ, बैंकों के लाकर्स में रखा हुआ है। मैं इस कारण उसको नहीं निकालता कि कहीं किसी को पता चल गया तो जाँच हो जावेगी और फिर यह रेत का घर ढह जावेगा।" इस पर नलिनी बहुत ही प्रेममय हो गई और पूछने लगी कि किस बैंक में रखा है।

विवश विनोद को बताना पड़ा और 'लाकर्स' की चाबी नलिनी को देनी पड़ी। अब समय-समय पर नलिनी उस कोष में से निकालने लगी।

इससे विनोद मन-ही-मन कुढ़ने लगा। अब ऊपर से आय का

इस भ्रमण में वह लक्ष्मी की विशेष रूप में सगत में रही और उससे उसकी घनिष्ठता बहुत बढ़ गई।

जब ये लोग वापिस लाहौर पहुँचे, तब भूषण मीनाक्षि को अपने साथ अहमदाबाद ले जाने के लिए आया। मीनाक्षि जाने के लिए तैयार थी। वह कान्ता से मिलने के लिए गई और फिर विनोद और नलिनी से मिलने का आग्रह करने लगी। विनोद कान्ता की सगाई के समय आया था और उस समय पिताजी से उसकी भेंट के अस्वीकार किये जाने पर रूठ गया था। नलिनी का व्यवहार मीनाक्षि के साथ भी कुछ शोभनीय नहीं था। इस पर भी मीनाक्षि के मन में उसके लिए किसी प्रकार का मैल नहीं रहा था।

विनोद राज्य में एक उच्चाधिकारी था। वह प्रत्यक्ष रूप में धनी था और उसको प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा प्राप्त प्रतीत होती थी। वास्तव में वह सुखी नहीं था। विवाह होते ही उसको बढ़े हुए खर्चे के लिए चिन्ता ने आघेरा। जब वह पजाब सरकार का सचिव बन गया तो उसने देखा कि वेतन वृद्धि के साथ-साथ उसका खर्चा भी बढ़ गया है। इस समय सरकार के चीफ सैक्रेटरी ने उसको अतिरिक्त आय करने का उपाय बता दिया। इससे कुछ देर तक काम चला। उसने लाखों पैदा किये। परन्तु मैनन की जाँच हो जाने के कारण उसकी इस प्रकार की आय समाप्त हो गई। मैनन से तो मीनाक्षि ने उसको बचा दिया परन्तु वह काम उससे ले लिया गया और उसको ऐसा काम मिला, जिससे आय के लिए स्थान नहीं रहा। मैनन की जाँच का एक परिणाम यह हुआ कि नलिनी को पता चल गया कि उसके पति के पास लाखों कहीं छिपाकर रखे हुए हैं। इससे उसके मन में यह विचार उत्पन्न हो गया कि यह सब धन विनोद ने किसी अन्य स्त्री के साथ भोग करने के लिए छिपा रखा है। इस विचार को उसने विनोद से कहा तो विनोद ने इसका उत्तर दे दिया कि वह कहाँ की पाक-साफ है। इस पर नलिनी भड़क उठी और उसने क्रोध में पूछा, "मैंने क्या

किया है ?"

"तुमने मिस्टर स्टोपस से सहवास किया है।"

"उस बूढे खूसट से मेरा क्या सम्बन्ध हो सकता है ? वह मेरे पिता की आयु का है।"

"इस पर भी मैं जो कहता हूँ ठीक है। मेरे पास इसका प्रमाण है"

"कुछ भी हो मिस्टर स्टोपस ने आपका भारी उपकार किया है। आपको कृतघ्न नहीं बनना चाहिए।"

इस बात ने विनोद का मुख बन्द कर दिया परन्तु नलिनी ने अपनी जीत का लाभ उठाने के लिए अपना कहना जारी रखा। उसने कहा, "मैंने जो-कुछ भी भला अथवा बुरा किया है आपकी भलाई के लिए किया है, पर मैं पूछती हूँ कि तुमने जो लाखों व्यर्थ खर्च किये हैं किसकी भलाई के लिए किये है ?"

"मैंने जो-कुछ किया है अपने परिवार की भलाई के लिए किया है।"

"क्या भलाई होगी इससे ? किसी दूसरी औरत पर सब रुपया खर्च कर दिया है।"

"देखो नलिनी मैंने एक पाई भी व्यर्थ खर्च नहीं की। सब धन जो आज तक एकत्रित कर सका हूँ, बैंकों के लाकर्स में रखा हुआ है। मैं इस कारण उसको नहीं निकालता कि कहीं किसी को पता चल गया तो जॉच हो जावेगी और फिर यह रेत का घर ढह जावेगा।" इस पर नलिनी बहुत ही प्रेममय हो गई और पूछने लगी कि किस बैंक में रखा है।

विवश विनोद को बताना पड़ा और 'लाकर्स' की चाबी नलिनी को देनी पड़ी। अब समय-समय पर नलिनी उस कोष में से निकालने लगी।

इससे विनोद मन-ही-मन कुढ़ने लगा। अब ऊपर से आय का

अवसर नहीं रहा था। इससे विनोद के मन में घृणा उत्पन्न होने लगी। वे एक ही छत्त के नीचे रहते हुए भी पृथक्-पृथक् रहने लगे। विनोद का जीवन नीरस बनने लगा तो वह अधिक और अधिक समय क्लब मे व्यतीत करने लगा। क्लब मे समय व्यतीत करने के लिए वह मद्यपान करने लगा और जूआ खेलने लगा।

विनोद के इस व्यवहार पर नलिनी अपने मित्रो मे अधिक समय व्यतीत करने लगी।

इस समय भूषण आया और अपने सम्बन्धियो से मिलने के लिए घूमने लगा। मीनाक्षि ने कहा, "नलिनी बहिन और जीजाजी से मिलने के लिए जी करता है।"

भूषण का कहना था, "जी करता है तो मिलने चलना चाहिए। इस पर भी पिताजी से राय कर ली जाय तो ठीक रहेगा।"

"तो आप समझते है कि वे हमको मना करेंगे क्या ?"

"आशा तो नही। इस पर भी भैया से सम्बन्ध हमारे व्यक्तिगत क्षेत्र से निकलकर, परिवार का विषय बन गया है और परिवार के मुख्य आदमी की राय जान लेनी ठीक ही होगी।"

अगले दिन भूषण ने पिताजी से कहा, "पिताजी, मीनाक्षि भैया और भाभी से मिलने जाना चाहती है।"

"और तुम्हारा जी क्या करता है ?"

"जी तो करता है, परन्तु आपकी अनुमति भी तो चाहिए। विनोद ने आपका कहा न मान आपका अपमान किया था।"

"देखो भूषण! मेरा उसमे अपमान नही हुआ। मैंने एक विचार उसके सामने रखा था। वह उसको पसन्द नही आया। वह अपने कर्मो को करने और उनका फल भोगने मे स्वतन्त्र है और मै अपने। इसी प्रकार तुम स्वय अपने कर्मो के उत्तरदायी हो। मेरा अपमान न तब हुआ था, न अब तुम्हारे उससे मिलने जाने से होगा।"

इस पर भूषण का विनोद से मिलने जाने का प्रोग्राम निश्चय हो

गया। उसी सायंकाल वह और मीनाक्षि उसकी कोठी में जा पहुँचे। मीनाक्षि एक हिन्दू नवविवाहिता की भाँति जरीदार वस्त्र और बहुत से भूषण पहने थी। नलिनी उसको इस प्रकार लदी-फदी देख खिल-खिला-कर हँस पड़ी।

विनोद अभी दफ्तर से नहीं आया था। नलिनी भूषण और मीनाक्षि को ड्राइंग रूम में ले गई और उनको बैठाकर पूछने लगी, "कैसे इधर का मार्ग भूल गये हो?" बहुत क्रूर हो तुम लोग जो तुम्हारा मिलने को भी जी नहीं चाहता।"

"भाभी! यह बात तुम तब कहतीं जब तुम मिलने आतीं। इस पर भी हम तुमको क्रूर तो नहीं कहते।"

"हम आते, यदि तुम्हारे पिता का व्यवहार शुद्ध होता।"

"इस पर भी उनकी अनुमति से ही तो हम मिलने आये हैं।"

"क्या हुआ है, जो उनकी अनुमति मिल गई है?"

"मेरी अहमदाबाद में नौकरी लग गई है। अब मैं मीनाक्षि को वहाँ ले जा रहा हूँ। जाने से पूर्व हम अपने सब सम्बन्धियों से मिल रहे थे तो विचार आया कि आप से भी मिलना चाहिए। पिताजी ने हमारे विचार का समर्थन किया और हम चले आये।"

"किस काम पर नौकरी लगी है?"

"मैं बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे में प्लैनिंग इंजीनियर लग गया हूँ। हैड क्वार्टर अहमदाबाद में है।"

"क्या वेतन मिलता है?"

"पाँच सौ पचास रुपया मासिक और मकान इत्यादि का भत्ता। फर्स्ट क्लास पास और भत्ता।"

"यदि तुम लोग हमारी भाँति विवाह करते तो बहुत तरक्की की आशा की जा सकती थी।"

"यही बात तो हम पसन्द नहीं करते। मैं तरक्की अपनी योग्यता के आधार पर चाहता हूँ।"

"भूषण ! तुम अभी बच्चे हो और संसार की बातों को नहीं जानते । एक दिन मिस्टर स्टोपस ने मुझको बताया था कि सरकार हिन्दुस्तानी क्रिश्चियनों को अपनी थर्ड डिफैन्स लाइन समझती है ।"

भूषण को भी वह वार्तालाप, जो उसने बाल वाली रात अन्धेरे कमरे में नलिनी और मिस्टर स्टोपस में सुनी थी, स्मरण थी । इसके स्मरण आने से उसको अपने भाई की उन्नति पर लज्जा लगने लगी थी । वह चुप कर रहा । मीनाक्षि समझ गई कि यह वार्तालाप उसके पति को रुचिकर नहीं है । इस कारण उसने बात बदल दी और पूछ लिया, "जीजाजी कब तक आवेंगे ?"

"क्यों जल्दी किस बात की है ? अभी तो आई ही हो । चाय पानी तो पियोगे ही ? अब तो तुम मेरी देवरानी भी हो गई हो ।"

"मैं जल्दी के लिए नहीं कह रही । हम रात को भोजन के समय तक ठहरने का विचार करके आये हैं ।"

"तब तो तुम लोगों के लिए विशेष भोजन का प्रबन्ध करना होगा । नई बहू का सम्मान तो होना ही चाहिए ।"

"यह तो तब ठीक होता जब जीजाजी हमको बुलाते ।"

"पर जीजाजी को तुम्हारे विवाह का निमन्त्रण तो आया नहीं था ।"

"भाई-बहिन निमन्त्रणों की प्रतीक्षा किया करते हैं क्या ?"

बैरा चाय लाया तो नलिनी चाय बनाने लग गई । इसी समय विनोद आफिस से आ गया । वह ड्राइंग रूम में इनको बैठा देख एक क्षण के लिए विस्मय में खड़ा रह गया । मीनाक्षि इतने भूषण पहिने थी कि उसको पहिचानने में उसे समय लग गया । पहिचानकर उसने हंसी में पूछा, "तुम मीनाक्षि हो क्या ?"

मीनाक्षि ने उठकर चरण-स्पर्श करने का यत्न किया । विनोद दो पग पीछे हटकर कहने लगा, "यह क्या हो गया है तुमको ?"

"अपने ज्येष्ठ जी के चरण स्पर्श कर रही हूँ ।" मीनाक्षि ने कहा

और पुनः सोफा पर बैठ गई।

"तुम मेरी हंसी कर रही हो या लोग तुमको मूर्ख बना रहे है ?"

"दोनों में से एक भी बात नहीं। भैया! दूसरों से आप में विशेषता प्रकट करने के लिए मीनाक्षि विशेष ढग से आपको प्रणाम करना चाहती थी।"

"सुना है कि तुम लोग हरिद्वार गए थे ?"

"हाँ। वहाँ स्वामी शिवानन्द के आश्रम मे ठहरे थे और उनके उपदेश सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।"

"यह पाव लागू उन्होंने ही सिखाया प्रतीत होता है।"

"नहीं, यह तो कान्ता बहिन से सीखा है। वह अपने ससुराल के वृद्धजनों को इसी प्रकार प्रणाम करती हैं।"

"पर मैं तो वृद्ध नहीं हूँ।"

"मेरे लिए तो आप पूज्य ही हैं।" मीनाक्षि ने कहा।

"पूज्य ?" विनोद हंस पड़ा। फिर कहने लगा, "और यह भूषण पहिनने किसने सिखलाये है ?"

"अहमदाबाद जाने से पहले हम सम्बन्धियों से मिलने जा रहे हैं। माताजी की इच्छा थी कि मै भूषण पहिनकर उनके घर जाऊँ। इसी उपक्रम मे हम यहाँ आये हैं।"

"पर तुमको यह सब बोझा प्रतीत नहीं होता क्या ?"

"जिन-जिनके यहाँ हम गये हैं सबको भले लगे हैं। सब, यह देख-कर कि आप की माताजी अपनी बहू को इतने भूषण पहिना सकती हैं, आपके परिवार की श्रेष्ठता और समृद्धता को मानते हैं।"

"तो यह स्वाग बनकर जाना भी पारिवारिक कृत्यों में से है ?"

"सब ऐसा ही करते है। आप अपनी शक्ति से बढ़ कर भोज और नाचों का कार्यक्रम क्यों करते है ? अपनी समृद्धता और बड़प्पन को प्रकट करने के लिये ही तो है न ?"

नलिनी ने बात बदल दी, "भूषण रेलवे मे 'प्लानिंग आफिसर'

के पद पर नियुक्त हुआ है।"

"तब तो पौ बारह हैं।" विनोद ने कहा।

भूषण इस पौ-बारह का मतलब समझता था और वह मन में यह संकल्प किये हुए था कि वह अनियमित आय नहीं करेगा। इस पर भी उसने विनोद के इस कथन पर कुछ कहना उचित नहीं समझा।

सायंकाल के भोजन तक मीनाक्षि और भूषण वहा ठहरे और पश्चात् उनको मोटर पर चढा नलिनी उनके घर छोड आई।

उस रात मीनाक्षि और भूषण में नौकरी के विषय में बहुत बातें हुईं। भूषण का कहना था, "मैं ऐसे काम पर नियुक्त हो गया हूँ कि चाहूँ तो एक-दो वर्ष में दो चार लाख पैदा कर सकता हूँ, परन्तु मेरा दृढ सकल्प है कि मैं इस प्रकार की आय नहीं करूँगा। इसका एक परिणाम हो सकता है कि अपने अफसरों को प्रसन्न न कर सकूँ और मेरी नौकरी शीघ्र ही छूट जाये।"

"तो यह आशय था भैया के पौ-बारह कहने का?"

"हा।"

"आप के माता पिता को तो बहुत निराशा होगी?"

"मैंने उनको पूर्ण परिस्थिति से परिचित करा दिया है। जानती हो पिताजी ने क्या कहा है? उन्होंने सब बात सुनकर कहा था, "मैं तुमको कभी नहीं कहूँगा कि तुम एक पाई की भी रिश्वत लो। एक निर्धन की भाँति रहना सीखो और तब तुम इस लोभ से बच सकोगे।"

मीनाक्षि अनेकों प्रकार के विचारों में फस गई। एक ओर वह अपने श्वसुर को धन दौलत से ऐसे खेलते हुए पाती थी, जैसे ये मिट्टी के ढेले हैं। यह बहुत अच्छी बात थी, परन्तु इसके साथ ही वह अपनी सब महत्वाकांक्षाओं को मिट्टी में मिल रहा पाती थी।

भूषण ने कहा, "पिताजी ने कहा है कि धन मनुष्य के भोग करने के लिए है, परन्तु मनुष्य धन की दासता के लिए नहीं। जब यह है तो

इसका भोग करो और यदि नहीं है तो सस्ता सरल जीवन व्यतीत करने का ढंग सीखो।"

"अच्छी बात है, जो भगवान् को स्वीकार होगा हो जायेगा। पहिले ही चिन्ता करनी व्यर्थ है।"

"मैंने तुमको बता दिया है, जिससे तुमको पीछे निराश न होना पड़े। वैसे तो मेरे रिश्वत न लेने से मुझको कुछ लाभ नहीं तो हानि भी नहीं होनी चाहिए। इस पर भी मेरे साथी मुझको डरा रहे हैं और क्या जाने उनकी भविष्यवाणी सत्य ही हो जावे।"

मीनाक्षि सब समझती थी और अब समझने लगी थी कि शारीरिक सुख आत्मा के हनन से प्राप्त करने मे लाभ नहीं है। अतएव उसने कहा, "मै अपने लिए आपको कोई अनुचित व्यवहार करने को कभी नहीं कहूँगी। निर्वाह तो लोग बहुत कम आय मे भी कर लेते है। कोई और काम कर लेंगे और फिर भगवान् तो सहायक है ही।"

कान्ता की दो ननद थीं। बडी का नाम रामप्यारी और छोटी का नाम मोहिनी था। रामस्वरूप की दुकान में घाटा आया तो रामप्यारी पन्द्रह वर्ष की थी और स्कूल मे नवमी श्रेणी में पढ़ती थी। मोहिनी की आयु इस समय नौ वर्ष की थी और वह चौथी श्रेणी में पढती थी। कान्ता का एक देवर भी था। उसका नाम कमलेश था और दोनो बहिनों के बीच का होने से सातवीं श्रेणी मे पढ़ता था। सुरेश ने जब नया काम आरम्भ किया तो वह इन तीनो को पढाई का खर्चा नहीं दे सका। इस कारण उसने दोनो बहिनो को स्कूल से उठा लिया और कान्ता को उनको पढाने पर लगा दिया।

रामप्यारी और मोहिनी ने पहिले तो बहुत चूँ-चरां की। वे हठ करती थीं कि वे अवश्य स्कूल में पढ़ेंगी। इस पर कान्ता ने उनको स्पष्ट शब्दों में कह दिया, "यदि तुमने यहाँ पर रहना है तो तुम्हारी

पढाई घर पर हो सकती है। यदि यह बात स्वीकार नहीं तो तुम दोनों भी हरिद्वार अपने माता-पिता के पास चली जाओ।"

"पर भाभी! कमलेश क्यों स्कूल जाता है?"

"वह लडका है। उसने मेहनत मजदूरी करनी है और क्या जाने कहीं नौकरी भी करनी पड जावे।"

"तो हम लडकियों को क्या पढने-लिखने की आवश्यकता नहीं?"

"हमारी परिस्थिति में स्कूल जाकर पढने की आवश्यकता नहीं।"

"क्या मुझको नौकरी की आवश्यकता नहीं पड सकती?" रामप्यारी ने पूछा।

"पड सकती है। इस पर भी हमारा प्रयत्न होगा कि न पड़े और उस प्रयत्न के अनुरूप ही मैं तुमको घर पर पढाऊँगी।"

दोनों लडकिएँ रो पड़ी। दिन भर रोती रहीं। एक पडोसिन ने उनको और भडकाया। उसका कहना था कि य" कगलो की लडकी राजाओं के घर में आई है। यह क्या जाने कि राजाओं के चलन क्या होते हैं। "जाओ रामो!" उसने बडी को कहा, "अपने भैया से कहो। पिता की सब जायदाद समेट कर बैठ गया है और बहिन को स्कूल की फीस तक नहीं दे सकता। मैं भी तुम्हारे भाई से कहूँगी।"

जब सुरेश दुकान बन्द कर घर लौटा तो गली में वही पडोसिन मिली। वह उसकी प्रतीक्षा में बैठी थी। "सुरेश भैया!" उसने पुकार कर उसको ठहरा लिया।

सुरेश ने खड़े होकर पूछा, "हाँ चाची! क्या है?"

"तुम्हारी बहु लडकियों को तग करती है। रामी बेचारी आई थी। घण्टा भर रोती रही। बहुत दया आती है बेचारी पर। राजा की बेटी कगलों के हवाले हो गई है।"

"क्या बात हुई है चाची!"

"वह लडकियों को स्कूल जाने नहीं देती।"

"तो इसमें कौन बुराई की है उसने? देखो चाची! कान्ता लड-

कियों की मास्टरानियों से अधिक पटी है। जब यह घर पर पढाने के लिए है तो फिर स्कूल मे कौन विशेष बात रखी है ?"

"तो सब लोग जो अपने बच्चों को स्कूलों में भेजते हैं, क्या मूर्ख है ?"

"चाची ! उनके दिवाले नहीं पिटे। और फिर उनके घरो मे बहू इतनी पढी-लिखी नहीं है।"

"तो इन लड़की बेचारियों का क्या दोष है ?"

"तो चाची उन लडकियों को तुम अपने घर मे रख लो। तुम भी तो उनकी कुछ लगती हो। मैं उनके स्कूल का खर्चा नहीं दे सकता।"

"सुरेश ! बीबी के इतने गुलाम हो गए हो कि बहिन-भाई का मोह भी जाता रहा है।"

"चाची ! तुम नहीं जानतीं। व्यर्थ की बात से कुछ लाभ नहीं। विचारणीय बात यह है कि मैं रामी मोहनी के स्कूल का खर्चा नहीं दे सकता। इसमें कान्ता की बात कहाँ से आ गई।"

इतना कह सुरेश पडोसिन को छोड चल दिया। घर पर रामो और मोहिनी ने खाना नहीं खाया था। सुरेश जब कपडे उतार भोजन पर बैठा तो कान्ता ने कहा, "रामो और मोहिनी रूठी हुई हैं। वे बिना खाना खाये सो रही हैं।"

"पड़ी रहने दो कान्ता ! मैं सब सुन आया हूँ। गुल्लू की मा ने सब बताया है और मैं भी उसको अपने मन की बात बता आया हूँ। देखो। हमने इस घर को सुधारने की एक योजना बनाई है। इस योजना को ये छोकडियाँ बिगाडना चाहती है। मैं बिगटने नहीं दूँगा। ये अपने हानि लाभ को नहीं समझतीं। वे तो ससार को देखती है। अपने विषय में वे नहीं जानतीं।"

रात-भर रामो और मोहिनी भूखी रहीं। इस भूख ने उनके मस्तिष्क को ठीक कर दिया और अगले दिन वे घर का काम-काज करने लगीं। दो ही दिन मे वे मन लगा कान्ता से पढने लगीं।

इस प्रकार समय व्यतीत होने लगा। दो वर्ष निकल गए। कान्ता का लडका डेढ वर्ष का हो गया था। पर उसने इसका अभी नाम नहीं रखा था। सुरेश और कान्ता के मन में एक ही धुन सवार थी कि चालीस हजार ऋण दो वर्षों में उतार देना है। इसमें उनको पूर्ण सफलता अभी नहीं मिली थी। डेढ वर्ष में दूकान से बीस हजार ही निकाल सके थे और वह लेनदारों में बँट गया था। इस पर भी लेनदार प्रसन्न थे। उनको इतना मिलने की भी आशा नहीं थी।

इस रुपये को एकत्रित करने में सुरेश और कान्ता को बहुत कजूसी और सतर्कता से व्यवहार करना पडता था। कान्ता दिन-भर काम में लगी रहती थी। वह रामो और मोहिनी को भी काम में लगाए रहती थी।

दूसरा वर्ष व्यतीत हुआ तो कर्जा केवल आठ हजार रह गया। इस समय एकाएक रामस्वरूप और सुरेश की मा लाहौर आ पहुँचे।

सुरेश दूकान से आया तो सामने माता-पिता को बैठे आराम करते देख भौचक्का हो खडा रह गया। पिता ने देखा तो पूछा, "सुरेश! वहाँ खड़े-खड़े क्या देख रहे हो?"

"आपको पिताजी! आपने आने की सूचना भी तो नहीं भेजी।"

"भेज देता तो क्या होता? हमने समझा कि अपने घर ही तो आ रहे हैं।"

"किस समय पहुँचे हैं यहाँ?"

"गाडी तो साढे आठ बजे प्रात. ही पहुँच गई थी। हम यहाँ नौ बजे आ गये थे।"

"कोई कष्ट तो नहीं हुआ?"

"नहीं सब ठीक-ठाक है। मैं तो दूकान पर ही आने वाला था, पर कुछ थकावट के कारण और कुछ मुहूर्त आज ठीक नहीं था इस कारण यही सोचा कि कल से दूकान पर आऊँगा।"

"बहुत अच्छी बात है, पिताजी!"

"तुम्हारा कभी हमको मिलने आने को चित्त नहीं किया ?" मा ने पूछा।

"चित्त तो बहुत करता था मा ! पर इससे भी अधिक चित्त करता था ऋण उतारने को। सो उसी में लीन रहा हूँ। हमारा लेनदारों से फ़ैसला होने के समय चालीस हज़ार से ऊपर हमारे नाम बनता था। अब दो वर्ष मे केवल आठ हजार रह गया है। छः महीने और, फिर हम ऋण से मुक्त हो जायँगे।"

"पर हरिद्वार आने में कौन खर्चा पटता था। यदि आप नहीं आ सकते थे तो रामो और मोहिनी को ही भेज देते। यह गुल्लू की मा पिछले मास वहाँ गई थी और यहाँ की सब बातें बता आई है। लाला भगवतस्वरूप ने जितना अधिकार इस घर मे जमा रखा है सब हमको मालूम हो गया है। हमने लडकी जो उनकी ली है, अब उनकी बात भी सहन करनी पडती है।"

सुरेश खिलखिलाकर हँस पडा और बोला, "तो वह वहाँ भी जा पहुँची थी। मा ! यह मूर्ख औरत है। उसकी बातों पर जाना व्यर्थ है। अब तो तुम आ ही गई हो, स्वयं देख लोगी। लाला भगवतस्वरूप तो इस घर मे पॉव भी नहीं रखते।"

"तो तुम अब झूठ बोलना भी सीख गए हो ?"

"मा ! तुम रामी और मोहिनी से पूछ लो। वे तो चौबीसों घण्टे घर पर रहती हैं।"

"पूछ लिया है।"

"तो क्या वह कहती हैं कि लालाजी कभी यहाँ आते हैं ?"

"वे बेचारी क्या समझ रखती हैं ? जैसे तुम्हारी बीवी ने तुमको उल्लू बना रखा है, वैसे ही उन भोली-भाली लडकियों पर भी जादू डाला हुआ है ?"

"तो मा ! आते ही लडाई आरम्भ कर दी है ?"

"लडाई आरम्भ की है तुम्हारी रानी ने। जाओ जाकर देखो, न

चूल्हे आग, न घड़े पानी।"

"तो आपने भोजन नहीं किया क्या ?"

"हरिद्वार से ही परौंठे बनाकर लाये थे, वही खाए हैं।"

सुरेश जो कुछ कान्ता के विषय में जानता था, उससे वह मा की बात पर विश्वास नहीं करता था। इस कारण उसने कहा, "अच्छा मा! जरा देख लूँ। फिर आता हूँ।"

सुरेश ऊपर की मंज़िल पर रसोई घर, जहाँ कान्ता उस समय हुआ करती थी, जा पहुँचा। रामप्यारी कान्ता के साथ बैठी खाना पका रही थी और मोहिनी मुन्ने को लिए हुए दूसरे कमरे में खेला रही थी। सुरेश ने वहाँ कोई भी लक्षण शोक अथवा विग्रह के नहीं देखे। इस कारण वह मा की बात वहाँ कहने के स्थान, अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर कपड़े बदले और कमलेश को, जो इस समय स्कूल का काम कर रहा था, बुलाकर पूछा, "कब आये ये वर ?"

"साढ़े चार पहुँच गया था। पिताजी तो स्कूल जाने से पहले ही आ गए थे। उन्होंने नीचे ही ठहरना उचित समझा है। भाभी ने कहा भी था कि नीचे के कमरे अँधेरे हैं और हवा भी कम है। वे ऊपर के इस कमरे में आ सकते हैं। पर माताजी नहीं मानी।"

"कोई झगड़ा हुआ है क्या ?"

"नहीं तो।"

सुरेश को कुछ समझ नहीं आया। वह अभी वहाँ बैठा विचार कर ही रहा था कि मोहिनी और रामप्यारी दो थालों में खाना लिए हुए कमरे के आगे से गुजरीं। सुरेश ने उनको बुला लिया, "ये कहाँ लिए जा रही हो ?"

"माताजी तथा पिताजी के लिए नीचे।"

"इनको यहाँ रख दो और जा कर कहो कि भोजन करने ऊपर आवें।"

"हम पहिले कहने गई थीं परन्तु वे नहीं आये।"

इस पर सुरेश स्वयं नीचे चला गया और पिताजी से कहने लगा, "यहाँ स्थान अच्छा नहीं है। ऊपर भोजनालय में चल कर भोजन करिये।"

लाला रामस्वरूप तो बोले नहीं पर सुरेश की माता ने कह दिया, "देखो बेटा! खिलानी है तो यहीं खिला दो। कल तक तो हम अपना प्रबन्ध कर लेंगे।"

"अपना प्रबन्ध? तो यह किस का है?"

"तुम्हारी बीवी का। हम उसके हाथ का बना नहीं खा सकते।"

"पिताजी!" सुरेश ने माता की बात अनसुनी कर कह दिया, "ऊपर चलिये। आपको तो औरतों की बातों में नहीं आना चाहिए।"

"औरत नहीं सुरेश! तुम्हारी मा हूँ।" माता ने उसके पिता को बोलने का अवसर नहीं दिया और कहा, "हम यह बात हरिद्वार से ही निश्चय कर आये हैं कि हम लाहौर में रहेंगे और पृथक् रहेंगे।"

"ठीक है। परन्तु जब तक आपका प्रबन्ध नहीं हो जाता, तब तक तो आप मेरे साथ बैठकर खाइये।"

इस समय लाला रामस्वरूप ने बात में दखल दिया और कहा, "सुरेश! तुम ही मान जाओ। भोजन को यहाँ आ जाने दो। आखिर खा तो तुम्हारे चौके की ही रहे हैं।"

सुरेश सिर झुकाये ऊपर चढ गया और रामप्यारी और मोहिनी से रोटी उठवा स्वयं पानी के लिए ग्लास और लोटा लिये हुए नीचे आ गया।

जब सुरेश उदास मन भोजन लिए नीचे जा रहा था, तब कान्ता, जो सब बातचीत सीढियों में खडी सुन रही थी, पूछने लगी, "क्या आपका भोजन भी नीचे जायगा?"

सुरेश को क्रोध तो चढा ही हुआ था इस कारण कान्ता की ओर घूर कर देखते हुए पूछने लगा, "क्या मतलब तुम्हारा?"

"इच्छा तो यही थी कि हम सब उनके साथ बैठकर खाते। मैंने

चूल्हे आग, न घड़े पानी।"

"तो आपने भोजन नहीं किया क्या ?"

"हरिद्वार से ही परौंठे बनाकर लाये थे, वही खाए हैं।"

सुरेश जो कुछ कान्ता के विषय में जानता था, उससे वह मा की बात पर विश्वास नहीं करता था। इस कारण उसने कहा, "अच्छा मा! जरा देख लूँ। फिर आता हूँ।"

सुरेश ऊपर की मंजिल पर रसोई घर, जहाँ कान्ता उस समय हुआ करती थी, जा पहुँचा। रामप्यारी कान्ता के साथ बैठी खाना पका रही थी और मोहिनी मुन्ने को लिए हुए दूसरे कमरे में खेला रही थी। सुरेश ने वहाँ कोई भी लक्षण शोक अथवा विग्रह के नहीं देखे। इस कारण वह मा की बात वहाँ कहने के स्थान, अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर कपड़े बदले और कमलेश को, जो इस समय स्कूल का काम कर रहा था, बुलाकर पूछा, "कब आये थे घर ?"

"साढे चार पहुँच गया था। पिताजी तो स्कूल जाने से पहले ही आ गए थे। उन्होंने नीचे ही ठहरना उचित समझा है। भाभी ने कहा भी था कि नीचे के कमरे अँधेरे हैं और हवा भी कम है। वे ऊपर के इस कमरे में आ सकते हैं। पर माताजी नहीं मानी।"

"कोई झगडा हुआ है क्या ?"

"नहीं तो।"

सुरेश को कुछ समझ नहीं आया। वह अभी वहाँ बैठा विचार कर ही रहा था कि मोहिनी और रामप्यारी दो थालों में खाना लिए हुए कमरे के आगे से गुजरीं। सुरेश ने उनको बुला लिया, "ये कहाँ लिए जा रही हो ?"

"माताजी तथा पिताजी के लिए नीचे।"

"इनको यहाँ रख दो और जा कर कहो कि भोजन करने ऊपर आवें।"

"हम पहिले कहने गई थीं परन्तु वे नहीं आये।"

इस पर सुरेश स्वयं नीचे चला गया और पिताजी से कहने लगा, "यहाँ स्थान अच्छा नहीं है। ऊपर भोजनालय में चल कर भोजन करिये।"

लाला रामस्वरूप तो बोले नहीं पर सुरेश की माता ने कह दिया, "देखो बेटा! खिलानी है तो यहीं खिला दो। कल तक तो हम अपना प्रबन्ध कर लेंगे।"

"अपना प्रबन्ध ? तो यह किस का है ?"

"तुम्हारी बीवी का। हम उसके हाथ का बना नहीं खा सकते।"

"पिताजी!" सुरेश ने माता की बात अनसुनी कर कह दिया, "ऊपर चलिये। आपको तो औरतों की बातों में नहीं आना चाहिए।"

"औरत नहीं सुरेश! तुम्हारी मा हूँ।" माता ने उसके पिता को बोलने का अवसर नहीं दिया और कहा, "हम यह बात हरिद्वार से ही निश्चय कर आये हैं कि हम लाहौर में रहेंगे और पृथक् रहेंगे।"

"ठीक है। परन्तु जब तक आपका प्रबन्ध नहीं हो जाता, तब तक तो आप मेरे साथ बैठकर खाइये।"

इस समय लाला रामस्वरूप ने बात में दखल दिया और कहा, "सुरेश! तुम ही मान जाओ। भोजन को यहाँ आ जाने दो। आखिर खा तो तुम्हारे चौके की ही रहे हैं।"

सुरेश सिर झुकाये ऊपर चढ़ गया और रामप्यारी और मोहिनी से रोटी उठवा स्वयं पानी के लिए ग्लास और लोटा लिये हुए नीचे आ गया।

जब सुरेश उदास मन भोजन लिए नीचे जा रहा था, तब कान्ता, जो सब बातचीत सीढ़ियों में खड़ी सुन रही थी, पूछने लगी, "क्या आपका भोजन भी नीचे जायगा ?"

सुरेश को क्रोध तो चढ़ा ही हुआ था इस कारण कान्ता की ओर घूर कर देखते हुए पूछने लगा, "क्या मतलब तुम्हारा ?"

"इच्छा तो यही थी कि हम सब उनके साथ बैठकर खाते। मैंने

यह कहला भी भेजा था। माताजी को मेरे पर आपत्ति थी, परन्तु आपके लिए तो नहीं है। रामो और मोहिनी के लिए भी नहीं हो सकती।"

सुरेश ने कहा, "नहीं, मैं ऊपर आकर खाऊँगा।"

वह नीचे पहुँचा और हाथ धुला कर थालियाँ उनके सामने रख दीं। ग्लासों में पानी भरकर सामने बैठ गया। सुरेश ने समझा कि खाना खाकर क्रोध शान्त हो जावेगा। परन्तु हुआ इसके विपरीत। जब आधा भोजन कर चुके तो सुरेश की मा ने कहा,

"सुरेश! अब तुम ऐसा ही खाते हो, या हमारे लिए ही यह सूखी दाल और कच्चे फुलके बने हैं?"

"मा! अब यहाँ यही कुछ बनता है।" सुरेश भी कुछ कठोर हो गया था।

"इससे अच्छा तो हम वहाँ खाते थे।"

"इससे में विस्मय करने की कौन बात है? यहाँ हम छः प्राणी हैं और अस्सी रुपये महीने में गुजर करते हैं और आप दोनों को दो सौ रुपया महीना भेजा जाता था।"

"तुम इतने कम में गुजर क्यों करते हो?" पिता ने पूछा।

"पिताजी! बताया तो है कि ऋण चुकाने का वचन मैंने दिया हुआ है। जब तक यह चुक नहीं जाता, तब तक एक-एक पाई की बचत करनी आवश्यक थी।"

"यह सब व्यर्थ की बातें हैं। भूखे रहकर कोई दान-पुण्य नहीं करता। तुम्हारे बूढे माता-पिता के लिए तुम्हारी रानी ने यह भूसा बना कर भेजा है।"

"पिताजी! आज तो खा लीजिये। कल आप अपना प्रबन्ध कर लीजियेगा। आपको दो सौ मासिक मिलता ही है। आप घी-शक्कर खायें। मुझको बहुत प्रसन्नता होगी।"

सुरेश रात-भर सोचता रहा कि यह हो क्या गया है। यदि छः मास और मिल जाते तो सब कर्जा उतार कर पिताजी को आदर सहित दुकान पर बैठाता। तब निस्सन्देह सब अच्छा खाते और पहिरते।

कान्ता ने इस विषय में एक भी बात अपने पति से नहीं कही। सुरेश ने उसके सामने ही अपनी बहिनों से पूछा था और उन्होंने असंदिग्ध शब्दों में बताया था कि माताजी ने घर में प्रवेश करते ही झगडा प्रारम्भ किया है। भाभी ने उनसे कुछ नहीं कहा।

सुरेश कालेज में फुटबाल का खिलाडी रहा था और खेलने वालों की सी सहनशीलता और शीघ्र निर्णय करने की योग्यता उसमें थी। वह चुपचाप अपने बिस्तर पर लेटा हुआ अपने व्यवहार का निश्चय कर रहा था। कान्ता ने एक-दो बार कहा भी, "आप अब सो जाइये। रात की सोच ठीक नहीं होती।"

सुरेश ने उसको कहा, "देखो कान्ता! मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूँ कि मुकाबिले के खिलाडी ने किक लगाकर गेंद को गोल में फेंका है। गेंद आ रहा है और मैं गोल की रक्षा के लिए खडा हूँ। एक क्षण का कुछ भाग ही विचार करने और व्यवहार का निर्णय करने के लिए मेरे पास है। हाथ में गेंद पकडूँ, सिर से रोकूँ अथवा पाव से किक लगा दूँ। इसका निर्णय मैंने तुरन्त करना है। तुम विश्वास रखो कि गोल बचाने का अपनी ओर से पूर्ण यत्न करूँगा। तुम सो जाओ। मुन्ना प्रातः चार बजे उठ बैठता है और उस समय तुमको भी उसे खेलाने के लिए जागना पडता है। सो जाओ। मैं कहता हूँ कि सो जाओ।"

कान्ता लेटी और दिन-भर के काम से थके होने के कारण, सो गई। सबसे बडी बात यह थी कि वह अपने पति पर पूर्ण विश्वास रखती थी। उसने अपनी जीवन-नौका उसके आश्रय छोड रखी थी और उसको विश्वास था कि उसको धोखा नहीं होगा। वह अपने पति के संकेतमात्र पर घर-बाहर छोडकर उसके साथ चल पडने के लिए तैयार रहती थी।

ठीक चार बजे बच्चा उठा। उसने पेशाब किया और खेलने लगा। कान्ता को उठकर उसको खेलाना पडा। उसने देखा कि उसका पति गहरी नींद सो रहा है। उसे सोया देख उसने अनुभव किया कि वह अब निश्चिन्त हो सोया है। इसका अभिप्राय यह था कि सुरेश ने अपने कर्तव्य का निर्णय कर लिया हुआ है। इससे उसने भी शान्ति अनुभव की।

बच्चा एक घंटा भर जागता रहा। पश्चात् वह सोया तो कान्ता भी सो गई। अब वह छः बजे उठी। इस समय तक सुरेश शौचादि से निवृत्त हो चुका था। वह नीचे गया, जिससे अपने माता-पिता को प्रणाम कर आये। वे अभी भी सो रहे थे। सुरेश के दरवाजा खोलने के खडाक से वे जाग पड़े। मा ने आधी नींद में पूछा, "कौन है?"

"मैं हूँ सुरेश, मा!" उसने उत्तर दिया।

"मैंने तुम्हारे पिता से राय की है कि हम पृथक् मकान लेकर रहेंगे।"

"ठीक है माँ। जहाँ आपको सुख और आराम मिले, वहाँ रहो। मैं आपको दो सौ रुपया महीना देता रहूँगा।"

"दो सौ रुपए महीने में तो हमसे निर्वाह नहीं हो सकता।"

"तो इससे अधिक दुकान से निकल नहीं सकेगा।"

"यदि तुम इतनी भी कमाई कर नहीं सकते तो फिर तुम्हारे दुकान पर बैठने से लाभ ही क्या है?" यह पिता ने कहा।

"पिताजी!" सुरेश का कहना था, "लाभ तो इससे अधिक होता ही है, परन्तु इसका बहुत-सा भाग ऋण उतारने मे चला जाता है। पिछले दो वर्ष में मैं बत्तीस हजार कर्जा उतार चुका हूँ।"

"इतनी जल्दी क्या पडी है? सूद तो देना ही नहीं पडता। ऋण धीरे-धी [illegible] र जाता। अपना जीवन बरबाद करने से क्या लाभ हो सकता [illegible]

' [illegible] र भी तो देना है। वह दोबारा दुकान करने के

समय कान्ता के पिता से लिया था और उस पर सूद पड़ रहा है।" सुरेश ने इस रुपए का रहस्य अभी भी छुपा कर रखा हुआ था।

"भगवतस्वरूप से ?"

"जी हाँ। उस समय बाजार में एक पैसे का भी कोई विश्वास करने को तैयार नहीं था। उन्होंने पूँजी दी तो दो वर्ष में इतना कुछ लाभ हो सका है।"

लाला रामस्वरूप गम्भीर विचार में डूब गया। सुरेश ने समझा कि बात ठिकाने की कही गई है। माता-पिता को परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान हो जावेगा और वे अब दुकान के विषय में कुछ नहीं कहेंगे। परन्तु उसका विचार गलत निकला। रामस्वरूप ने कह दिया, "सुरेश! लाला भगवतस्वरूप के पास इतना रुपया कहा से आया ? वह एक वेतनधारी इतना रुपया कहा से पा गया ?"

"यह तो मैं जानता नहीं। हा, यह जानता हूँ कि हमारे घर की दरी और चादरें तक मुद्दरबद हो गई थीं। इस अवस्था में ऋण चुकाने के लिए रुपया पैदा कैसे हुआ ? साथ ही दुकान में साठ हजार का माल आया कहा से ?"

लाला रामस्वरूप इसका उत्तर दे नहीं सका। इस पर भी सुरेश की मा ने उत्तर दिया, "यह रुपया कहा से आया और कैसे आया, इस पर मस्तिष्क खराब करने की क्या आवश्यकता है। माल हमारी दुकान में रखा है और हम देखेंगे कि वह कहा से आया है ?"

"यह आप बहुत बुरा करेंगे। एक सज्जन ने मुसीबत के समय सहायता दी और आप उसकी थाह को ही लेना चाहते हैं।"

"नहीं, ऐसा नहीं करूँगा। मैं आज दुकान पर चलकर हिसाब देखूँगा और फिर निश्चय करूँगा कि कितना देना बनता है।"

सुरेश को विश्वास हो गया था कि पिता-पुत्र का झगड़ा आरम्भ हो गया है और उसने इस झगड़े में नैतिक विजय प्राप्त करने का निश्चय कर लिया। इस कारण उसने कहा, "ठीक है आप

स्नानादि से छुट्टी पा लीजिए और फिर प्रात: का अल्पाहार कर दुकान पर चलेंगे।"

सुरेश की मा ने कहा, "अल्पाहार की आवश्यकता नहीं। अपनी बीवी से कह देना कि अब हम उसके हाथ का बना नहीं खायेंगे। मैंने गुल्लू की मा के मकान के नीचे का भाग किराये पर ले लिया है और मैं वहा भोजन का प्रबन्ध करने जा रही हूँ।"

सुरेश ने कुछ कठोर होकर कहा, "तो कब जाओगी मा?"

"मैं स्नान वहीं करूँगी। रामप्यारी और मोहिनी को भेज देना। वे वहा सफाई करने में मेरी सहायता करेंगी।"

सुरेश बिना उत्तर दिये ऊपर चढ गया। वहाँ कमलेश चाय पी रहा था। रामप्यारी और मोहिनी ने खाना तैयार कर लिया था। कान्ता स्नान करने स्नानागार में गई हुई थी। सुरेश भी कमलेश के समीप बैठ अपने लिए चाय बनाने लगा। मोहिनी ने पूरी और साग सामने रख दिया। रामप्यारी ने भाभी के लिए भोजन परस दिया। सुरेश ने उससे कहा, "तनिक नीचे जाकर पूछ आओ कि वे खाने के लिए तैयार हुए हैं अथवा नहीं। हो गए हों तो दे आओ।"

रामप्यारी अनिश्चित मन भाई का मुख देखती रह गई। कमलेश हँस पडा और कहने लगा, "भैया! ये दोनों कह रही हैं कि वे मा के साथ सफाई करने नहीं जायँगी।"

"तो तुम लोग मा की बात सुन रहे थे?"

"हाँ।" मोहिनी ने कहा, "मैं भाभी के साथ रहूँगी।"

"क्यों?"

"मेरा मन करता है। मुझको मा की बात पसन्द नहीं आई।"

"वह तुम्हारी मा है मोहिनी!"

"और आप भाई नहीं हैं क्या?"

इस बात का उत्तर सुरेश के पास नहीं था। इस समय कान्ता कपडे पहिन आ गई थी। वह अपने लिए परसे भोजन के सामने बैठ

गई। बैठते हुए उसने रामप्यारी से पूछा, "माताजी के लिए भोजन नीचे गया है?"

उत्तर कमलेश ने दिया, "वे कह रही हैं कि इस घर में अब नहीं खायेंगी। उन्होंने गुल्लू की मा के घर के नीचे का भाग किराये पर ले लिया है और रामप्यारी और मोहिनी से कह रही हैं कि उस घर की सफाई करने चली चलें।"

कान्ता भोजन के सामने बैठी रह गई। उसका चित्त खाने को नहीं किया। उसकी डबडबाई आँखें देख, सुरेश ने कहा, "रामो! तुम दोनों भी आओ और भोजन करने बैठ जाओ। पीछे माताजी की सहायता करने चली जाना।"

"पर भैया! मैं नहीं जाऊँगी। मैं गुल्लू की मां के घर पर रहना नहीं चाहती।"

"पर रामो! मै तो यह घर-द्वार सब छोडने वाला हूँ। मै यह नगर भी छोडने का विचार कर रहा हूँ।"

"तो हम भी आपके साथ चलेंगी।"

"मेरे पास तो अपनी रोटी का भी प्रबन्ध नहीं। मै कहाँ जाकर काम ढूँढूँगा। ऐसी अवस्था में तुम सबको कहाँ से खिलाऊँगा और कहाँ रखूँगा?"

सुरेश के विचार सुन रामप्यारी, मोहिनी और कमलेश अवाक् बैठे रह गये। कान्ता विस्मय मे अपने पति का मुख देखती रह गई। सुरेश ने अपनी बात की और अधिक व्याख्या कर दी। उसने कहा, "पिताजी दुकान पर चल रहे हैं। उनकी बातों से पता चलता है कि वे अब दुकान पर बैठेंगे और सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले लेंगे। मुझको विश्वास हो रहा है कि अपने मन की वर्तमान अवस्था में वह फिर पहले की भाँति सब काम बिगाड देंगे। ऐसी अवस्था में मेरा उनके साथ काम हो नहीं सकेगा। मुझको किसी अन्य नगर मे जाकर काम करना पड़ेगा। पिताजी से दुकान में से कुछ रुपया मागूँगा, परन्तु आशा बहुत ही

कम है कि वे कुछ देंगे। इस पर मैं यहाँ से भगवान् भरोसे चल दूँगा।"

कान्ता का मुख कठोर हो गया था। उसकी आँखों के आँसू सूख गए थे और वह उत्सुकतावश अपने पति का मुख देख रही थी। सुरेश ने कहा, "अब शीघ्र भोजन कर लो। फिर मैं जा रहा हूँ।"

इतना कह सुरेश ने पूरी तोड़ी और साग के साथ खाने लगा। कान्ता ने भी खाना आरम्भ कर दिया। कमलेश खा चुका था। वह उठकर कुल्ला कर बोला, "भैया! मैं आपके साथ चलूँगा।"

"और हम भी।" रामप्यारी और मोहिनी ने कहा।

"अच्छा, अच्छा। विचार कर लेंगे। अब अपना-अपना काम करो।"

सुरेश जब कपड़े पहिन जाने लगा तो कान्ता ने उसके पास जाकर धीरे से कहा, "उतावली में कुछ न करिए। मैं समझती हूँ कि पिताजी से राय कर लें तो अच्छा है।"

"वही तो जा रहा हूँ कान्ता! तुम निश्चिन्त रहो, सब ठीक होगा। जो-कुछ रात और अब मैंने सुना है उसके पश्चात् मैं इन पागलों के साथ रहने में अपना कल्याण नहीं समझता।"

सुरेश भगवतस्वरूप से मिलने गया। उन्हें उसने पूर्ण कथा सुना दी। भगवतस्वरूप का कहना था, "मैं समझता हूँ कि तुम्हारा उनके साथ रहना हितकर नहीं होगा। परन्तु इस समय जबकि ऋण उतरने वाला है, लड़कर चले जाने से काम नहीं चलेगा। लेनदारों से लिखा-पढ़ी में तुमने भी ऋण चुकाने का उत्तरदायित्व सिर पर लिया हुआ है। अब तुम्हारा दुकान छोड़कर चले जाना, इस उत्तरदायित्व से तुमको मुक्त नहीं कर देगा।

"एक ही सूरत है और वह यह कि शेष आठ हजार रुपया ऋण

का तुरन्त दे दिया जाये और लेनदारों से मुक्ति-पत्र ले लिया जाये और पश्चात् तुम दुकान छोड़ सकते हो।"

इस उलझन की ओर कि पिताजी कुछ न दें तो वह अकेला भी ऋण का उत्तरदायी है, सुरेश का ध्यान ही नहीं था। इस पर उसने कहा, "पिताजी! अब मुझको तो कोई मार्ग नहीं सूझ रहा।"

"मैं आज दो बजे दुकान पर आऊँगा और तब तक तुम कुछ निर्णय न करना।"

सुरेश जब दुकान पर पहुँचा तो लाला रामस्वरूप दुकान के बाहर खड़ा उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। दुकान के नौकर भी खड़े प्रतीक्षा कर रहे थे। सुरेश ने चाबियाँ नौकर को दीं और वे दुकान खोलने लगे। इस समय रामस्वरूप ने सुरेश से पूछा, "तुम घर से तो काफी देर के निकले हुए हो। बीच में कहाँ रुक गए थे?"

"मैं वकील से राय करने गया था।"

"किस विषय में?"

"यही आपसे पृथक् होने के लिए। माताजी अकारण लड़ रही हैं। ऐसी अवस्था में मैं इस दुकान को छोड़ रहा हूँ।"

"तो छोड़ जाओ।"

"इसी के लिए राय करने गया था। उनकी सम्मति है कि मैं जब तक पूर्ण ऋण चुका नहीं देता, दुकान नहीं छोड़ सकता।"

"क्यों? ऋण तो मैं चुका दूँगा।"

"ठीक है। पर लेनदार जब मानेंगे तभी तो।"

"तो क्या उन पर भी तुमने जादू चलाया हुआ है? घर पर बच्चों को तुम्हारी बीवी ने भड़का रखा है और यहाँ लेनदार भी तुम्हारे वश में हैं क्या?"

"मैं एक-दो दिन में उनको बुलाकर आपसे लिखा-पढ़ी करवा दूँगा, जिससे सब ऋण लेने वाले आपको ही ऋण देने वाला मान जावें और समझने लगें।"

"तो पहले ऐसा नहीं है क्या ?"

"पहिले हम दोनों सम्मिलित और पृथक् रूप से उत्तरदायी हैं। अब यदि आप केवल मान लिये गए तो मैं चाबियाँ आपको दे दूँगा और कुछ साक्षियों के हस्ताक्षरों के साथ एक उनमुक्तता का पट्टा अपने लिए भी लिखवा लूँगा।"

"बहुत समझदार हो गए हो सुरेश ?"

"हाँ पिताजी! और मैं अपनी बीवी के कहने पर नहीं चल रहा।"

"यदि उसके कहने पर चलते तो क्या करते ?"

"जब चलना ही नहीं तो पूछा ही नहीं।"

"तो उसने अपने-आप कुछ नहीं बताया ?"

"यह उसकी आदत नहीं है।"

दुकान की सफाई हो गई तो पिता पुत्र दोनों दुकान में जा बैठे। रामस्वरूप को पहिली बात जो समझ में आई, वह दुकान का माल से लदा हुआ होना था। पिता ने अलमारियों को ठसाटस भरा देख पूछा, "माल उधार भी मँगवाते हो ?"

"हाँ पिताजी! अब लगभग छै मास से लोग फिर विश्वास करने लग गए हैं।"

रामस्वरूप गद्दी पर जा बैठा और बही-खाते देखने लगा। उसने देखा कि पचास हजार लाला भगवतस्वरूप से प्राप्त लिखा है और महीने-के-महीने ट्रायल बैलैंस निकाला हुआ है। उसने यह भी देखा कि सुरेश ने अपने नाम कभी भी एक सौ रुपया मासिक से अधिक नहीं लिखा और उसके नाम प्रतिमास दो सौ रुपया लिखा है।

जब रामस्वरूप बही-खाता देख रहा था, ग्राहक आने लगे थे और माल बिकना आरम्भ हो गया था। प्रत्येक बिक्री का नकद पत्रक बनता था और उधार लेने वाला कोई नहीं आ रहा था।

मध्याह्न तक हिसाब देख रामस्वरूप ने कुछ रकमें एक कागज पर

नोट कर ली थीं। यह धन सुरेश ने नए और पुराने लेनदारों का देना था। इस समय वह सुरेश से निपटने की योजना बनाने लगा था। वह मन में विचार कर रहा था कि पुराने लेनदारों को आठ हजार देना रह गया है। यह ऋण तो पन्द्रह दिन में ही चुकाया जा सकता था। उनको बुलाकर राय करने की आवश्यकता नहीं। सुरेश को वह दो सौ रुपया मासिक दे दिया करेगा और बस। यदि वह पसन्द नहीं करता तो अपना काम पृथक् कर सकता है। कठिनाई उसको भगवतस्वरूप के पचास हजार की प्रतीत होती थी। उसने धन दिया है या नहीं, यह तो भगवान् जाने पर यदि बही-खाते में लिखा है तो देना ही पड़ेगा। यह रकम यदि एकदम देनी पड़े तो फिर दिवाला निकल जायेगा। इस नई परिस्थिति पर वह गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा था।

उसने दिवाले के पश्चात् नई दुकान निकालने के समय की बही देखी। उसमें पचास हजार की पूँजी से ही काम प्रारम्भ किया गया था और वह पचास हजार भगवत्स्वरूप से लिया लिखा था। प्रश्न यह था कि क्या उसका समधी इतना धनी है कि इतना धन अपने दमाद को वह उधार दे सकता है। साथ ही उस पचास हजार का पिछले दो वर्ष से सूद नहीं दिया गया था। वह भी पौने चार हजार के लगभग हो गया था। वह बारह बजे तक बैठा यही विचार करता रहा कि किस प्रकार भगवतस्वरूप के इस पचास हजार से पीछा छुडाये। उसे किसी वकील से राय करने की सूझी। उसी सायंकाल वह कुछ प्रबन्ध करने के लिए वकील के पास जाने को उतावला हो उठा।

वह अभी इन्हीं विचारों में मग्न था कि भगवतस्वरूप आ पहुँचा। रामस्वरूप उसको देख घबरा गया उसने नमस्कार तक नहीं की। वह तो हरिद्वार में उसकी स्त्री द्वारा इन सब के अपमान की बात पर विचार करने लगा था। भगवतस्वरूप ने रामस्वरूप को हाथ जोड नमस्ते की और पूछा, "कब आये हैं आप? सब कुशल से तो हैं? सुरेश की माता जी तो ठीक हैं?"

"तो पहले ऐसा नहीं है क्या ?"

"पहिले हम दोनों सम्मिलित और पृथक् रूप से उत्तरदायी हैं। अब यदि आप केवल मान लिये गए तो मैं चाबियाँ आपको दे दूँगा और कुछ साक्षियों के हस्ताक्षरों के साथ एक उनमुक्तता का पट्टा अपने लिए भी लिखवा लूँगा।"

"बहुत समझदार हो गए हो सुरेश ?"

"हाँ पिताजी ! और मैं अपनी बीवी के कहने पर नहीं चल रहा।"

"यदि उसके कहने पर चलते तो क्या करते ?"

"जब चलना ही नहीं तो पूछा ही नहीं।"

"तो उसने अपने-आप कुछ नहीं बताया ?"

"यह उसकी आदत नहीं है।"

दुकान की सफाई हो गई तो पिता पुत्र दोनों दुकान में जा बैठे। रामस्वरूप को पहिली बात जो समझ में आई, वह दुकान का माल से लदा हुआ होना था। पिता ने अलमारियों को ठसाठस भरा देख पूछा, "माल उधार भी मँगवाते हो ?"

"हाँ पिताजी ! अब लगभग छै मास से लोग फिर विश्वास करने लग गए हैं।"

रामस्वरूप गद्दी पर जा बैठा और बही-खाते देखने लगा। उसने देखा कि पचास हज़ार लाला भगवतस्वरूप से प्राप्त लिखा है और महीने-के-महीने ट्रायल बैलैंस निकाला हुआ है। उसने यह भी देखा कि सुरेश ने अपने नाम कभी भी एक सौ रुपया मासिक से अधिक नहीं लिखा और उसके नाम प्रतिमास दो सौ रुपया लिखा है।

जब रामस्वरूप बही-खाता देख रहा था, ग्राहक आने लगे थे और माल बिकना आरम्भ हो गया था। प्रत्येक बिक्री का नकद पत्रक बनता था और उधार लेने वाला कोई नहीं आ रहा था।

मध्याह्न तक हिसाब देख रामस्वरूप ने कुछ रकमें एक कागज़ पर

नोट कर ली थीं। यह धन सुरेश ने नए और पुराने लेनदारों का देना था। इस समय वह सुरेश से निपटने की योजना बनाने लगा था। वह मन में विचार कर रहा था कि पुराने लेनदारों को आठ हजार देना रह गया है। यह ऋण तो पन्द्रह दिन में ही चुकाया जा सकता था। उनको बुलाकर राय करने की आवश्यकता नहीं। सुरेश को वह दो सौ रुपया मासिक दे दिया करेगा और बस। यदि वह पसन्द नहीं करता तो अपना काम पृथक् कर सकता है। कठिनाई उसको भगवतस्वरूप के पचास हजार की प्रतीत होती थी। उसने धन दिया है या नहीं, यह तो भगवान् जाने पर यदि बही-खाते में लिखा है तो देना ही पड़ेगा। यह रकम यदि एकदम देनी पड़े तो फिर दिवाला निकल जायेगा। इस नई परिस्थिति पर वह गम्भीरता पूर्वक विचार कर रहा था।

उसने दिवाले के पश्चात् नई दुकान निकालने के समय की बही देखी। उसमें पचास हजार की पूँजी से ही काम प्रारम्भ किया गया था और वह पचास हजार भगवतूस्वरूप से लिया लिखा था। प्रश्न यह था कि क्या उसका समधी इतना धनी है कि इतना धन अपने दमाद को वह उधार दे सकता है। साथ ही उस पचास हजार का पिछले दो वर्ष से सूद नहीं दिया गया था। वह भी पौने चार हजार के लगभग हो गया था। वह बारह बजे तक बैठा यही विचार करता रहा कि किस प्रकार भगवतस्वरूप के इस पचास हजार से पीछा छुडाये। उसे किसी वकील से राय करने की सूझी। उसी सायंकाल वह कुछ प्रबन्ध करने के लिए वकील के पास जाने को उतावला हो उठा।

वह अभी इन्हीं विचारों में मग्न था कि भगवतस्वरूप आ पहुँचा। रामस्वरूप उसको देख घबरा गया उसने नमस्कार तक नहीं की। वह तो हरिद्वार में उसकी स्त्री द्वारा इन सब के अपमान की बात पर विचार करने लगा था। भगवतस्वरूप ने रामस्वरूप को हाथ जोड़ नमस्ते की और पूछा, "कब आये हैं आप? सब कुशल से तो हैं? सुरेश की माता जी तो ठीक हैं?"

रामस्वरूप अभी भी अवाक् बैठा था। उसका मन हरिद्वार की घटना पर लगा हुआ था। भगवतस्वरूप ने जब रामस्वरूप को इस प्रकार गुमसुम बैठे देखा तो अपना ध्यान सुरेश की ओर किया, "सुनाओ सुरेश! ठीक तो हो। काम-काज कैसा है?"

"सब ठीक है। तनिक पिताजी की बात भी सुन लीजिए। कारण यह है कि आपका हाथ भी इस दुकान में दबा हुआ है।"

"क्या बात है लालाजी?" भगवतस्वरूप और सुरेश रामस्वरूप के पास आकर बैठ गए। रामस्वरूप अभी भी चुप था। बात सुरेश ने आरम्भ कर दी, "माताजी और पिता जी कल यहाँ आये हैं और आज इन्होंने पृथक् मकान लेकर रहना आरम्भ कर दिया है। दुकान भी पिताजी ले लेना चाहते हैं।"

"और तुम क्या चाहते हो?"

"मेरे चाहने की क्या बात है? ये मेरे पूज्य हैं। जैसा कहेंगे वैसा ही मानना पड़ेगा।"

रामस्वरूप ने अब मुख खोला, "मेरा अभिप्राय यह नहीं था। बात यह है कि मैंने अच्छे दिन देखे हैं, इस कारण दो सौ रुपया महीने से मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। इस लिये मैं काम-काज देखने यहाँ चला आया हूँ। अब बहीखाता देखने से मुझको पता चला है कि इतनी घोर तपस्या करने की आवश्यकता नहीं। कम-से-कम छः सौ रुपया मासिक हमारे लिए निकलना चाहिए। सुरेश ने कल मा को बताया है कि दुकान से इतना निकल नहीं सकता। आज मैंने हिसाब-किताब देखा है और यह समझ पाया हूँ कि छः सौ तो क्या एक हजार रुपया भी निकल सकता है। सुरेश ने मा के सामने झूठ बोला है।"

"क्यों सुरेश! क्या यह ठीक है?"

"मैंने झूठ नहीं बोला पिताजी! मैंने तो यह कहा था कि लाभ तो होता है पर ऋण उतारना है। इस पर आप नाराज हो गए और दुकान पर आ बैठे हैं।"

"मेरा विचार है कि दस-पन्द्रह दिन तक आप सब खर्चे बन्द कर लेनदारों का ऋण उतार दें और पश्चात् आप लोग अपना व्यय आय के अनुसार निश्चित कर लें।"

"यह ठीक तो है।" रामस्वरूप ने कहा।

"यह ठीक तब ही हो सकता है पिताजी! जब आप बिक्री में से एक पैसा न निकालें। आपको पहिला स्वभाव छोड़ना होगा।"

"तो तुम मुझको शिक्षा देने आये हो?"

"आपका स्वभाव है। इस कारण हिसाब-किताब मैं रखूँगा और सब आय बैंक मे जमा हुआ करेगी। व्यय चैकों द्वारा हुआ करेगा।"

"तो फिर मेरे यहाँ आने का प्रयोजन ही क्या है?"

"हाँ, आप दो वर्ष तक हरिद्वार रहे हैं तो दुकान चलती ही रही है। पहिले से अब अवस्था भी अच्छी है।"

"अच्छी बात है। मैं इस बात पर विचार कर कल बताऊँगा।"

सुरेश मुस्कराया। इस पर भगवतस्वरूप ने एक बात और कह दी, "इसके साथ लालाजी यह भी विचार कर लें कि यदि सुरेश के साथ हिसाब-किताब किया गया तो मैं अपना पचास हजार तुरन्त मागूँगा। मुझको आपके हाथों यह धन सुरक्षित प्रतीत नहीं होता।"

"पर वह रुपया, भगवतस्वरूप जी! आपने दिया भी था या नहीं?"

"मेरे पास इसके प्रमाण हैं।"

"मुझको सन्देह है कि वह रुपया आपका नहीं प्रत्युत् दफ्तर का, जहाँ आप नौकर हैं, चुराया हुआ है। कोई समझ ही नहीं सकता कि इतना रुपया आपके पास कहाँ से आया।"

भगवतस्वरूप मुस्कराया और बोला, "लालाजी! मेरी चोरी की बात आप पुलिस में लिखा दीजिये, मैं कैद हो जाऊँगा और रुपया आप रख सकेंगे।"

भगवतस्वरूप ने जाने से पूर्व कह दिया, "देखो लाला! यह तुम्हारा

घर उजड़ेगा और तुम गली-गली में भिक्षा माँगते फिरोगे। औरतों की सीख मानने वालों का यही परिणाम होता है।"

अगले दिन सुरेश ने दुकान को खोला तो स्वय बिक्री लेने लगा। दुकान पर प्रबन्ध इस प्रकार था कि माल दिखाने वाले ही माल की कैश मीमो बना देते थे। माल खरीदने वाले कौन्टर पर दाम देते और माल ले जाते थे। आज सुरेश स्वय कौन्टर पर बैठ गया था।

रामस्वरूप दुकान पर आया और कौन्टर पर सुरेश को बैठा देख खड़ा रह गया। सुरेश ने पिताजी के लिए एक और कुर्सी दुकान के दूसरे कोने में लगवा दी। रामस्वरूप ने वहाँ बैठने के स्थान सुरेश से कह दिया, "मैं तो तुम से फैसला करने आया हूँ।"

"फैसला करते समय कौन मध्यस्थ होगा?"

"इसकी क्या आवश्यकता है? क्या समझते हो कि मैं कोई ऐसी बात कहने जा रहा हूँ जो तुमको मान्य नहीं होगी?"

"आपकी पिछले दो दिन की बातों से तो यह प्रतीत हो रहा है कि आप मेरी कोई भी बात मानने के लिए तैयार नहीं।"

"तुम मेरी बात एक बार सुन लो। मैं समझता हूँ कि यह तुमको अमान्य नहीं होगी।"

"अच्छा बताइये।"

"ऋण एकदम चुका दिया जावे। पश्चात् दुकान आधी-आधी बाँट ली जाये। रुपया, माल और फर्नीचर सब कुछ। यदि तुम दुकान लो तो एक हजार मुझ को दो और यदि मैं दुकान लूँ तो एक हजार तुमको दूँ।"

"मैं मान जाऊँगा, परन्तु आप अपनी बात पर स्थिर नहीं रहेंगे। आप समझते ही नहीं कि आप क्या कह रहे हैं।"

"तुम्हारा अभिप्राय भगवतस्वरूप के पचास हजार से है न? वह मैं नहीं दूँगा।"

"तो कौन देगा?"

"मेरे विचार मे उसका लेना नहीं बनता। यदि उसको चाहिए तो अदालत मे फैसला हो जावेगा।"

"यह भी ठीक है। इतना रुपया हम पृथक् एक बैंक मे अमानत रख देते हैं। यदि अदालत उनके हक मे निर्णय देती है तो बैंक से रुपया दे दिया जावेगा। नहीं तो हम बाट लेंगे।"

"ऐसा करने से तो दुकान में कुछ रहेगा ही नहीं। मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"यही तो मैं कहता हूँ कि आप अपनी बात भी मानेंगे नहीं। यदि भगवतस्वरूप की हम पर डिक्री हो गई तो उसका रुपया कौन देगा?"

रामस्वरूप ने भविष्य के विषय मे कभी विचार करना सीखा ही नहीं था। पहिले तो समझाने पर भी हट कर नहीं माना करता था, परन्तु आज परिस्थिति उसके हाथ मे नहीं थी। इस कारण उसका हठ चल नहीं सका।

दो

परिस्थितियों को विपरीत जाते देख भगवतस्वरूप ने अपनी जमा पूँजी को बटोरना आरम्भ कर दिया। जीवन आरम्भ करने के समय से लेकर विनोद के विवाह तक तो उसके नाम बैंक की पास-बुक में रुपया जमा होता ही गया था।

जब वह चार सौ मासिक लेने लगा था, तब उसके पास प्रथम दस हजार एकत्रित हो गया था। इस समय उसने दस हजार के टाटा कम्पनी के हिस्से खरीद लिए थे। इससे उसे एक सहस्र वार्षिक की आय होने लग गई थी। जब उसका वेतन पाँच सौ मासिक हो गया तो उसके पास और दस सहस्र रुपया एकत्रित हो गया। इससे उसने कलकत्ता पोर्ट ट्रस्ट के हिस्से खरीद लिये। यह उसे आठ सौ वार्षिक की आय देने लगे। इस प्रकार चलता गया। विनोद के विवाह के समय उसके पास उक्त पूँजी के अतिरिक्त पन्द्रह सहस्र नक़द जमा था।

इसके पीछे व्यय-पर व्यय होने लगा। घर का खर्च बढ गया। भूषण और कान्ता की पढाई पर व्यय होने लगा। वेतन में से प्रतिमास

दो सौ रुपया जमा करने पर भी बैंक में रुपया कम होने लगा। जब भूषण की पढ़ाई समाप्त हुई तथा कान्ता का विवाह हो गया तो भगवत-स्वरूप के पास टाटा ट्रस्ट के हिस्सों का धन छोड़कर बैंक में केवल आठ हजार रह गया था। शोभा इस समय कॉलेज में पढ़ने लग गई थी और वह लगभग एक सौ रुपया मासिक व्यय कर रही थी। कला का व्यय केवल बीस रुपया मासिक था, जो वह संगीत सिखाने वाले को देती थी।

भूषण के विवाह पर केवल एक सहस्र, कपड़ों पर और दावत पर व्यय हुए थे। भूषणादि जो घर पर ही थे, पहिना दिये गए थे। इस सब के पश्चात् अब फिर कुछ एकत्रित होने लग गया था।

इस समय तक भगवतस्वरूप की आयु पचपन वर्ष की हो चली थी और उसकी कम्पनी वाले, जिनके पास वह नौकरी करता था, विचार करने लगे थे कि उसको नौकरी से पृथक् किया जाय अथवा न। मालिकों में मतभेद था। कुछ लोग यह समझते थे कि किसी नवयुवक को उन्नति करने का अवसर दिया जाना चाहिए। दूसरे पक्ष के लोग यह कहते थे कि भगवतस्वरूप के काम में यदि कोई त्रुटि न हो तो उसे निकालने में लाभ तो कुछ है नहीं। काम की अच्छाई में अन्तर आ सकता है। इस वादविवाद में कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर ने भगवतस्वरूप को कलकत्ता में बुलाया और उससे इस विषय पर बातचीत की। भगवतस्वरूप का कहना था, "मैं इसमें कोई सम्मति अथवा प्रार्थना नहीं करना चाहता। कम्पनी अपना लाभ-हानि देख ले। मुझको कम्पनी इस समय नौ सौ रुपया मासिक देती है और शीघ्र ही एक सहस्र देने लगेगी। क्या मैं इतने रुपये का काम कर सकता हूँ या नहीं, इसका अनुमान तो कम्पनी वाले ही लगा सकते हैं।"

मैनेजिंग डायरेक्टर मिस्टर चुट वर्ड ने भगवतस्वरूप की मानसिक अवस्था का परीक्षण किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि उसका मन सर्वथा सतर्क और सबल है। उसके अनुभव और योग्यता से कम्पनी को लाभ उठाना चाहिए। इस कारण भगवतस्वरूप को एक सहस्र मासिक

पर दो वर्ष तक नौकरी करने की स्वीकृति मिल गई।

भगवतस्वरूप आत्म-विश्वास से भरा हुआ लाहौर लौटा और काम पर लग गया। इस समय भूषण मीनाक्षि को अहमदाबाद ले गया और अपने पाँच सौ मासिक में से डेढ़ सौ मासिक बचाकर घर भेजने लगा। भगवतस्वरूप ने उसे लिखा भी कि उसकी अपनी स्थिति के अनुकूल जीवन रखने के लिए वेतन पर्याप्त नहीं तो उसे भेजने की कोई आवश्यकता नहीं। इस पर भूषण का उत्तर आया, "मैं किसी बुरे काल के लिए परिवार के साझे खाते में इसे जमा करना चाहता हूँ।"

ऐसे समय में सुरेश का झगड़ा आ खड़ा हुआ। सुरेश ने पहिले तो यह कहा था कि वह सब-कुछ छोड़छाड़ कर केवल तन के कपड़ों के साथ घर से निकल जायेगा। परन्तु भगवतस्वरूप के समझाने पर वह इस बात के लिए तैयार हो गया कि सब ऋण चुका दिया जाये और दुकान की सम्पत्ति आधी आधी बाँट ली जाये।

जहाँ तक उस पचास हजार का सम्बन्ध था, जो सुरेश ने भगवतस्वरूप के नाम जमा किया था, भगवतस्वरूप इसको झगड़े का कारण नहीं बनने देना चाहता था। सुरेश इस बात के लिए तैयार था, परन्तु भगवतस्वरूप सब बात एकदम मान जाने से रामस्वरूप के आधे-आधे पर मानने से इन्कार कर देने के भय से चिन्तित था। इस कारण उसने सुरेश से कहा, "वह पचास हजार भी आधा-आधा बँट जाना चाहिए। परन्तु अपने पिता से फारखती लिखवाने के लिए थोड़ा-सा डटे रहो।"

सुरेश जब पिता को दुकान के हिसाब-किताब में हाथ लगाने नहीं देता था तो रामस्वरूप झुँझलाकर उससे लड़ने के लिए उद्यत हो जाता था। इस पर सुरेश मुस्कराकर कह देता, "लड़ने से कुछ सिद्ध नहीं होगा पिताजी! किसी भले मनुष्य को मध्यस्थ बना लीजिए और हम दोनों लिखकर दे देते हैं कि जो कुछ भी वह निर्णय करेगा हमको स्वीकार होगा।"

"तो तुम यह चाहते हो कि पिता-पुत्र का झगड़ा एक तीसरे के हाथ में जाये?"

"यह तो आप चाहते हैं न। परसों महीना समाप्त होगा। नियमानुसार मैं हिसाब-किताब देखूँगा और यत्न करूँगा कि आपके खाने और पहिरने के लिए आपको काफी कुछ मिल जाया करे। आप तब तक तो सन्तोष करिये।"

वह दिन भी आया। सुरेश ने कच्चा चिट्ठा तैयार कर लिया। कुल बिक्री बीस हजार के लगभग हुई थी। सुरेश के अनुमान के अनुसार दुकान का खर्चा निकालकर लाभ पाँच प्रतिशत होना चाहिए था। इस प्रकार एक सहस्र रुपया लाभ निकला। इसको, उसने पाँच सौ रुपया घर के व्यय के लिए और पाँच सौ पुराना ऋण उतारने के लिए दो भागों में बाँट लिया।

यह चिट्ठा पढ़कर रामस्वरूप आगबबूला हो गया। उसने कहा, "लाभ पाँच प्रतिशत नहीं दस प्रतिशत आँकना चाहिए। फिर लेनदारों को पाँच सौ से अधिक नहीं देना चाहिए। और घर के लिए सात सौ मुझे और पाँच सौ तुम्हें मिलना चाहिए। तीन सौ रुपया कभी अचानक आवश्यकता आ पड़ने के लिए या जब बिक्री कम हो, तब के लिए सुरक्षित रखना चाहिए।"

सुरेश ने कहा, "पिताजी! इतना लाभ दुकान से नहीं हो रहा। साथ ही हमें अधिक-से-अधिक ऋण उतारने के लिए देना चाहिए। आपको सात सौ की आवश्यकता नहीं। बहिन और भाई मेरे पास रहते हैं और उनको पृथक् खर्चे के लिए मिलना चाहिए।"

रामस्वरूप माना नहीं और नौबत मध्यस्थ नियुक्त करने तक आ पहुँची। जब मध्यस्थ का नाम निश्चित होने लगा तो रामस्वरूप ने गुल्लू के पिता रामशरण का नाम ले दिया। सुरेश समझता था कि पिता-पुत्र के झगड़े में गुल्लू के पिता का पर्याप्त हाथ है। और उसको मध्यस्थ बनाने पर झगड़ा शान्त होने के स्थान बढ़ेगा। इस कारण उसने मुहल्ले के एक वयोवृद्ध वकील का नाम उपस्थित कर दिया। उसके विषय में रामस्वरूप कोई आपत्ति नहीं कर सका। वह

मुहल्ले वालों के झगड़ों से प्रायः पृथक् रहा करता था।

अतएव पिता पुत्र दोनों उसके पास पहुँचे और अपने झगड़े में उसको निर्णय देने की प्रार्थना करने लगे। वकील, श्री रमाकान्त ने कहा, "लाला रामस्वरूप! जो झगड़ा पिता-पुत्र स्वयं मिटा नहीं सकते, वह मैं, जो बाहर का आदमी हूँ, कैसे शान्त कर सकूँगा?"

सुरेश चाहता था कि उसका पिता ही सब बात करे। इस कारण वह चुप रहा। पिता ने कहा, "कभी बात अपनी समझ में नहीं आती तो किसी दूसरे से सहायता लेनी नहीं चाहिये क्या?"

"मैं तो यह कह रहा हूँ कि मेरे समझाने पर तुम समझ सकोगे क्या? यदि बेटा बाप के समझाये नहीं समझता तो मैं, जो उसका कुछ लगता नहीं, कैसे समझाने में सफल हूँगा?"

"बाबूजी!" अब सुरेश ने आदर से कहा, "क्या कभी ऐसा नहीं होता कि एक ही बात कोई एक समझा सकता है और दूसरा नहीं। आप वकील हैं और ऐसा विचार है कि आप ऐसी युक्ति से बतावेंगे कि समझ मे आ जावेगी। आप तो बड़े-बड़े जजों को समझाते रहते हैं।"

वकील सुरेश की युक्ति सुन हँस पड़ा। इस पर उसने कहा, "एक बात और है। तुम लिखकर दो कि मेरा निर्णय मान जाओगे और जो नहीं मानेगा वह मेरी फीस पाँच सौ रुपया देगा।"

इस प्रस्ताव पर रामस्वरूप झेंप गया। सुरेश लिखकर देने को तैयार हो गया। रामस्वरूप ने कहा, "बाबू साहब! मेरे पास पाँच सौ रुपया है नहीं।"

"तो पहले पाँच सौ एकत्रित कर लो और तब आ जाना।"

"यदि आपने मेरे साथ न्याय न किया तो?"

"तो तुम उसके पास जाओ जिसमें, तुमको न्याय करने की योग्यता दिखाई दे।"

"हम आप में यह योग्यता देखकर ही तो आये हैं।"

"तो पाँच-पाँच सौ दोनो जमा करा दो और वचन-पत्र लिख दो।"

रामस्वरूप उठ खड़ा हुआ। इस पर सुरेश ने कहा, "पिताजी! इनसे अच्छा न्यायकर्ता आपको मिलेगा नहीं।"

"पर बेटा! मेरे पास पाँच सौ रुपया है नहीं।"

"तो आप यह करिये कि पाँच सौ रुपया अढ़ाई मास का पेशगी ले लीजिये और वह यहाँ जमा करा दीजिये। यदि निर्णय मान्य हुआ तब तो आप का और मेरा रुपया वापिस हो ही जायेगा और यदि आप को मान्य न हुआ तो आपका रुपया इनको फीस के रूप में मिल जावेगा और आपका यह उधार दुकान धीरे-धीरे खर्चे में से काट लेगी।"

"और यदि तुम नहीं माने तो?"

"मैं मान जाऊँगा। यदि बाबूजी का यह भी निर्णय हुआ कि मैं बिना कुछ लिये तन के कपड़े समेट निकल जाऊँ तब भी चला जाऊँगा।"

"और यदि मैंने कहा, नंगे ही निकल जाओ?" वकील ने मुस्कराते हुए पूछा।

सुरेश हँस पड़ा और बोला, "मुझको वह भी स्वीकार है।"

इस पर भी रामस्वरूप ने लिखकर देने से पूर्व एक दिन दूसरों से राय करने में लगा दिया। गुल्लू के पिता ने भी रमाकान्त की प्रशंसा की और मुहल्ले के जिस भी व्यक्ति से रामस्वरूप ने पूछा, उसने ही वकील साहब के न्यायप्रिय होने की बात कही। इस पर वह अगले दिन सुरेश को लेकर वहाँ आया और एक ओर तो उसने पाँच सौ रुपया दुकान से उधार लेकर वकील साहब को दे दिया तथा दूसरी ओर वचन-पत्र लिख दिया। सुरेश ने भी वचन-पत्र लिख, पाँच सौ रुपया जमा करा दिया।

रमाकान्त ने पिता-पुत्र से सब वृत्तान्त पृथक् पृथक् बुलाकर सुना।

उसने सुरेश को बुलाकर उससे पचास हजार की बात पूछी।

सुरेश ने सब बात सत्य-सत्य बता दी। उसका कहना था कि यदि वह ऐसा न करता तो लेनदार वह रुपया भी बटवारे में ले लेते और उनके पास एक पाई भी कारोबार चलाने के लिए न रहता। वे न तो पुन. अपना कारोबार चला सकते और न ही वे लेनदार का बकाया ऋण चुकता कर सकते। थोडा झूठ अवश्य बोला है, परन्तु इसमें उद्देश्य दूषित नहीं था।

"अब यदि दुकान का बटवारा होता है तो न मेरा न पिताजी का काम चल सकेगा। व्यापार में पूँजी एक बडा साधन है। इसके बिना मेहनत-मजदूरी से कुछ बनने का नहीं।"

"तो तुम यह पचास हजार भी दुकान की जायदाद मानते हो?"

"जी हाँ। यह लुकाव-छिपाव तो तब तक ही है, जब तक ऋण उतर नहीं जाता और दुकान में से खर्चा निकालने की एक व्यवस्था नहीं बन जाती। साथ ही मेरी दो बहनें हैं और एक छोटा भाई है, जो अभी पढता है। बटवारा होने के समय अथवा खर्चा निश्चय करते समय उनका भी ध्यान रखना चाहिए।"

रमाकान्त ने दुकान का पूर्ण हिसाब ऑडिटर को देखभाल करने के लिए दे दिया। जब वहाँ से हिसाब के ठीक होने का समाचार मिल गया तो उसने अपना निर्णय दे दिया। उसका निर्णय था, "दुकान का बटवारा नहीं होना चाहिए। बटवारे के पश्चात् दुकान का चल सकना कठिन हो जायेगा। दुकान पर सुरेश को बैठना चाहिए। उसके पिछले दो वर्ष के प्रबन्ध से यह बात सिद्ध होती है कि यह योग्य है और ईमानदार है। रामस्वरूप और कमलेश का अधिकार है कि वे दुकान का लेखा स्वय पडताल करें अथवा किसी योग्य आदमी से पडताल करावें।

"दुकान की वर्तमान परिस्थिति में माता-पिता के लिए दो सौ रुपया मासिक, तथा सुरेश, उसकी स्त्री और बच्चे के लिए अढाई

सौ रुपया महीना निकलना चाहिए। कमलेश के लिए साठ रुपया महीना और पढ़ाई का खर्चा और लड़कियों के लिए पचास-पचास रुपया महीना मिलना चाहिए। अभी इससे अधिक दुकान नहीं निकाल सकती।"

इस निर्णय से रामस्वरूप को कुछ नहीं मिला, प्रत्युत उस पर प्रतिबन्ध लग गये। दुकान से खर्चा अधिक निकलने लगा, परन्तु उसको केवल दो सौ ही मिलने की व्यवस्था रही।

इस पर रामस्वरूप ने कह दिया कि वह इस निर्णय को नहीं मानता। उसका इन्कार सुन रमाकान्त ने हँसते हुए कहा, "ठीक है लालाजी! यदि आप जैसे अक्ल के अन्धे संसार में न हों तो मेरे जैसे वकीलों की कोठियाँ कैसे बनें? मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। पाँच सौ सुरेश का उसको लौटा दूँगा।"

गुल्लू का पिता रामशरण रामस्वरूप को कचहरी में ले गया और उसकी ओर से मुकद्दमा करवा दिया। रामस्वरूप का अभियोग यह था कि वह दुकान का मालिक है। उसके लड़के ने बलपूर्वक दुकान पर अधिकार कर लिया है। उसने अपनी सम्पत्ति अभी नहीं बाँटी। इस कारण लड़के सुरेश को बेदखल कर दुकान उसको दिलाई जावे।

इस अभियोग का पहिला परिणाम यह हुआ कि दुकान को ताले लग गए और दीवानी अदालत में यह मुकद्दमा चलने लगा।

भगवतस्वरूप ने इसी अवसर के लिए बैंक में अपना हिसाब देखा था। उसको विश्वास था कि रामस्वरूप अपनी स्त्री के कहने पर चल रहा है और इससे उसका कोई भी काम सीधा नहीं हो सकता। उसको जब पता चला कि गुल्लू का पिता रामशरण उसके साथ कचहरी में था, तो वह समझ गया कि वह अपनी स्त्री के अतिरिक्त एक अन्य मूर्ख के प्रभाव में भी है। दुकान के ताले लगने के अगले दिन एक रेढ़ी वाला सुरेश के घर पर खाने-पीने का सामान लादकर पहुँचा गया। सुरेश घर पर नहीं था। कान्ता ने पूछा, "यह सामान कहाँ लाये हो?"

"सुरेश बाबू के घर ।"

"किसने भेजा है ?"

"अनाज की दुकान वाले ने । यह पर्चा साथ भेजा है ।"

कान्ता ने पर्चा पढ़ा । लिखा था, "सुरेश बाबू की आज्ञानुसार यह सब सामान भेज रहा हूँ । दाम साठ रुपए पाँच आने और एक रुपया चार आने रेढी वाले की मजदूरी, कुल इकसठ रुपया नौ आने वसूल पाये । माल मिलने की रसीद लिख दें ।"

कान्ता ने माल रखवा लिया और एक पर्चे पर रसीद लिख दी । इस पर भी वह विस्मय कर रही थी कि यह क्यों किया गया है । पहिले तो इतने दिन का सामान इकट्ठा कभी नहीं आया था । इस पर भी वह कर ही क्या सकती थी । सामान में आटा, दाल, आलू, घी, नमक, मिर्च, मसाला, कोयला इत्यादि थे ।

सुरेश बहुत रात गये घर आया । उसने अभियोग की नकलें प्राप्त कर ली थीं और उनको वकील को दिखाया था । वकील का कहना था कि मुकद्दमा तो कुछ है नहीं । यह चल नहीं सकता । दो-चार पेशियों में ही ठीक हो जावेगा । वकील से राय कर वह घर लौटा तो कान्ता ने आटा-दाल-भाजी की कहानी बताई । सुरेश का कहना था कि यह सब उसने नहीं भेजा ।

"यह देखिये दुकानदार ने क्या लिखा है !"

सुरेश ने पर्चा लेकर पढ़ा तो गम्भीर विचार में डूब गया । पश्चात् बोला, "यह तो ठीक है कि किसी ने दाम दिया है । इस समय हमारे साथ हित करने वाला सिवाय तुम्हारे पिता के और कौन हो सकता है ?"

"यदि पिताजी ने भेजा है तब तो चिन्ता की बात नहीं है, परन्तु यह कब तक चल सकता है ? आपके मुकद्दमे के समाप्त होने की कब तक आशा है ?"

"कल कचहरी जाकर मैं दुकान से ताला खुलवाने की प्रार्थना करूँगा । फिर जब भी खुल जायेगा ।

"यदि दो-तीन महीने में दुकान खुल सके तब तो ठीक है, नहीं तो मुझ को कहीं नौकरी करनी पड़ेगी।"

रामप्यारी, मोहिनी और कमलेश पूर्ण घटनाचक्र से परिचित थे। इस विषय में कान्ता ने अपने पिता की नीति का अवलम्बन किया था। वह सब बात सत्य-सत्य परिवार के सब सदस्यों के सम्मुख कह देती थी। इससे उनको अपनी सम्मति बनाने में सहायता मिलती थी। रामप्यारी और कमलेश तो अब सब बात को भली भाँति समझने लगे थे। वे अपने माता-पिता के कामों के परिणामों को अपने सामने देख रहे थे।

रामप्यारी और मोहिनी, यद्यपि स्कूल नहीं जाती थीं, इस पर भी उनकी पढ़ाई, जो घर पर ही हो रही थी, स्कूल से किसी प्रकार भी कम नहीं थी। जिस दिन दुकान को ताला लगा, रामस्वरूप अति प्रसन्न वदन घर आया और आते हुए फलों की टोकरी साथ लाया। वह अपनी प्रसन्नता के उपलक्ष में रामशरण के बच्चों को खिलाना चाहता था। जब वह गली में से आ रहा था, कमलेश और रामप्यारी दोनों गली से बाहर जा रहे थे। वे घर से दुकान के सील किये जाने का समाचार सुन कर आये थे। रामप्यारी ने पिताजी को टोकरा हाथ में लिए आते देख कर मुख मोड़ लिया। कमलेश को क्रोध चढ़ आया। इस पर भी वह पिताजी को तमतमाते मुख से देखते हुए एक ओर खड़ा हो गया।

रामस्वरूप ने उनको देखा और एकाएक उसके मन में विचार आया कि कुछ फल अपने बच्चों को भी दे दे, तो क्या हानि है? इस कारण उसने आवाज़ दे दी, "रामो! ठहरो।"

वे एक ओर हट कर उसके लिए निकल जाने को मार्ग छोड़ खड़े थे। रामस्वरूप के बुलाने पर रामप्यारी ने उसकी ओर देखा। उसने टोकरी में हाथ डाल दो सेब निकाले और उनको देते हुए बोला, "लो, खाओ।"

रामप्यारी लेना नहीं चाहती थी। इस कारण वह यह कहती हुई

दो पग आगे को बढ गई, "पिताजी ! रहने दीजिये। आपके लिए कम हो जावेंगे।"

"नहीं, नहीं, लो।"

इतना कहते हुए उसने वही सेव कमलेश को देने के लिए आगे कर दिये। कमलेश ने एक उठा लिया और अपने पूरे बल से उसके सिर पर दे मारा। रामस्वरूप अपने सिर पर लगी चोट को हाथ रख कर अभी शान्त कर ही रहा था कि कमलेश ने फलो की टोकरी को हाथ मारकर उल्टा दिया। टोकरी रामस्वरूप के हाथ से छूट कर दूर जा गिरी और उसमें से फल लुढक कर बाहर जा गिरे। रामस्वरूप कमलेश के क्रोध पर अभी विस्मय ही कर रहा था कि उसने भूमि पर लुढकते हुए एक सेव को उठा कर पिता की ओर निशाना बाध कर मारने की धमकी देते हुए कहा, "भाग जाओ, मूर्ख कहीं के।"

रामप्यारी, जो अभी तक कमलेश का मुख देख रही थी, लपक कर उसके पास आई और उसकी बाँह पकड कर कहने लगी, "यह क्या कर रहे हो कमल ?"

इस समय दो पड़ोसी अपने मकानों से रामस्वरूप की हाय-तौबा सुन नीचे आ गए। कई औरतें मकानों की खिडकियों में से नीचे झाँकने लगी। रामप्यारी कमलेश की बाँह पकड कर गली से बाहर ले गई। कमलेश जाता हुआ कहता जा रहा था, "फिर तुमने ऐसा मजाक किया तो जान से मार डालूँगा।"

रामस्वरूप के माथे से लहू निकल रहा था और पडोसी उसके साथ सहानुभूति प्रकट कर रहे थे। जब कमलेश गली से बाहर चला गया तो रामप्यारी ने कहा, "यह क्या किया तुमने ?"

"मुझको क्रोध चढ आया था। वह हमको फल दिखा कर खिझा रहा था।"

"कमलेश ! वे हमारे पिता हैं।"

"हाँ, और हम उनकी सन्तान हैं।"

"तभी तुम ने उनका सिर फोड डाला है।"

"उन्होंने हमारा जीवन बरबाद कर डाला है। शत्रु भी ऐसा नहीं करते।"

"वे यह सब अनजाने में कर रहे हैं। उनका विचार है कि भैया और भाभी ने ढेरों रुपया छिपा रखा है।"

"मै जानता हूँ कि उनको कौन ऐसा बताता है और वे मूर्खों की भाँति उनका कहा मान गए हैं।"

"भाभी ने तो उनको कभी मूर्ख नहीं कहा?"

"वे बेचारी देवी है। देखो रामो! गुल्लू मुझको एक दिन बताता था कि उसकी मा और पिता आपस मे बातों-ही-बातों मे कह रहे थे कि बहुत मूर्ख बनाया है रामस्वरूप को। गुल्लू का पिता कहता था, 'मुकद्दमा चलने दो, तब मजा रहेगा।' और उसकी मा कहती थी, 'बहुत पढी-लिखी बनती थी रामो की भाभी। नाको चने न चबवाऊँ तो मेरा नाम नहीं।' और यह मूर्ख अपने बच्चों का विश्वास न कर उस धूर्त का कहा मान रहा है।"

भगवतस्वरूप को सायकाल ही पता चल गया था कि सुरेश की दुकान को ताला लग गया है। इस समाचार को सुन वह कुछ काल तक विचार करता रहा और फिर घर से निकला और एक परिचित दुकानदार से आटा-दाल इत्यादि सामान लेकर उसको सब सामान सुरेश के घर भेजने को कह आया और दाम दे आया।

जिस दिन यह सब सामान सुरेश के घर पहुँचा वह दिन भर कचहरी में घूमता रहा था। उस रात तो वह अपने स्वसुर से मिल नहीं सका। अगले दिन वह प्रातःकाल ही उनके घर पहुँचा और उनको दुकान के सील हो जाने की बात बताई। भगवतस्वरूप ने सब बात चुपचाप सुनी, मानो वे इस घटना को पहिली बार सुन रहे हो। पश्चात्

भगवतस्वरूप ने परिस्थिति को ऐसे भयकर रूप में वर्णन किया कि सब लेनदार इस कार्यवाही को करने के लिये तैयार हो गये और उन्होंने ऋण की सूची बनाई। सब से अधिक रुपया भगवतस्वरूप का था। सब मिल-मिलाकर अस्सी हजार का ऋण दुकान पर निकला। सब की सहमति से यह निश्चय हुआ कि अभी चार सौ रुपया एकत्रित किया जावे। सब को आठ आना सैंकडा खर्चा के लिये देना पडा और प्रार्थना-पत्र अदालत में उपस्थित कर दिया गया।

यह प्रार्थना-पत्र उपस्थित हुआ तो यहाँ भी रामस्वरूप की बीमारी का सर्टिफिकेट दाखिल किया गया, परन्तु सुरेश ने लेनदारों की बात को मान लिया। परिणाम यह हुआ कि रामस्वरूप सुरेश के नाम की दुकान खुल गई। हिसाब-किताब देखा गया और माल नीलाम होने की तारीख निश्चय हो गई।

इस सब प्रबन्ध के होने में छः मास लग गये। सुरेश की प्रार्थना कि दुकान की सील खोलकर रिसीवर नियुक्त किया जाये, व्यर्थ हो गई। रामस्वरूप की प्रार्थना कि दुकान उसके अधिकार मे हो जावे, स्थगित कर दी गई। जज ने इस पर आज्ञा दे दी कि दिवाला स्वीकार हो चुका है और लेनदारों को देकर यदि कुछ बचा तो उसकी प्रार्थन पर विचार कर लिया जावेगा कि उस शेष सम्पत्ति का मालिक कौन है!

रामस्वरूप ने भगवतस्वरूप से लिये गए ऋण पर भी आपत्ति की, परन्तु बही खाते में प्रमाण इतने पक्के थे कि भगवतस्वरूप का दुकान के नाम पचास हजार मान लिया गया।

दिवाले का अन्तिम निर्णय होते तक घर का खर्चा भगवतस्वरू देता रहा। प्रति मास बनिये को आटा-दाल, सब्जी वाले को आल इत्यादि सब प्रकार की भाजी-तरकारी पहुँचाने के लिये कह देता था कमलेश को अपना खर्चा वहाँ से आकर लेने के लिये कह दिया गय था। उसने कला और शोभा को कह रखा था कि वे कान्ता के घ जाया करें और रामप्यारी और मोहिनी की आवश्यकताओं को जा

आया करें। यह जानने पर वह उनकी पूर्ति का यत्न करता रहता था। इस प्रकार सुरेश का यह कठिन समय सुख से निकल गया।

नीलामी के दिन भगवतस्वरूप ने अपने एक मित्र और समझदार कपड़े का काम करने वाले को माल खरीदने के लिये कह दिया। बहुत-सा माल भगवतस्वरूप के इस मित्र ने ही खरीद लिया। पूर्ण माल, जो लगभग एक लाख रुपये का था, साठ हजार पर बिक गया। फर्नीचर भी भगवतस्वरूप ने ही ले लिया। सब मिल-मिलाकर पचपन हजार का माल भगवतस्वरूप ने खरीदा और यत्न कर उसने वह दुकान भी भाड़े पर ले ली।

इस युक्ति से भगवतस्वरूप ने पुनः सुरेश की दुकान को बचा लिया। इस बार सुरेश और रामस्वरूप दिवालिये घोषित कर दिये गए। अतएव दुकान का नाम बदल दिया गया और इसका मालिक भगवतस्वरूप स्वयं बन गया। उसने सुरेश को इसमें नौकर के रूप में रख लिया। दुकान का नाम 'ओरिएन्टल क्लॉथ स्टोर' रखा गया।

नीलाम होने पर सब लेनदारों को रुपये में चौदह आने मिले। कुछ रिसीवर की फीस निकल गई। इस प्रकार भगवतस्वरूप को पचास हजार का चवालीस हजार से कुछ कम मिला और सब माल उसने पचपन हजार से कुछ ऊपर का खरीदा था। इस कारण उसको लगभग ग्यारह हजार से कुछ ऊपर अपने पास से देना पड़ा। इस पर भी वह घाटे में नहीं रहा। पचपन में उसको लगभग पचहत्तर हजार का माल मिल गया। साथ ही वह दूकान पा गया।

नीलामी होने के एक सप्ताह के भीतर ही दुकान खुल गई और सुरेश अपने स्थान पर जा खड़ा हुआ। यथासम्भव पुराने नौकर भी बुला लिये गए। इस पर भी सब झगड़े में लेते-देते एक वर्ष व्यतीत हो गया।

एक दिन रामस्वरूप अनारकली बाजार में से गुजरा तो उसने अपनी दुकान खुली देखी। उसने खड़े होकर भीतर झांककर देखा।

वहां सुरेश खड़ा अलमारियों को पुनः पालिश करवा रहा था। बाहर नया साईन बोर्ड लगा था, जिस पर दुकान का नया नाम लिखा था। रामस्वरूप समझ गया कि भगवतस्वरूप की चाल चल गई। उसने सुरेश को दुकान ले दी है।

उसकी अपनी अवस्था बहुत ही दुर्बल हो गई थी। जब पहली बार दिवाला निकलने वाला था, तब उसने परिवार के भूषण छुपाकर गुल्लू की मा के घर रख दिये थे। यही कारण था कि गुल्लू की मा और पिता अपनी सहानुभूति उसके साथ रखते थे। इसके विपरीत कान्ता उन पर विश्वास नहीं रखती थी, इस कारण वे उसके विरोधी थे।

रामस्वरूप ने जब सुरेश को पुनः काम करते देखा तो वह मन में जल-भुन गया। घर पहुँचकर उसने गुल्लू के पिता को बुलाकर कहा, "भाई रामशरण! मुकद्दमा तो हम हार गये हैं, परन्तु यह आशा नहीं थी कि भगवतस्वरूप की नीति सफल होगी।"

"हाँ यदि ये लेनदार बीच में न कूद पड़ते तो हमारा पक्ष बहुत प्रबल था।"

"पर यह लेनदारों की चाल भी तो भगवतस्वरूप की ही चलाई हुई थी।"

"तो फिर हम क्या कर सकते थे?"

"ऐसे ही मूर्ख बन अपने पुत्र से लड़ पड़ा था।"

"भाग्यहीन चाहे कितना भी प्रयत्न करे, कुछ बनता नहीं। मैंने तो अपनी ओर से आप के लाभ की बात ही कही थी।"

"भाग्यहीन हूँ या भाग्यशाली, यह तो कहा नहीं जा सकता। हाँ यह बात तो स्पष्ट हो गई है कि मूर्ख और स्वार्थियों की बात को ठीक मान बैठा था। मैं चाहता हूँ कि आप मेरा हिसाब कर दीजिये।"

रामशरण समझ बैठा कि उसका जादू टूट गया है। रामस्वरूप उसको मूर्ख और स्वार्थी कहने लगा है। इससे वह क्रोध प्रकट कर कहने लगा, "आप मुझ को मूर्ख कहने लगे हैं क्या?"

"आप की सम्मति से ही मैं पुत्र से लड पड़ा था।"

"तो मूर्ख मैं हुआ या तुम? यदि तुम बुद्धिमान होते तो कुछ हानि उठाकर भी पुत्र से सुलह कर लेते। पर रामस्वरूप! इसको मैं तुम्हारी मूर्खता नहीं कहता। यह भाग्य का फेर था। हम जिस बात को सोना समझते थे वह पीतल निकला।"

इस प्रकार रामशरण ने झगडा बढते-बढ़ते बचा लिया, परन्तु हिसाब की बात वह टाल नहीं सका। रामस्वरूप ने स्वयं ही हिसाब बताना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "जब मैंने भूषण आप के पास रखे थे, तब उनको गलाकर सोना कर लिया गया था और एक सौ-बीस तोले सोना निकला था। सोने का भाव पेंतीस रुपया तोला है। इस प्रकार कुल चार हजार दो सौ रुपया आपके पास हुआ, जो आपने बैंक मे जमा करा दिया था। आपने बताया था कि उसका तीन रुपया सैंकडा सूद मिल रहा है। वह तीन वर्ष मे तीन सौ अठहत्तर रुपया बना। इस प्रकार मेरा कुल रुपया जो आप के पास जमा था, वह हो गया पैंतालीस सौ अठहत्तर रुपया।

"इस वर्ष मे मैं आप से तीन हजार दो सौ रुपया ले चुका हूँ। अर्थात् एक हजार तीन सौ रुपया मेरा आपकी ओर चाहिये। वह सब आप मुझ को कल दे दीजिये।"

रामशरण ने कहा, "आपका मन अभी स्वस्थ नहीं हुआ। आपकी तबीयत ठीक हो जाये तो पैसे-टके की बात करेंगे। एक वर्ष से मैं आप के घर का खर्चा दे रहा हूँ। वह अभी आप ने देना है।"

"वही तो तीन हजार दो सौ पचास गिने हैं।"

"मैं भी तो यही पूछ रहा हूँ कि यह रकम आप मुझको कब देंगे?"

"और सोने का मूल्य?"

"आपके पास सोना कहाँ से आया? आपके सब भूषण तो कुर्क हो चुके थे।"

रामस्वरूप को अब पता चला कि वह कितना धोखा खा गया है।

वहा सुरेश खडा अलमारियों को पुनः पालिश करवा रहा था। बाहर नया साईन बोर्ड लगा था, जिस पर दुकान का नया नाम लिखा था। रामस्वरूप समझ गया कि भगवतस्वरूप की चाल चल गई। उसने सुरेश को दुकान ले दी है।

उसकी अपनी अवस्था बहुत ही दुर्बल हो गई थी। जब पहली बार दिवाला निकलने वाला था, तब उसने परिवार के भूषण छुपाकर गुल्लू की मा के घर रख दिये थे। यही कारण था कि गुल्लू की मा और पिता अपनी सहानुभूति उसके साथ रखते थे। इसके विपरीत कान्ता उन पर विश्वास नहीं रखती थी, इस कारण वे उसके विरोधी थे।

रामस्वरूप ने जब सुरेश को पुन काम करते देखा तो वह मन में जल-भुन गया। घर पहुँचकर उसने गुल्लू के पिता को बुलाकर कहा, "भाई रामशरण! मुकद्दमा तो हम हार गये हैं, परन्तु यह आशा नहीं थी कि भगवतस्वरूप की नीति सफल होगी।"

"हाँ यदि ये लेनदार बीच में न कूद पडते तो हमारा पक्ष बहुत प्रबल था।"

"पर यह लेनदारों की चाल भी तो भगवतस्वरूप की ही चलाई हुई थी।"

"तो फिर हम क्या कर सकते थे?"

"ऐसे ही मूर्ख बन अपने पुत्र से लड पडा था।"

"भाग्यहीन चाहे कितना भी प्रयत्न करे, कुछ बनता नहीं। मैंने तो अपनी ओर से आप के लाभ की बात ही कही थी।"

"भाग्यहीन हूँ या भाग्यशाली, यह तो कहा नहीं जा सकता। हाँ यह बात तो स्पष्ट हो गई है कि मूर्ख और स्वार्थियों की बात को ठीक मान बैठा था। मैं चाहता हूँ कि आप मेरा हिसाब कर दीजिये।"

रामशरण समझ बैठा कि उसका जादू टूट गया है। रामस्वरूप उसको मूर्ख और स्वार्थी कहने लगा है। इससे वह क्रोध प्रकट कर कहने लगा, "आप मुझ को मूर्ख कहने लगे हैं क्या?"

"आप की सम्मति से ही मैं पुत्र से लड़ पड़ा था।"

"तो मूर्ख मैं हुआ या तुम? यदि तुम बुद्धिमान होते तो कुछ हानि उठाकर भी पुत्र से सुलह कर लेते। पर रामस्वरूप! इसको मैं तुम्हारी मूर्खता नहीं कहता। यह भाग्य का फेर था। हम जिस बात को सोना समझते थे वह पीतल निकला।"

इस प्रकार रामशरण ने झगड़ा बढ़ते-बढ़ते बचा लिया, परन्तु हिसाब की बात वह टाल नहीं सका। रामस्वरूप ने स्वयं ही हिसाब बताना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "जब मैंने भूषण आप के पास रखे थे, तब उनको गलाकर सोना कर लिया गया था और एक सौ-बीस तोले सोना निकला था। सोने का भाव पैंतीस रुपया तोला है। इस प्रकार कुल चार हजार दो सौ रुपया आपके पास हुआ, जो आपने बैंक में जमा करा दिया था। आपने बताया था कि उसका तीन रुपया सैकड़ा सूद मिल रहा है। वह तीन वर्ष में तीन सौ अठहत्तर रुपया बना। इस प्रकार मेरा कुल रुपया जो आप के पास जमा था, वह हो गया पैंतालीस सौ अठहत्तर रुपया।

"इस वर्ष में मैं आप से तीन हजार दो सौ रुपया ले चुका हूँ। अर्थात् एक हजार तीन सौ रुपया मेरा आपकी ओर चाहिये। वह सब आप मुझ को कल दे दीजिये।"

रामशरण ने कहा, "आपका मन अभी स्वस्थ नहीं हुआ। आपकी तबीयत ठीक हो जाये तो पैसे-टके की बात करेंगे। एक वर्ष से मैं आप के घर का खर्चा दे रहा हूँ। वह अभी आप ने देना है।"

"वही तो तीन हजार दो सौ पचास गिने हैं।"

"मैं भी तो यही पूछ रहा हूँ कि यह रकम आप मुझको कब देंगे?"

"और सोने का मूल्य?"

"आपके पास सोना कहाँ से आया? आपके सब भूषण तो कुर्क हो चुके थे।"

रामस्वरूप को अब पता चला कि वह कितना धोखा खा गया है।

इस कारण वह रामशरण का मुख, तितर-बितर देखता रह गया।

रामस्वरूप ने रात को अपनी पत्नी से सब बात बताई तो वह बोली, "गुल्लू की माँ ने कहा है कि गुल्लू की बड़ी बहन का विवाह है और उनको मकान खाली चाहिये।"

"तो यह बात है। बहुत बेईमान हैं ये लोग।"

"हाँ! पहिले तो मेरे सामने सदा कान्ता की निन्दा किया करते थे। अब तो दो-तीन दिन से उसकी प्रशसा होने लगी है।"

"मुझको तो समझ नहीं आ रही कि हम क्या करें? कमलेश के सामने जाते तो मुझको डर लगता है। उस दिन तो वह मुझको मार ही डालने लगा था।"

दुकान फिर चालू हो गई और काम चलने लगा। सुरेश इस पूर्ण दुर्घटना पर विचार करता था तो अपने भाग्य की सराहना करता था कि जो वह इस कठिनाई से भली भाति निकल सका है। जहाँ वह अपनी दूर-दर्शिता पर, जिससे उसने पचास हजार निकाल लिया था, प्रसन्न होता था, वहाँ भगवतस्वरूप के सहयोग के लिए वह कृतज्ञता अनुभव करता था। उसको मुहल्ले वालों से पता चल गया था कि रामशरण ने उसके पिता को भली भाँति ठगा है। हजारों रुपये के भूषण वह हजम कर गया है। उसको यह भी पता चल गया था कि उसको मकान खाली करने की आज्ञा हो चुकी है। यह सब सुनकर उस को दुःख तो होता था, परन्तु वह कुछ भी करने में विवश था। यद्यपि दुकान में लगे पचपन हजार में उसको पचहत्तर हजार का माल मिल गया था, इस पर भी भगवत-स्वरूप का इसमें ग्यारह हजार से ऊपर रुपया लग गया था। वह रुपया उसने देना था। वह समझता था कि जब तक कठिन समय मे हाथ बटाने वाले का ऋण वह चुका नहीं देता, तब तक कठिनाई उत्पन्न करने वाले की सहायता वह नहीं कर सकता। साथ ही दुकान एक वर्ष

आप दुकानदारी करना नहीं जानते।"

यह सुन रामस्वरूप का मन टूट गया। वह कुर्सी से, जिस पर वह बैठा हुआ था, ढासना लगाकर गम्भीर विचार मे मग्न हो गया। अन्त मे उसने पूछा, "तो वह मेरे लिये क्या कुछ कर सकता है?"

"मै कह नही सकता। वह तथा विशेष रूप मे कमलेश आपसे बहुत रुष्ट हैं।"

"आपने सुरेश के लिये बहुत-कुछ किया है और यदि आप कहेगे तो वह मान जावेगा।"

"मैने जो कुछ किया है वह आप से बिगाड़ा हुआ सुधारने के निमित्त किया है। अब अपने काम का प्रतिकार माँगूँ आपसे सहानुभूति, कैसी विडम्बना है यह?"

रामस्वरूप चुप कर गया। उसको अपने किये पर पश्चाताप होने लगा। उसकी आँखो से आँसू गिरने लगे। भगवतस्वरूप को उस पर दया आ गई और उसने कहा, "अच्छी बात है। आप कल प्रात. सात बजे आजाइये। मैं सुरेश को बुला छोडूँगा और उसके सामने ही बातचीत होगी।"

रामस्वरूप इस बातचीत से सन्तुष्ट नही हुआ था, परन्तु वह कर ही क्या सकता था। उसने अगले दिन प्रात.काल आना स्वीकार कर लिया। भगवतस्वरूप ने दिन चढने की प्रतीक्षा नही की। उसने शोभा को भेज रात को ही सुरेश और कमलेश को बुला लिया। दोनो भाई रात के दस बजे के लगभग आये तो भगवतस्वरूप ने उनके सामने उनके पिता की समस्या रख दी।

कमलेश दसवीं श्रेणी की परीक्षा दे चुका था और उसने कॉलेज मे पढने का विचार छोड, दुकान पर काम करना आरम्भ कर दिया था। दुकान से उसको साठ रुपये मासिक वेतन मिलता था। कमलेश को सब कुछ पता था, जिससे उनकी दुकान बची थी। वह भली भाँति समझ गया था कि यदि उसके पिता की योजना सफल हो जाती तो वह और

उसका भाई दो कौडी के न रहते।

भगवतस्वरूप से अपने पिता की अवस्था का वृत्तान्त सुन कमलेश ने कह दिया, "मैं तो परमात्मा की भूल से अपना जन्म लाला रामस्वरूप के घर हो गया समझता हूँ। वास्तव मे न वे हमारे पिता हैं न हम उनकी सन्तान हैं।"

"कमलेश! स्मरण है कि एक दिन तुमने ही मुझको यह समाचार दिया था कि गुल्लू के माता-पिता ने तुम्हारे माता-पिता को उल्लू बनाया हुआ था?"

"हाँ पिताजी! परन्तु उल्लू भी तो अपने बच्चों से वैसा व्यवहार नहीं करता, जैसा लालाजी ने हमारे साथ किया है।"

"ठीक है। पर उल्लू को गुल्लू के पिता रामशरण-जैसा मिल जाय तो पता चले कि वह अपने बच्चों से कैसा व्यवहार करता है।"

"तो आप सीख देने वाले को ही दोषी मानते हैं क्या?" सुरेश ने उत्सुकता से पूछा।

"हाँ, सीख देने वाला अपराधी है। उसने किसी बुरी नीयत से सीख दी है। परन्तु उस सीख को ग्रहण करने वाला तो केवल मात्र मूर्ख ही कहा जा सकता है। बुरी नीयत रखने वाला अपराधी है। उसको दण्ड मिलना चाहिए, परन्तु मूर्ख तो दया का पात्र ही हो सकता है।"

"इस पर भी इसके द्वारा अपार हानि होने वाली थी। परिणाम क्या होता अथवा क्या न होता, विचारणीय नहीं। विचारणीय बात तो यह है कि कार्य करने वाले की नीयत क्या थी?"

"यही बात एक उदाहरण से स्पष्ट हो जावेगी। एक पुरुष ने अपने एक मित्र को कुएँ में धकेल दिया क्योंकि वह उसकी प्रेमिका को पाना चाहता था। परन्तु वह स्वयं उसी समय जगल के रहने वालों से, देवी के सम्मुख बली चढाने के लिए पकड़ लिया गया। उनसे वह अंगहीन होने के कारण छूट गया। उस पुरुष ने पीछे अपने मित्र को, जो किसी

पथिक से कुएँ में से निकाल दिया गया था, कहा कि उसने उसको कुएँ में धकेलकर अच्छा ही किया था, अन्यथा वह भी उसके साथ जंगली लोगों से पकड़ लिया जाता और पूर्णांग होने से अवश्य देवी के सम्मुख बली चढ़ा दिया जाता। अब क्या कुएँ में धकेले जाने वाले को धकेलने वाले का धन्यवाद करना चाहिए? इसका बच जाना कुएँ में धकेलने वाले की नीयत से नहीं हुआ।

"इसी प्रकार तुम्हारे पिता तो केवल साधन-मात्र थे। उनकी नीयत तो केवल मात्र परिवार को मुफ्त लुटेरे से बचाने की थी। शेष सब भ्रम के कारण था। रामशरण ने उनके मस्तिष्क में जो कुछ ठुसेड़ दिया, वही तो उन्होंने किया।"

सुरेश को कुछ-कुछ समझ आने लगी। वह अपने पिता से किसी प्रकार का समझौता करने के लिये विचार करने लगा। इस पर भी उसने पूछ ही लिया, "तो आपके विचार में पिताजी कुछ अधिक दोषी नहीं हैं?"

"नहीं। वे इतने दोषी नहीं जितने सरलचित्त हैं। अधिक-से-अधिक तुम उनको मूर्ख मान, उनको किसी उत्तरदायी स्थान पर बैठा नहीं सकते।"

"कुछ भी हो। उनके कामों से परिवार को हानि तो हुई ही है।"

"तुम ठीक कहते हो सुरेश! और यह तुम्हारा अधिकार है कि तुम अपने और परिवार के हितों की उनके मूर्खतापूर्ण कार्यों से रक्षा करो, परन्तु तुम उनको अपराधी मान दण्ड का भागी नहीं मान सकते।"

सुरेश अपने श्वसुर की युक्तियों के सम्मुख परास्त हो गया। कमलेश कुछ उग्र स्वभाव रखता था। उसने कहा, "पिताजी! कैसे यह मानें कि उनकी नीयत ठीक थी। कौन-सा मापदण्ड है, जिससे यह जानें कि यह चित्त की सरलता थी और द्वेष भाव से नहीं था।"

"मापदण्ड है पिता-पुत्र का सम्बन्ध। इस सम्बन्ध की उपस्थिति में यह निश्चय ही है कि आपको हानि पहुँचाने के विचार से कुछ नहीं

किया गया होगा। उनको भ्रम में डालकर यह बात उनके मन में बैठा दी गई प्रतीत होती है कि उनका कार्य उनके और परिवार के भले के लिये ही था।"

कमलेश को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ। उसने कहा, "मेरे विचार में यह बात ऐसी नहीं है। मैं यह समझता हूँ कि पहले दिवाला निकलने के समय माताजी भाभी को घर में अपशकुन मान उनसे घृणा करने लगी थीं। उनके मनकी यह दूषित अवस्था को देख ही गुल्लू की माँ ने उलटी सीख देने का साहस किया था। माताजी की बात पिताजी न नहीं कर सकते।"

"तुम्हारा अनुमान ठीक ही है। इस पर भी बात तो वही है, जो मैंने बताई थी। यदि तुम्हारी माताजी ने तुम्हारी भाभी को घर में अपशकुन माना था तो यह भी चित्त की सरलता और अज्ञानता के कारण ही तो माना होगा। इस कारण मेरा यह कहना है कि उनको किसी प्रकार का अहित करने का अवसर न देते हुए, उनके खाने-पीने का प्रबन्ध कर ही देना चाहिए; अन्यथा भारी अन्याय हो जावेगा।"

अब सुरेश ने बात काटकर कह दिया, "यदि आप ऐसा कहते हैं तो हम उसमें न नहीं करेंगे। इस पर भी यह देख लीजिए कि तीसरी बार यदि कोई दुर्घटना हुई तो हम कहीं के नहीं रहेंगे।"

"अच्छा देखो। यदि एक सौ रुपया मासिक उनको दे दिया जावे और उनके पुनः हरिद्वार रहने का प्रबन्ध कर दिया जाये तो क्या ठीक नहीं होगा?"

इस प्रस्ताव को सुनकर कमलेश और सुरेश गम्भीर विचार में डूब गए। इस पर भगवतस्वरूप ने फिर कहा, "मान लो कि तुम्हारे माता-पिता के संस्कारों में कुछ खराबी है और वे उस ढंग पर विचार नहीं कर सकते, जिस ढंग पर तुम और मैं करते हैं, तो भी पिता-पुत्र में प्राकृतिक सम्बन्ध की यह माँग है कि उनको भूखा न मरने दिया जावे।"

अगले दिन यह प्रस्ताव रामस्वरूप के सम्मुख रख दिया गया

और वह मान गया। एक मास का खर्चा पेशगी देकर उनको हरिद्वार भेज दिया गया।

सुरेश के अपने माता-पिता को एक सौ रुपया मासिक देने के निश्चय को भगवतस्वरूप ने पसन्द तो किया ही था, साथ ही भूषण की बूआ लक्ष्मी ने भी सराहा था। वह प्रायः अपना समय भगवत्भजन में व्यतीत करती थी और संसार और परिवार की बातों में बहुत कम भाग लेती थी। इस पर भी वह अपने आसपास हो रही घटनाओं से आँखें मूँदे हुए नहीं थी। आत्म-संयम उसका स्वभाव हो गया था और वह बिना पूछे तथा अकारण किसी बात में बोलती नहीं थी।

कान्ता पर जो कठिनाई बीती थी वह उसने देखी थी, समझी थी और कान्ता के लिए उसके मन में सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी। वह उसकी पूर्ण परिस्थिति से परिचित थी और अपनी अन्तरात्मा से उसके लिए भगवान् से प्रार्थना करती रहती थी।

कभी महीने में एक आध बार वह उससे मिलने भी जाती थी और उसको धैर्य और साहस से कठिनाई के दिन व्यतीत करने की बात कहा करती थी। लक्ष्मी के कहने का कान्ता पर धीरे-धीरे प्रभाव भी हो रहा था।

जब भगवतस्वरूप ने सुरेश के घर रसद-पानी भेजा था और कान्ता ने इसका उसके समक्ष उल्लेख किया तो उसने इस पर सन्तोष प्रकट किया था। उसने कहा, "कान्ता बेटी! तुम्हारा पिता देवता है। उसने एक बार मेरे साथ भी यही बात की थी। तुम्हारे फूफा के देहान्त के पश्चात् जब मैं विधवा हो गई तो मेरी सास ने मुझसे घृणा करनी आरम्भ कर दी। मुझको खाने-पहिरने का कष्ट होने लगा। उस समय न जाने किस प्रकार भैया को पता चल गया तो अगले दिन दो धोती, दो चादरें और कुर्तों के लिए कपड़ा आगया। भाई की भेजी वस्तुएँ मैं

वापिस नहीं कर सकी। उस समय उसका वेतन केवल साठ रुपया मासिक था और मैं जानती थी कि कितनी कठिनाई सहन करनी पड़ी होगी उनको। इस कारण मैंने तुम्हारे पिता को बुलवा भेजा और पूछा, 'भगवती! यह सब तुमने क्यों भेजा है?'

"उसने केवल यह कहा, 'जो कुछ है बाँटकर खाने में ही तो शोभा है। मैं कल चार धोती तुम्हारी भाभी के लिए लाया था। माँ ने तुम्हारी बात कही तो दो तुमको भेज दी हैं।'

"कान्ता! तुम विस्मय करोगी कि इसके पश्चात् भैया दो वर्ष तक जो कुछ तुम्हारी माता के लिए लाते थे, उसमें से आधा मेरे लिये चला आता था। मेरी सास की मति शुद्ध हुई तो मेरी कठिनाई दूर हो गई। इस पर भी भैया कपड़ा-फल-मिठाई और सब जीवनोपयोगी वस्तुएँ तुम्हारी माता से आधी बाँटकर भेजता रहा। आखिर मुझसे एक दिन जाकर तुम्हारे माता-पिता को विश्वास दिलाना पड़ा कि मुझको किसी प्रकार का कष्ट नहीं रहा। तब जाकर यह सहायता बन्द हुई।

"इससे अब यदि उसने तुमको यह सब कुछ भेजा है, तो मेरे लिए विस्मय करने की बात नहीं। उनका हृदय सदैव अपने सम्बन्धियों के लिए स्नेह से भरा रहता है।"

हरिद्वार से आने के पश्चात् लक्ष्मी का स्नेह कला पर भी बढ़ गया था। कला में उसको एक विशेष प्रकार का आकर्षण प्रतीत हुआ था। यह आकर्षण संगीत के कारण था अथवा किसी अन्य बात के कारण, कहना कठिन है। वह प्रायः कला से भी मिलने आने लगी थी। कला की जब पढ़ाई समाप्त हुई तो वह प्रायः नित्य अपनी बुआ से मिलने जाने लगी। कला को उसकी संगति में एक विशेष प्रकार की सौम्यता अनुभव होती थी। इस मेल-मिलाप की कला के भावी जीवन पर छाप लगने लगी।

कला अब उन्नीस वर्ष की युवती हो गई थी। उसके मन में भाँति-भाँति के विकार और उद्‌गार उत्पन्न होने लगे थे। वह अपने मन की

इन बातों को अपने भाई-बहन से कह नहीं सकती थी। सब परिवार की साधारण बातें तो खाने के समय बैठक में हो जाती थीं। उनका समाधान भी वहाँ हो जाता था, परन्तु इस पर भी कुछ बातें रह जाती थीं, जो वह किसी बडी आयु की स्त्री से ही जान सकती थी। घर में मा थी, परन्तु कभी उसके पास बैठ पूछने का यत्न करती तो वह कह देती, "तुम पागल हो गई हो, कला!" और वह चुप कर जाती।

लक्ष्मी से उसकी घनिष्ठता हो गई थी। एक दिन कला के विवाह की चर्चा चली। परिवार की बैठक में जब माता ने पूछा कि अमुक लडका कला के लिए कैसा रहेगा, तो पूर्व इसके कि भगवतस्वरूप उत्तर देता, कला ने मा से कहा, "माँ! मैं सगीत सीख रही हूँ और इस विद्या में पूर्णता नहीं तो निपुणता प्राप्त करने लिए भी दस वर्ष और चाहिएँ। यदि आप ने मेरा विवाह कर दिया तो यह सब कुछ बीच में रह जायगा।"

"कुछ पागल हो रही हो कला!" माँ ने उत्तर दिया, "सगीत मनोरजन है और विवाह कर्तव्य।"

"माँ, मुझको इससे उलट प्रतीत हो रहा है।"

"अच्छा चुप रहो।"

यद्यपि भगवतस्वरूप कला की बात सुनना चाहता था, परन्तु वह विवाह और सगीत में कोई तुलना नहीं समझता था। उसके विचार में एक जीवन की आवश्यकता है। दूसरी समय व्यतीत करने का एक उपाय। इस कारण वह चुप कर रहा।

अगले दिन कला अपनी बूआ के घर गई तो अपने विवाह की बात स्वय ही करने लगी। उसने पूछा, "क्या यह आवश्यक है कि कोई विवाह करे?"

"जब तक शरीर है तब तक भूख लगती है और उसको शान्त करने का उपाय भी होना ही चाहिए।"

"पर भूख क्यों लगती है? क्या बिना खाये तृप्ति नहीं हो सकती?"

लक्ष्मी कला के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी। उसको एक बात तो समझ आ रही थी। उसका विवाह न हुए के बराबर था। इस पर भी वह जीवित है। यदि यह रोटी न खाती तो वह जीवित न रह सकती। इस प्रकार उसको भूख और सम्भोग की इच्छा मे अन्तर समझ आ गया। विचारकर उसने अपनी बात को सशोधन कर दिया। उसने कहा, "कला बेटी! मैने कहा है कि भूख निवारण करना आवश्यक है, परन्तु जब मैं विचार करती हूँ तो यह तुलना ठीक प्रतीत नहीं हुई। भूख और सम्भोग की इच्छा मे अन्तर है। लोग दोनो को समान मानते है और एक को समझाने के लिए दूसरी की उपमा देते हैं। वास्तव मे दोनों में कोई समानता नहीं। भोजन तृप्तिकारक होने के अतिरिक्त शरीर में होने वाले ह्रास की पूर्ति भी करता है। इसके विपरीत सम्भोग तृप्ति का कारण होते भी शरीर की पुष्टि में कुछ भी भाग नहीं लेता। जहाँ तक मैं जानती हूँ यह शरीर की पुष्टि करने के स्थान इसका ह्रास ही करता है।

"इस प्रकार एक तो जीवन के रखने मे आवश्यक है, दूसरा केवल तृप्ति से ही सम्बन्ध रखता है।"

"यही तो मै पूछ रही हूँ।" कला ने आँखें नीचे किये हुए कहा, "क्या अतृप्ति की अवस्था असह्य है और हानिकर है?"

"यह दोनो बातें परस्पर सम्बन्ध रखती हैं। मुख्य प्रश्न है कि क्या सम्भोग की अपूर्ण इच्छा असह्य है। मैं एक उदाहरण तुम्हारे सम्मुख रखती हूँ। एक कंजूस बनिया दिन-रात महीने के पीछे महीना और वर्ष के पीछे वर्ष मूँग की दाल और रोटी खाता रहता है। उसको चटपटे पदार्थों तथा मिष्ठान्न इत्यादि के खाने की अपूर्ण इच्छा सताती नहीं और उसको कोई हानि भी नहीं होती। इसमें कारण है। उसका ऐसे तपस्वियों का सा भोजन करने मे एक प्रबल उद्देश्य होता है। उस उद्देश्य की पूर्ति मे वह रस-स्वाद को भूल जाता है।

"इस प्रकार सम्भोग की इच्छा की पूर्ति न करना, तब ही सफल

और हानि रहित हो सकता है, जब इसमें भी कोई प्रबल उद्देश्य निहित हो। एक तपस्वी विषय वासना से ऊपर तब ही उठ सकता है, जब उसमें भगवान से मिलने की उत्कट इच्छा विद्यमान हो। यही सिद्धान्त अन्य इच्छाओं के विषय में लागू होता है।"

"बात यह है बूआ! रात माताजी ने मेरे विवाह की चर्चा चलाई थी। मैं अभी यह चाहती नहीं। मुझको कान्ता बहन के से सास स्वसुर के आशीर्वादों से अधिक संगीत में रुचि है। इस पर भी मैं यह जानना चाहती थी कि क्या यह सम्भव नहीं कि विवाह के बिना रहा जा सके?"

"तुम्हारा अभिप्राय सम्भोग के बिना है न? वह मैंने बताया है। सम्भोग को नियमित करने के लिए ही विवाह का विधान है। शारीरिक इच्छाओं पर अधिकार प्राप्त करने के लिए, इनमें लगने वाली शक्ति का अन्यत्र प्रयोग आवश्यक है।"

"तो मैं संगीत सीखने में अपनी पूर्ण रुचि लगा सकूँ, तो यह सम्भव है न?"

"हाँ। मैंने अपनी इस इच्छा पर विजय प्राप्त की है। मैं भगवत् भक्ति में ही अपनी पूर्ण शक्ति का प्रयोग करती रही हूँ और अब मैं अपनी वासनाओं पर विजय प्राप्त किये हुए हूँ।"

"मैं भी ऐसा ही करना चाहती हूँ। बूआ! आशीर्वाद दो कि मैं अपने प्रयास में सफल हो सकूँ।"

इस प्रकार दो वर्ष और व्यतीत हो गये। कला की संगीत में प्रवीणता की ख्याति घर से बाहर भी फैलने लगी और उसके संगीत के सुनने की माँग सभा समाजों में भी होने लगी। कला ऐसे स्थानों पर जाकर संगीत के प्रदर्शन को पसन्द नहीं करती थी। फिर भी कभी-कभी लोग इतना आग्रह करते थे कि इन्कार करना कठिन हो जाता था।

इस पर भी दिन-प्रतिदिन उसका अनुभव और इच्छा सार्वजनिक सभाओं के विपरीत ही हो रही थी।

एक बार एक राष्ट्रीय सभा में सस्वर वंदे मातरम् गीत गाने की आवश्यकता पड़ी तो सभा का आयोजन करने वाले कला के शिक्षक के पास पहुँचे। उसने कला से कहा और कला ने न कर दी। कला का कहना था, "उनको कह दीजिये कि वंदे मातरम् का ग्रामोफोन रिकार्ड बजा लें।"

मास्टर ने वैसा ही आयोजन करने वालों को कह दिया। आयोजन करने वालों में मुख्य एक श्री कृष्णचन्द्र उपाध्याय थे। इस सभा का प्रबन्ध श्री कृष्णचन्द्र के सुपुत्र गोविन्द प्रसाद कर रहे थे। पिता ने पुत्र को बुलाकर कहा, "गोविन्द! कला ने वंदे मातरम् गाने से न कर दी है।" उसका कहना है कि हम सभा में ग्रामोफोन रिकार्ड बजा लें।"

"पिताजी! वह बहुत अच्छा गाती है। मैंने उसको गान्धर्व महाविद्यालय के उत्सव पर यह गीत गाते हुए सुना है।"

"यह तो ठीक है। पर वह मानती नहीं तो क्या करें?"

"मुझको स्वीकृति दें तो मैं स्वयं मिलकर निश्चय करने का यत्न करूँ।"

"हाँ! हाँ!! करो न।"

"मैं समझता हूँ कि उसको कुछ देना पड़ेगा।"

"क्या?"

"बीस-तीस रुपये तो देने ही होंगे। अधिक-से-अधिक पचास में काम हो जावेगा।"

"कुछ हानि नहीं। इतने का प्रबन्ध हो जावेगा।"

गोविन्दप्रसाद कला के मास्टर को साथ लेकर कला के घर जा पहुँचा। अध्यापक महोदय ने गोविन्द का परिचय कराया, "आप हैं श्री कृष्णचन्द्र बैरिस्टर के सुपुत्र गोविन्दप्रसाद एम० ए०। आप अपना पूर्ण समय राजनीति में ही लगा रहे हैं। आप ही पिछले वर्ष मोहल्ला

बच्छोवाली में से म्यूनिसिपल कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए हैं और अब आप केन्द्रीय लैजिस्लेटिव असैम्बली की सदस्यता के लिए खड़े होने वाले हैं। इनके पिता अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा के मनोनीत प्रधान के स्वागत में लाहौर में एक सभा कर रहे हैं। वहाँ उनको अभिनन्दन पत्र भी दिया जायगा। उस समय वंदे मातरम गीत के लिए आपसे कहने आये हैं।"

"मास्टर जी! मैंने तो आपसे पहले ही कह रखा है कि मैं वहाँ गाने नहीं जाऊँगी।"

"मैंने आपका सन्देश अक्षरशः इनको और इनके पिताजी को दे दिया था।"

"तब इनको यहाँ आने का कष्ट करने की आवश्यकता नहीं थी।"

इस पर गोविन्दप्रसाद ने कहा, "आपका हास्यप्रद प्रस्ताव कि ग्रामोफोन रिकार्ड बजा लें, सुना तो यह निवेदन करने की लालसा जाग पड़ी कि आपका कण्ठ स्वर संसार के किसी दूसरे प्राणी का-सा नहीं है।"

"इसीलिए ही तो कह रही हूँ कि उसको सुनने की योग्यता होनी चाहिए। इस कण्ठ स्वर के बनाने के लिए घोर तपस्या करनी पड़ी है और इसको श्रवण करने के लिए भी तपस्या की आवश्यकता है। आपकी सभा के श्रोतागणों में इस योग्यता होने की आशा नहीं करती।"

"यह आप कैसे कहती हैं? आज हमारी राष्ट्रीय सभा के प्रधान को भारत की कोयल के नाम से स्मरण किया जाता है और आप कहती हैं कि उसको गाना सुनने की अक्ल नहीं। आपको अपने पर बहुत गर्व हो गया प्रतीत होता है।"

गोविन्द प्रसाद का विचार था कि इस थोड़ी-सी डाट पर कला मान जावेगी, परन्तु हुआ इसके विपरीत। उसने कहा, "क्षमा करें। मैंने आपके माननीय नेता के विषय में कुछ नहीं कहा। मैंने तो सभा में उपस्थित जन-साधारण की बात कही थी। यदि तो केवल आपके प्रधान महोदय होते तो शायद मैं यह बात न कहती। मैं सार्वजनिक

सभाओं में गाना सुनाना पसन्द नहीं करती।"

"पर आपने उस दिन गान्धर्व महाविद्यालय के अधिवेशन में तो गाया था?"

"हाँ, वह संगीतज्ञों की सभा थी। वहाँ जन-साधारण के जाने की आशा नहीं थी। यदि कोई भूल से वहाँ चला भी गया होगा तो अकेला होने से संगीत का अपमान नहीं कर सका था।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यहाँ भी कोई किसी प्रकार की अपमानजनक बात नहीं कर सकेगा। हम सब वंदे मातरम् गीत को राष्ट्रीय गीत का-सा मान देते हैं।"

"आप मेरी बात को समझे नहीं। राष्ट्रीय गीत तो ग्रामोफोन पर बजने पर भी राष्ट्रीय गीत ही रहेगा। उस गीत का मान उसके गाने वाले के स्वर से सम्बन्ध नहीं रखता। उस गीत के लिए मान उसकी भाषा तथा उसमें व्यक्त भाव के कारण है। ये दोनों तो रहेंगे ही।"

"भाषा के साथ मधुर स्वर भी मिल जाये तो क्या हानि है?"

"मुझको हानि है। मैंने अपने कण्ठ को सिद्ध इसलिए नहीं किया कि सर्व साधारण को सुनाती फिरूँ।"

"आप वहाँ चलने की फीस ले लीजिए।"

"यह तपस्या कोई वकालत की योग्यता नहीं है, जो फीसों पर बिकती फिरेगी। मैं नहीं जाऊँगी आप क्षमा करें।"

गोविन्दप्रसाद इस लड़की के दृढ़ संकल्प पर बहुत परेशान था। इस पर भी वह हार मानने पर तैयार नहीं हुआ। उसने फिर कहा, "मेरा विचार है कि सभा में दस सहस्र जन एकत्रित होंगे। वे इस गीत को मान से सुनेंगे। इस गीत के बहाने आपके स्वर और आपकी संगीत प्रवीणता का ज्ञान-लाभ करेंगे। इसमें आपकी ख्याति बढ़ेगी और आप यश की भागी होंगी।"

जहाँ एक नेता के लिए सम्मान की भावना सफल नहीं हुई, जहाँ धन का लोभ असफल रहा, वहाँ गोविन्दप्रसाद का विचार था कि यश

बच्छोवाली में से म्युनिसिपल कमेटी के सदस्य निर्वाचित हुए हैं और अब आप केन्द्रीय लैजिस्लेटिव असैम्बली की सदस्यता के लिए खड़े होने वाले हैं। इनके पिता अखिल भारतीय राष्ट्रीय सभा के मनोनीत प्रधान के स्वागत में लाहौर में एक सभा कर रहे हैं। वहाँ उनको अभिनन्दन पत्र भी दिया जायगा। उस समय वंदे मातरम गीत के लिए आपसे कहने आये हैं।"

"मास्टर जी! मैंने तो आपसे पहले ही कह रखा है कि मैं वहाँ गाने नहीं जाऊँगी।"

"मैंने आपका सन्देश अक्षरशः इनको और इनके पिताजी को दे दिया था।"

"तब इनको यहाँ आने का कष्ट करने की आवश्यक्ता नहीं थी।"

इस पर गोविन्दप्रसाद ने कहा, "आपका हास्यप्रद प्रस्ताव कि ग्रामोफोन रिकार्ड बजा लें, सुना तो यह निवेदन करने की लालसा जाग पड़ी कि आपका कण्ठ स्वर संसार के किसी दूसरे प्राणी का-सा नहीं है।"

"इसीलिए ही तो कह रही हूँ कि उसको सुनने की योग्यता होनी चाहिए। इस कण्ठ स्वर के बनाने के लिए घोर तपस्या करनी पड़ी है और इसको श्रवण करने के लिए भी तपस्या की आवश्यक्ता है। आपकी सभा के श्रोतागणों में इस योग्यता होने की आशा नहीं करती।"

"यह आप कैसे कहती हैं? आज हमारी राष्ट्रीय सभा के प्रधान को भारत की कोयल के नाम से स्मरण किया जाता है और आप कहती हैं कि उसको गाना सुनने की अक्ल नहीं। आपको अपने पर बहुत गर्व हो गया प्रतीत होता है।"

गोविन्द प्रसाद का विचार था कि इस थोड़ी-सी डाट पर कला मान जावेगी, परन्तु हुआ इसके विपरीत। उसने कहा, "क्षमा करें। मैंने आपके माननीय नेता के विषय में कुछ नहीं कहा। मैंने तो सभा में उपस्थित जन-साधारण की बात कही थी। यदि तो केवल आपके प्रधान महोदय होते तो शायद मैं यह बात न कहती। मैं सार्वजनिक

सभाओं में गाना सुनाना पसन्द नहीं करती ।"

"पर आपने उस दिन गान्धर्व महाविद्यालय के अधिवेशन में तो गाया था ?"

"हाँ, वह सगीतज्ञों की सभा थी । वहाँ जन-साधारण के जाने की आशा नहीं थी । यदि कोई भूल से वहाँ चला भी गया होगा तो अकेला होने से सगीत का अपमान नहीं कर सका था ।"

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यहाँ भी कोई किसी प्रकार की अपमानजनक बात नहीं कर सकेगा । हम सब वदे मातरम् गीत को राष्ट्रीय गीत का-सा मान देते हैं ।"

"आप मेरी बात को समझे नहीं । राष्ट्रीय गीत तो ग्रामोफोन पर बजने पर भी राष्ट्रीय गीत ही रहेगा । उस गीत का मान उसके गाने वाले के स्वर से सम्बन्ध नहीं रखता । उस गीत के लिए मान उसकी भाषा तथा उसमें व्यक्त भाव के कारण है । ये दोनों तो रहेंगे ही ।"

"भाषा के साथ मधुर स्वर भी मिल जाये तो क्या हानि है ?"

"मुझको हानि है । मैंने अपने कण्ठ को सिद्ध इसलिए नहीं किया कि सर्व साधारण को सुनाती फिरूँ ।"

"आप वहाँ चलने की फीस ले लीजिए ।"

"यह तपस्या कोई वकालत की योग्यता नहीं है, जो फीसों पर बिकती फिरेगी । मैं नहीं जाऊँगी आप क्षमा करें ।"

गोविन्दप्रसाद इस लडकी के दृढ संकल्प पर बहुत परेशान था । इस पर भी वह हार मानने पर तैयार नहीं हुआ । उसने फिर कहा, "मेरा विचार है कि सभा में दस सहस्र जन एकत्रित होंगे । वे इस गीत को मान से सुनेंगे । इस गीत के बहाने आपके स्वर और आपकी सगीत प्रवीणता का ज्ञान-लाभ करेंगे । इससे आपकी ख्याति बढ़ेगी और आप यश की भागी होंगी ।"

जहाँ एक नेता के लिए सम्मान की भावना सफल नहीं हुई, जहाँ धन का लोभ असफल रहा, वहाँ गोविन्दप्रसाद का विचार था कि यश

और कीर्ति प्राप्त करने की लालसा सफलता देगी। उसका यह विचार भी सत्य सिद्ध नहीं हुआ। कान्ता का उत्तर था, "मैं यश और कीर्ति की अभिलाषा रखती हूँ, परन्तु यह अयोग्यों और गँवारों के मुख से नहीं। यदि ससार मे एक भी योग्य और सभ्य व्यक्ति मेरी प्रशसा करता है तो मुझको लाखों अयोग्यों की अवहेलना की चिन्ता नहीं।"

गोविन्द प्रसाद मन में विचित्र भावना लेकर लौटा। वह और कला का शिक्षक चले आ रहे थे। दोनों अपने-अपने विचारों में लीन थे। शिक्षक यह समझ रहा था कि गोविन्द के पिता उससे रुष्ट हो जावेंगे। गोविन्द मन में विचार कर रहा था कि इस लड़की का मान-मर्दन करना चाहिए। उसने पूछा, "इसके पिता क्या करते है ?"

"एक अग्रेजी कम्पनी में मैनेजर हैं। काफी वेतन पाते हैं।"

"चलो उनसे मिलें।"

"गोविन्द भैया! कुछ लाभ नहीं होगा। यह उनकी ही शिक्षा है, जो इस लडकी के मुख से बोल रही थी।"

"बहुत उद्दण्ड हैं ये लोग। आज नगर-भर की पूर्ण जनता पूज्य नेता के चरणों पर आँखें बिछाने को तैयार हो रही है और एक ये हिन्दुस्तानी हैं, जो न जाने अपने को क्या समझते हैं।"

सगीताचार्य इस विषय पर वादविवाद करना नहीं चाहता था। उसके मन में भगवतस्वरूप के लिए भारी मान था। वह चुप कर रहा। गोविन्द से रहा नहीं गया। उसने कहा, "मास्टर जी! आपने इस लडकी को कुछ भी शिक्षा नहीं दी।"

"गोविन्द बाबू! सगीत की शिक्षा तो देता हूँ, परन्तु आचार में यह मुझसे बहुत श्रेष्ट है। मैं इसको भला क्या शिक्षा दे सकता हूँ ?"

"तो क्या इसका वदे मातरम् गाने के लिए जाने से न कर देना कोई श्रेष्ठ बात है ?"

संगीतचार्य फिर चुप कर गया। इससे गोविन्द को कुछ सन्देह हो गया कि वह भी लडकी के व्यवहार को उचित ही मानता है। इस

कारण उसने मास्टर की ओर ध्यान से देखा और कहा, "शायद आप भी इसी विचार के हैं, जिसकी वह है।"

इस प्रकार बार-बार पूछे जाने पर मास्टर ने मन की बात कह दी, "गोविन्द जी! यदि एक कलाकार की दृष्टि से विचार करूँ तो मुझको कला का कहना ठीक ही प्रतीत होता है। आप इतना दुःख क्यों अनुभव कर रहे हैं। वंदे मातरम् गाने वाले दस अन्य विद्यार्थी वहाँ एकत्रित कर दूँगा।"

"पर मैं उसको वहाँ खड़ा कर उससे यह गान कराना चाहता था। कितना सुन्दर प्रतीत होता, यदि वह श्वेत परिधान में स्वर्गीय अप्सरा की भाँति मातृ-वन्दना करती। सभा को चार चाँद लग जाते।"

"तो यह बात है।" मास्टर ने टेढ़ी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कहा, "संगीत के अतिरिक्त कुछ और भी आकर्षण है।"

गोविन्द हँस पड़ा और बोला, "तो यह कोई अनुचित भावना है क्या?"

"यदि विवाह का विचार हो तो अनुचित नहीं कही जा सकती।"

"विवाह की बात इसमें कहाँ से आ गई? मैं तो केवल सौन्दर्य का उपासक हूँ और इसको कोई अनुचित भावना नहीं मानता।"

"उपासना तो हो सकती है। गोविन्द भैया! पर उपासना के अर्थ समझते हैं न आप?"

"हाँ। क्या एम० ए० फोकट में पास किया है?"

"उपासना समीप बैठने को कहते हैं। यह दो प्रकार की होती है। एक तो शरीर से शरीर के समीप होना और दूसरे आत्मा का आत्मा के समीप। बताइये कौनसी उपासना चाहते हैं?"

"शरीर की। मैंने तो उसका शरीर ही देखा है।"

"बहुत तुच्छ वस्तु देखी है। उस शरीर के भीतर उससे बहुत अधिक श्रेष्ठ उसकी आत्मा है।"

"मेरी उसकी ओर रुचि नहीं है।"

"तो शरीर भी नहीं पा सकोगे गोविन्द ! उसका शरीर उसकी आत्मा के अधिकार में है।"

"मास्टर जी ! आप तो ऐसे कह रहे है जैसे आपने उसके अन्त-रात्मा के भीतर घुसकर निरीक्षण किया है।"

"इतना तो आप समझ ही सकते हैं कि मैंने उसको घंटों ही संगीत का अभ्यास करते सुना और देखा है।"

"संगीत करते समय आत्मा का दर्शन होता है ?"

"इसमें सन्देह ही नहीं। जो गाना तुम टिम्बी बाजार में सुनते हो, वह तो सत्य संगीत के जूते झाड़ने की भी क्षमता नहीं रखता। कला को गाते सुनो तो पता चले।"

"यही सुनने के लिए तो कहने गया था।"

"भरी सभा में चार पद वन्दे मातरम् के सुनने से क्या आत्म-निरूपण होगा ?"

"तो मास्टरजी ! घंटों सुनवाइये।"

"जिज्ञासा के भाव से कभी गान्धर्व महाविद्यालय के साप्ताहिक अधिवेशन में आओ और फिर वहाँ कला का गाना हो तो कुछ झलक उसके अन्तरात्मा की मिल जायेगी।"

"पर वहाँ आ-आ आ · जो करने लगते है, वह मुझको नहीं भाता।"

"समझने और स्वाद लेने का यत्न करो। जब यह कर सकोगे तब ही गाने वाले की आत्मा की झलक पा सकोगे।"

घर पर जब पिता को, गोविन्द ने अपनी असफलता की बात बताई तो वह हंस पड़ा और कहने लगा, "तुम समझते हो कि लैक्चर देकर अनपढ़ जनता को भड़काने की योग्यता रखने से तुम सब कुछ कर सकने की योग्यता रखते हो।"

गोविन्द चुप कर रहा।

कला ने दूसरे दिन अपने शिक्षक को भर्त्सना के भाव में कहा,

"मैंने जब आप से कह दिया था कि मैं उस सभा में गाने नहीं जाऊँगी तो आप फिर उनको साथ क्यों लाये थे ?"

"कलादेवी ! वह एक सार्वजनिक कार्यकर्ता है। जनता की सेवा करता है। इस कारण जब उसने कहा तो मैं, इच्छा न रखता हुआ भी, न नहीं कर सका।"

"मैं ऐसे लोगों से मिलना नहीं चाहती। मेरा आधा घंटा व्यर्थ ही गया। वही समय मैं अपने अभ्यास में व्यय करना चाहती थी।"

"मैंने अपने विचार से कोई बुरी बात नहीं की। आप योग्य हैं और मैं चाहता था कि आप का यश लोक में फैले।"

"पर मैं यह नहीं चाहती। मास्टरजी यश और कीर्ति तो तपस्वियों की चेरी होती है। मैं तपस्या का समय व्यर्थ गँवाना नहीं चाहती।"

घर के वातावरण में द्रुत गति से परिवर्तन हो रहा था। भगवत-स्वरूप काम से रिटायर होने वाला था। रिटायर होने के समय उसको तीस हजार रुपया पुरस्कार-भेंट मिलने वाली थी। उसका विचार था कि इस रुपए से वह शोभा और कला का विवाह कर, हरिद्वार जाकर अपना शेष समय शान्ति से व्यतीत कर सकेगा।

इसी विचार से वह कला और शोभा के लिए योग्य वर ढूँढ रहा था। कई माता-पिताओं की ओर से प्रस्ताव आ रहे थे और नियमानुसार उनकी चर्चा रात के भोजन के समय हुआ करती थी। अभी तक तो जितने भी प्रस्ताव आये थे, कला और शोभा के माता-पिता ने स्वयं ही अस्वीकार कर दिये थे। दोनों लड़कियाँ घर की प्रथानुसार इन प्रस्तावों को चुप-चाप सुना करती थीं। अभी तक न तो उनसे किसी के विषय में राय ली गई थी और न ही दोनों बहनों ने इस विषय में कुछ कहने की आवश्यकता समझी थी। इस पर भी वार्तालाप दिन-प्रतिदिन अधिक और अधिक निर्णयात्मक होता जाती थी। अन्त में एक दिन

कला के लिए कहने का अवसर आ ही गया। उसने कहा, "पर पिताजी ! इतनी जल्दी की क्या आवश्यकता पड़ी है ? आपको स्मरण होगा कि भूषण भैया के लिए मीना भाभी को चार वर्ष तक कठोर तपस्या करनी पड़ी थी।"

"मीना की बात दूसरी थी। वह एक दूसरे समाज मे जाने वाली थी। उसको उस दूसरे समाज के सस्कार सीखने और ग्रहण करने थे। तुम्हारे विषय मे तो अपने समाज का ही वर ढूँढ रहे हैं। कठिनाई यह हो रही है कि हमारी ही दृष्टि मे कोई लड़का जँच नहीं रहा।"

"इसी कारण तो मै कहती हूँ कि आप इसकी चिन्ता क्यो करते हैं। जहाँ मेरा भाग्य बँधा होगा, मै चली जाऊँगी। मेरी अभी विवाह करने की इच्छा नही होती।"

इसने भगवतस्वरूप की चिन्ता को कुछ कम कर दिया। वह भी भगवान् भरोसे हो गया। उसी रात कला अपने नियमानुसार गा रही थी। उसने तानपूरा उठाया और मालकौस अलापना आरम्भ कर दिया। भगवतस्वरूप अपने कमरे मे लेटा हुआ उसके गाने की भन-भनाहट सुनने लगा। वह भनभनाहट स्वरालाप मे बदल गई और पश्चात् वह गाने लगी।

"हा स···नि्ध् सनि् स ध् नि् स ग्· ·सग्मग्स · आ आ · आ"

आज कला के स्वर मे अवर्णनीय माधुर्य था। परिवार के लोग जाग रहे थे और इस स्वरमाधुरी से सम्मोहित हो रहे थे। भगवतस्वरूप उठकर पलग पर बैठ गया और सुनने लगा। कला गा रही थी,

"गोविन्द हरे ! गोविन्द हरे !!"

इस 'गोविन्द हरे' को उसने मालकौस राग मे ही पचासो बार गाया और प्रत्येक बार नवीन प्रकार से ही गाया। ऐसा प्रतीत होता था कि वह इसके गाने के समय अति शान्तचित्त थी। गोविन्द नाम की चट्टान पर बैठी वह अडिग प्रतीत होती थी। अब वह एक संस्कृत का

पद गाने लगी।

'विहरति हरिरिह सरस वसन्ते।
नृत्यति युवति जने समं सखि विरहि जनस्य दुरन्ते।
चन्दन चर्चित नील कलेवर पीत वसन वनमाली।
केलि चलन्मणि कुण्डल मंडित गंड युगस्मित शाली।
हरिरिह मुग्ध वधू निकरे विलसित विलसित केलि परे।
गोविन्द हरे! गोविन्द हरे ' !'

वह गाती गई, 'भई विलीन मैं तव प्रगार मे।
एक बूँद मैं सागर तुम हो
धूरि का कण हूँ नभ तुम हो।
गया अहं तव मधुराकार मे। भई विलीन ' ।
गोविन्द हरे! गोविन्द हरे!'

इस रात के पश्चात् भगवतस्वरूप को साहस नहीं हुआ कि कला के विवाह की चर्चा रात के भोजन के समय करे।

शनिवार के दिन गान्धर्व महाविद्यालय में साप्ताहिक अधिवेशन हुआ करता था। कला प्रायः उसमें सम्मिलित हुआ करती थी और दो-तीन मास में एक बार वह गाया भी करती थी। आज वह वहाँ गई तो वहाँ के अध्यक्ष ने उसको मंच पर आने का निमन्त्रण दे दिया। कला नहीं चाहती थी। परन्तु जब अध्यक्ष ने आग्रह कर कहा, "कलादेवी! आपका संगीत सुनने के लिए हम महीनों ही उत्सुकता से प्रतीक्षा करते रहते हैं। आज नित्य से अधिक समारोह भी है।"

"इसी से तो मुझको संकोच हो रहा है। सब मेरा आदर कर बैठे रहते हैं। गुरुजनों को भी कष्ट होता है।"

इस पर भी वह सब उपस्थितजनों का आग्रह टाल नहीं सकी। जब वह मंच पर आई तो श्रोतागणों में गोविन्दप्रसाद को देख एक क्षण के लिए वह झिझकी, पश्चात् मुस्कराई। उसका विचार था कि वह बीच में ही उठकर चला जावेगा। उसको इस संगीत में रस नहीं

आ सकता। वह समझती थी कि जनता के नेता जनता के आचार-विचार के प्रतीक होते हैं। वह यह जानती थी कि लाहौर की जनता गजलें और ठुमरियाँ सुनने की शौकीन है।

एक दो बार वह सार्वजनिक सभाओं में जाकर देख चुकी थी। उसके गाने के समय या तो लोग परस्पर बातें करने लगते थे, या उठकर चले जाते थे। इसी कारण उसने यह निश्चय कर लिया था कि वह संगीतज्ञों की सभा के अतिरिक्त अन्य कहीं भी गाने के लिए नहीं जायगी। वहाँ यदि उसके गाने की आलोचना होती थी, तो वह उसके लाभ के लिए ही होती थी।

इस प्रकार विचार कर उसने गोविन्दप्रसाद का विचार मन से निकाल दिया और अपना संगीत आरम्भ कर दिया। सायंकाल का समय था। उसने राग पीलू में एक बहुत ही साधारण पद गाया।

'रघुवर तुमहो मेरी लाज।
सदा सदा मैं शरण तिहारी।
अघ खण्डन दुख भंजन मन के।
यही तिहारो काज। रघुवर ··।'

राग विद्या के जानने वाले तो स्वर, ताल, लय की देख-भाल में लगे रहे। जनसाधारण को गीत के बोल ही समझ में आते थे, परन्तु जब वे संगीत के इन बाहरी रूपों को सुन-सुनकर ऊब गए तो वे अनुभव करने लगे,ताललय, स्वर, आलाप, तान इत्यादि के भीतर कुछ और है, जो इन सबसे अधिक रसमय है।

गोविन्द प्रसाद ने जब 'रघुवर तुमहो ··।' सुना तो उदास हो गया। वह यह गीत अपनी छोटी बहन से, अपनी बड़ी बहन से और अपनी मा से तथा दादी से अनेकों बार सुन चुका था। उसके ज्ञान में तीन पीढियाँ हो गई थीं, जो इस गीत को गा रही थीं। इस कारण कला से भी इसी गीत को सुन, उसका उत्साह फीका पड़ गया। कला के शिक्षक ने उसको कहा था कि कुछ देर बैठने, समझने और रस-स्वाद

करने का यत्न करने पर बहुत कुछ प्राप्त होता है। इस कारण पहले कुछ समय तो वह यही समझता रहा कि उसका एक आवश्यक सार्वजनिक आयोजन छोड़ना व्यर्थ ही हुआ। वह अपने सब कार्य रात्रि के दस बजे तक छोड़कर आया था। इस कारण और कुछ काम न होने के कारण वह वहाँ बैठा समय व्यतीत कर रहा था। सबसे पहले उसका ध्यान कला की योग्यता की ओर तब आकर्षित हुआ, जब वह बोल तान गाने लगी थी। इसमें उसको कुछ मिठास और कुछ आकर्षण प्रतीत हुआ। वह उसके गाने की ओर ध्यान देने लगा। कुछ देर तक इस प्रकार सुनने पर उसको तानालाप में एक ऐसी मिठास अनुभव होने लगी, जिसको वह अनुभव तो करने लगा, परन्तु समझ नहीं सका। पश्चात् उसको कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि वह एक अगाध विश्वास का प्रदर्शन कर रही है।

धीरे-धीरे उसके स्वर गाने के बोलों के अतिरिक्त भी कुछ कह रहे प्रतीत होने लगे। उसके सम्मुख कुछ ऐसा चमत्कार-सा अनुभव होने लगा कि कला के चारों ओर से तरंगें उठी रही हैं और वे तरंगें श्रोतागण के हृदयों को आन्दोलित करती हुई जा रही हैं। वह अपने को तो ऐसा अनुभव करने लगा था कि आँखों और कानों के माध्यम के बिना हृदय, हृदय की बात समझने लगा है।

वह देख रहा था कि मनुष्य कितना दुर्बल प्राणी है। प्रकृति की शक्ति कितनी विशाल, व्यापक और विराट् है कि मनुष्य अपने को सर्वथा निःसहाय पाता है। भवसागर में पर्वताकार उठ रही तरंगों पर कला एक तिनके के समान बह रही है। इस पर भी वह प्रत्येक तरंग के निकल जाने पर ऊपर भगवान की ओर देखती हुई उभर आती है और पूर्ण विश्वास से इस विशाल भवसागर को पार करती हुई दिखाई देती है।

एक क्षण के लिए उसके मन में विचार आया कि उसको झपकी आ गई और वह स्वप्न देख रहा है, परन्तु अगले क्षण पुनः उसको दिखाई

देने लगा कि एक पूर्ण अन्धकारमय स्थान पर एक आलोक बिन्दु है। वह आलोक कला को चारों ओर से लपेटे हुए है। उसने पुन. सिर हिला-कर नींद से जागने का यत्न किया। इस बार यत्न करने पर भी वह उस आलोक को आँखों से ओझल नहीं कर सका। उस आलोक के मिट जाने के स्थान कला उस आलोक में घुलती हुई प्रतीत होने लगी। जैसे कोई चित्र पानी से घुलता हुआ अपनी पृष्ठभूमि के समान होता जाता है, वैसी ही बात कला से होती प्रतीत हो रही थी। वह उस आलोक-बिन्दु में विलीन हो रही प्रतीत हुई।

कुछ ही समय में केवल आलोक रह गया प्रतीत होने लगा और उस आलोक से उठ रही तरगें उस सभा में चारों ओर व्याप्त हो रही दिखाई देने लगीं। अब ये तरगें चित्त को उल्लसित करने लगी थीं। वह मूर्तिवत् बैठा उस आलोक को देख एक विचित्र प्रकार का आनन्द अनुभव कर रहा था।

कला का गाना दो घण्टे तक चलता रहा। सगीत के गुणज्ञों ने देखा कि ज्यूँ-ज्यूँ समय व्यतीत होता जाता है, उसके स्वर में किसी भी प्रकार की शिथिलता प्रकट होने के स्थान, उसमें स्पष्टता तथा शुद्धता अधिक और अधिक होती जाती है।

जब कला ने सगीत समाप्त कर तानपूरा मच पर लिटा दिया तो कितनी ही देर तक श्रोतागण मूर्तिवत बैठे रहे, मानो अभी कुछ और होने वाला है। एकाएक विद्यालय के अध्यक्ष ने उठकर कला देवी का धन्यवाद किया तो लोग चेतन जगत् में आ गए। वे अब भी कला के मुख पर एक अलौकिक छवि देख रहे थे।

सब उठ खड़े हुए। गोविन्दप्रसाद मन्त्र मुग्ध खडा देख रहा था कि कला मच से उतरी है, सभा में उपस्थित लोगों को नमस्कार कर चल पडी है। श्रोतागण, कुछ तो उसको द्वार तक छोडने गए और कुछ इधर-उधर छितर गए और परस्पर कला की प्रशसा करने लगे।

एकाएक उसको विचार आया कि वह मोटर गाड़ी साथ में लाया

है। कला के पास कोई सवारी नहीं होगी। इससे वह द्वार की ओर भागा और कला के समीप जा कहने लगा, "कला देवी! चलिए। मोटर गाडी में छोड आता हूँ।"

कला अपने लिए बुलाये गए टाँगे के समीप खडी अपने संगीत-शिक्षक से कुछ रही थी।

कला का ध्यान भग हुआ। वह गोविन्द को सभा के अन्त तक बैठे देख विस्मय करती हुई बोली, "तो आप अभी तक यहाँ हैं? नहीं! धन्यवाद! मैंने टाँगा मँगवा लिया है और गुरुजी मेरे साथ जा रहे हैं।"

"तो टाँगे वाले को दाम दे देता हूँ। मोटर में आप जल्दी पहुँच जाइयेगा।"

"मुझको घर पर कुछ विशेप काम नहीं। मोटर तो उन लोगों के लिए है, जिनका एक-एक क्षण भी मूल्यवान होता है।"

गोविन्द ने फिर कहा। परन्तु कला ने टाँगे में बैठते हुए कहा, "नहीं आप जाइए। अच्छा, मैं जा रही हूँ।" उसने सबकी ओर घूम-कर कहा और टाँगा चल पडा।

गोविन्द ने भगवतस्वरूप से परिचय उत्पन्न किया। उनको अपने यहाँ चाय पर कई बार आमन्त्रित किया और फिर उनके घर आने-जाने लगा। कला उसको आता देख विस्मय करती रही। वह समझ नहीं सकी कि उसका पिताजी से क्या कार्य हो सकता है। उसके पिता सार्व-जनिक सभा-समाजों में नहीं जाते थे। अपना परिवार ही उनका समाज था और इसको वह चलाने में अपना पूर्ण कौशल प्रयोग करते रहते थे।

एक बार भगवतस्वरूप दफ्तर से आया ही था कि गोविन्द वहाँ आ पहुँचा।

"आइये गोविन्दजी! कैसे आना हुआ है?" भगवतस्वरूप ने पूछा।

"यह पडोस के मुहल्ले मे हम स्वदेशी आन्दोलन के विषय में एक सार्वजनिक सभा कर रहे है। मैंने विचार किया है कि आपको उस सभा का प्रधान बनाया जाये।"

"नहीं! मैं अपने को इस काम के अयोग्य समझता हूँ।"

"वाह! इसमें योग्यता-अयोग्यता की कौन सी बात है?"

भगवतस्वरूप ने गोविन्द को बैठक में ले जाकर बिठाया और कहा, "देखिए! मैं आपको अपने विचार बताता हूँ। एक होता है देश का गवर्नर जनरल। उसको पूर्ण देश की चिन्ता रहती है। दूसरे स्थान पर हैं प्रान्त के गवर्नर। इनको अपने-अपने प्रान्त की चिन्तायें रहती हैं। कोई भी गवर्नर अपने प्रान्त से बाहिर कुछ भी कार्य नहीं कर सकता। इसी प्रकार कमिश्नरी के कमिश्नर हैं और जिलों के डिप्टी कमिश्नर। प्रत्येक अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते हैं। उसी में वे अपनी व्यवहार कुशलता को प्रकट करने के अधिकारी होते हैं। यही बात सर्वसाधारण की है। देश के नेता हैं, प्रान्तों के नेता हैं और फिर जिलों, नगरों और कस्बों के नेता हैं। मैं अपने परिवार का नेता हूँ और मेरा अधिकार नहीं कि परिवार की परिधि छोड़कर, मुहल्ला अथवा नगर की समाज में हस्तक्षेप करूँ। मैं अपने इस छोटे से राज्य को ही भली भाँति चलाने में लगा हुआ हूँ। न तो मेरे में क्षमता है और न ही अवकाश कि मैं अपने कार्य को और विस्तृत कर सकूँ।"

"अब तो आप दफ्तर से रिटायर होने वाले हैं न? आपको अब बहुत अवकाश मिलेगा और आपको अपना कार्यक्षेत्र बढ़ाना चाहिए।"

"जब रिटायर होऊँगा तब देखूँगा कि कितना समय है और कितना कार्य है। अभी तो मैं क्षमा चाहता हूँ।"

"मैं तो समझता हूँ कि अपने को इतना स्वार्थ पर केन्द्रित रखना ठीक नहीं। कुछ तो समाज की सेवा प्रत्येक व्यक्ति को करनी ही चाहिए।"

"मैं अपने परिवार को सुव्यवस्थित रखने को स्वार्थ-कार्य नहीं सम-

भता। देश में प्रत्येक परिवार समाज का एक अंग है अर्थात् एक इकाई है। यदि हम, जो परिवारों के मुख्य पुरुष हैं, अपनी इकाई को ठीक रखें तो समाज स्वयं ही ठीक हो जावेगा अतएव मैं भी सामाजिक सेवा तो कर रहा हूँ, यद्यपि उसका क्षेत्र एक छोटा सा है।"

इस समय शोभा पिता के लिए चाय बनाकर ले आई। भगवत-स्वरूप ने कहा, "एक प्याला इनके लिए भी ले आओ। हाँ, और कला कहाँ है?"

"वह विद्यालय जाने की तैयारी कर रही है। आज शनिवार है।"

"उसको कहो चाय पी ले। अभी समय है और फिर वह टाँगे में चली जायेगी।"

एक प्याला और आ गया और कला भी आ गई। वह गोविन्द-प्रसाद को देख मुस्कुराई और नमस्ते कर चाय पीने बैठ गई। शोभा ने चाय बनाई और सब के सम्मुख पीने के लिए रख दी। जब कला पीने लगी तो गोविन्द ने पूछा, "कला देवी! क्या गान्धर्व महाविद्यालय जा रही है?"

"जी।"

"आज भी आपका प्रोग्राम है क्या?"

"नहीं! आज भास्कर राव जी का संगीत है। वे पूना से आये हुए हैं।"

"अच्छा गाते हैं क्या?"

"बहुत ही योग्य हैं।"

"मैं भी चलूँ क्या?"

"चल सकते हैं।"

गोविन्द यही तो चाहता था। भगवतस्वरूप समझ गया कि गोविन्द के लिए कला आकर्षण का केन्द्र बन रही है। जब चाय समाप्त हुई तो भगवतस्वरूप ने कहा, "तांगा कर लेना कला! शोभा! तुम भी जा रही हो क्या?"

"तो मत जाओ। घर पर बैठकर कुछ काम करो। तुम्हारी मा बाहिर से आयेंगी तो थकी होंगी। उनकी सहायता करना।"

"मेरी मोटर गली के बाहिर खड़ी है। चलिए कला देवी! उसमें चलेंगे।"

आज कला न नहीं कर सकी। दोनों गली से निकले और मोटर के पास जा खड़े हुए।

जब गोविन्द मोटर चलाने वाले के स्थान पर बैठ गया तो कला पिछली सीट पर जा बैठी। गोविन्द ने समझा कि निपट गवार है। इस कारण उसने कहा, "आप आगे आईये।"

"नहीं। भला मै आप के बराबर कैसे बैठ सकती हूँ?"

"क्यों, मुझमें क्या है?" कला ने गाडी का पिछला दरवाजा बन्द कर दिया। विवश गोविन्द ने भी आगे का दरवाजा बन्द कर लिया और गाडी स्टार्ट करने लगा। स्टार्ट करते हुए उसने कहा, "कलादेवी! क्षमा करना, यदि मैं कुछ वह कहूँ जो रुचिकर न हो। आप के पीछे बैठने से तो यह बात प्रकट होती है कि रानी जी कहीं जा रही हैं और गाडी का ड्राईवर गाडी चला रहा है।"

"मैं जानती हूँ कि पाश्चात्य समाज में मेरा इस प्रकार बैठना असभ्यता का लक्षण माना जाता है। परन्तु मैं तो उस समाज की कन्या नहीं हूँ। मैं तो भारतीय समाज की पुत्री हूँ और इस समाज में नारी की मान-प्रतिष्ठा के लिये लोग उससे सटकर नहीं बैठते। प्रत्युत उससे पीछे हटकर बैठते हैं। यहाँ तक कि सब लोगो के सामने पति भी अपनी पत्नी के साथ में न बैठता है और न उसे बैठने को कहता है।"

"यह कोई अच्छी बात है क्या?"

"मैं तो अभी बच्ची हूँ। समाज की प्रथाओं पर व्यवस्था देने का काम मेरा नहीं। जो हमारे पूज्य हैं, वे जब इस रिवाज को वर्जित कर

देंगे, तब हम भी वैसा ही करने लगेंगे।"

"मेरे पिता तो पाश्चात्य ढंग को ठीक समझते हैं।"

"तो आप उनकी पुत्री को अपने साथ, जब मोटर में ले जाइयेगा, बैठा लीजियेगा! देखिए, गोविन्द जी! आप मोटर खड़ी कर दीजिये और मैं नीचे उतर जाती हूँ।"

"क्यों?"

"आप हैं पाश्चात्य सभ्यता में पले हुए। आप के रीति-रिवाज के अनुसार मुझको आप के साथ वहाँ बैठकर आपका आदर करना चाहिये। मैं हूँ पूर्वी सभ्यता में शिक्षा पाई लड़की। मेरे समाज के अनुसार मेरा आपके साथ वहाँ बैठना, आपका और अपना अनादर करना है। इस समस्या का सुझाव तो यही है कि आप अपनी मोटर में जाइये और मैं जाने के लिये तांगा पकड़ लेती हूँ।"

"नहीं! नहीं! कला देवी! मैं कम-से-कम आज के दिन पूर्वी समाज को ही ठीक मान लेता हूँ। मैंने तो मोटर में जाने वाले समाज की रीत बताई है, परन्तु जो दृष्टिकोण आपने समझाया है वह भी विचारणीय तो है ही।"

कला मुस्करा कर चुप कर रही। कुछ दूर चलकर गोविन्द ने कहा, "उस दिन आपका संगीत बहुत ही बढ़िया रहा। मैं भी, जो शास्त्रीय संगीत को कभी पसन्द नहीं करता, उस दिन तो मन्त्रमुग्ध हुआ बैठा रहा था।"

"मैं तो यह समझती थी कि आप केवल मात्र मेरा आदर करने के लिए बैठे रहे थे, अन्यथा आपको वे दो घन्टे तो एक यन्त्रणा रूप हो गये होंगे।"

"नहीं, नहीं, यह बात नहीं। आपके स्वर में, आपके गाने में और फिर गाने की विधि में कुछ ऐसी विशेषता थी कि उठने को जी नहीं किया। पद तो आपने एक ही गाया था, परन्तु उस पद के प्रत्येक बार गाने पर उसमें प्रत्येक बार नवीनता आती प्रतीत होती थी।"

"आप यदि यह सब कुछ मुझसे बनाने के लिए नहीं कह रहे, तो मै समझती हूँ कि आपमे सगीत समझने की योग्यता कुछ तो है।"

"इसी कारण तो मै प्रायः प्रति शनिवार विद्यालय के साप्ताहिक अधिवेशन मे जाता हूँ। यद्यपि आप जैसा गाने वाला अभी और कोई नहीं आया तो भी मुझको इस सगीत मे रस आने लगा है।"

"देखिये। मैं आपको एक बात बताती हूँ। एक हरे पौदे की डाल यदि भूमि मे लगाई जाये तो वह जड पकड लेती है और फिर फलने-फूलने लगती है। इसके विपरीत सूखी लकडी को अच्छी से-अच्छी भूमि और खाद मिलने पर भी जड नहीं पकडती। यही बात मानव-मन की है। कई मनुष्य किसी दूषित वातावरण मे रहकर अपने आत्मा और मन को सुखा देते हैं और वे फिर अच्छे से-अच्छे वातावरण मे भी हरे भरे नहीं हो सकते। सगीत भी एक प्रकार का वातावरण है, जो मन और आत्मा को जीवन रस प्रदान करता है। इस पर भी वे मन और आत्मा जो सर्वथा शुष्क हो गये है, इससे भी हरे-भरे नहीं हो सकते। उन के लिये ससार मे उन्नति करने की कोई आशा नही हो सकती।"

"तो आप समझती है कि मेरी अवस्था अभी निराशाजनक नहीं है?"

"यह मेरे समझने की बात नही है। यह तो आपके अनुभव करने की बात है। आप अपने को बनाने का यत्न न करिये। स्वाभाविक रूप मे रहिये और फिर देखिये कि आपका मन आपको क्या प्रेरणा देता है। इसीसे ही यह पता चल सकता है कि आपकी आत्मा सूखी लकडी की भाँति मर चुकी है अथवा उसमे अभी जीवन लाभ की शक्ति है।"

इस समय वे विद्यालय के द्वार पर पहुँचे गए। गोविन्द ने गाड़ी खडी की और कला के लिए गाडी का द्वार खोल आदर सहित खडा हो गया।

भास्कर राव एक प्रसिद्ध गायक थे। उन्होंने अपनी कला से श्रोता-गणों को आनन्दित किया। पश्चात् उन्होंने कहा, "इस विद्यालय के अध्यक्ष महोदय ने मुझको बताया है कि कलादेवी का संगीत अति श्रेष्ठ और शास्त्रीय पद्धति के अनुसार होता है। इससे मेरे मन में लालसा जाग पड़ी है कि कुछ उनकी कला से ग्रहण करूँ। मैं कल यहाँ से विदा हो रहा हूँ और आज देवीजी यहाँ सभा में विद्यमान भी हैं। इस कारण उनसे आदर सहित निवेदन करता हूँ कि कुछ थोड़ा-सा समय दें और हमें कृत्य-कृत्य करें। आप सभ्य गणों से निवेदन है कि आप मेरी इस प्रार्थना का समर्थन करने की कृपा करें।"

कला अनिश्चित् मन बैठी रह गई। इस पर विद्यालय के अध्यक्ष ने कला के समीप जाकर पूछा, "क्या उत्तर दूँ मैं?"

"गुरुदेव! आपने भारी असमंजस में डाल दिया है। कलाविज्ञों का अनादर मैं नहीं कर सकती। इस कारण मैं आपकी आज्ञा मानने के लिए विवश हूँ।"

अध्यक्ष ने बहुत प्रसन्न हो कला का निर्णय सुना दिया।

गोविन्दप्रसाद कला के इस सुगमता से मान जाने पर विस्मय करता रहा। उसको उस दिन की बात स्मरण हो आई जब उसने वंदे मातरम् के दो पद गाने के लिए उसकी मिन्नत की थी और देश के प्रमुख नेता तथा देश की एकमात्र राष्ट्रीय संस्था के प्रधान का नाम भी उसको गाने के लिए तैयार नहीं कर सका था।

दस मिनट में कला तैयार होकर आ गई और तानपूरा, जो वह इस समय से स्वर कर रही थी, लेकर मञ्च पर जा बैठी। आज उसने तानालाप नहीं किया। उसने सीधा ही एक पद उठा लिया और उसे गाने लगी। उसने गाया—

"गोविन्द हरे गोविन्द हरे। हरे हरे गोविन्द हरे।
गोविन्द हरे गोविन्द हरे। हरे हरे गोविन्द हरे।"

इसी के बोल-तान में एक घण्टा व्यतीत हो गया और जब उसने समाप्त

किया तो भास्कर राव ने कला देवी की भूरि भूरि प्रशंसा की।

घर लौटते समय गोविन्द का साहस नहीं हुआ कि वह उसको अपने समीप बैठने के लिये कहे। उसने चुपचाप गाड़ी की पिछली सीट का द्वार खोलकर आदर सहित उसको बैठाया और स्वयं आगे की सीट पर बैठकर गाड़ी चलाने लगा। आज उसको कला का एक दूसरा रूप दिखाई दिया। वह कला में प्रवीण तो थी ही, साथ ही उसको गाते समय उस की आत्मा बोलती हुई प्रतीत हुई। उसको कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि उसमें और कला में भारी अन्तर है और उस अन्तर को पार करने के लिए शायद कई जीवन व्यतीत करने होंगे।

गली के बाहर मोटर पहुँची तो कला के मोटर से उतरने के पहले ही गोविन्द ने कहा, "कला देवी! तनिक ठहरिये। एक बात मेरे मन में है। वह मैं कहना चाहता हूँ।"

कला दरवाजा खोलती-खोलती रुक गई और ध्यान से उसकी बात सुनने लगी। गाड़ी में अंधेरा था और गोविन्द ने उसमें प्रकाश करने की आवश्यकता नहीं समझी। उसने घूमकर कहा, "मेरी उत्कट इच्छा हो रही है कि आपके चरणों में बैठ सकूँ।"

"छी! छी! क्या आप मेरी हँसी करना चाहते हैं। आप आयु में, शिक्षा में और अनुभव में मुझसे बड़े हैं।"

"यह हँसी नहीं देवी! मुझको उपाय बताओ कि मैं कैसे यह सौभाग्य प्राप्त कर सकता हूँ?"

"मैं तो यह नहीं समझती कि मैं कोई विशेष महानता रखती हूँ। इस पर भी यदि आपको मुझमें कोई भी अच्छी बात दिखाई देती है तो उसको प्राप्त करने का यत्न करिये। कोई वस्तु नहीं जो मनुष्य की पहुँच से बाहर हो। किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए ठीक ढंग से किये प्रयत्न को ही तपस्या कहते हैं।"

इतना कह वह मोटर का दरवाजा खोल नीचे उतर आई और हाथ जोड़ नमस्ते कर गली में चली गई।

कला घर पहुँची तो भूषण और मीनाक्षि आये हुए थे। बिना सूचना उनके आने पर उसको आश्चर्य हुआ और वह पूछने लगी, "चिट्ठी ही भेज दी होती। कुशल तो है?"

मीना ने मुस्कराकर कला की ओर देखा। वह अब सज्ञान हो गई थी। चार वर्ष के काल में उसमें भारी परिवर्तन हो गया था। उसमें एक पूर्ण युवति होने के लक्षणों के अतिरिक्त बहुत ही शान्त और सुशील स्वभाव का आभास हुआ। वह कला को अपने साथ लेकर बैठ गई और कहने लगी, "मैं तो पाँच-छः मास के लिए यहाँ रहने आई हूँ। तुम्हारे भाई कह रहे थे कि माता-पिता की सेवा करने का अवसर मिले बहुत दिन हो गये हैं। इस कारण वह सौभाग्य लेने यहाँ चली आई हूँ।"

"हूँ समझी।" इस समय तक कला की दृष्टि मीना भाभी के कुछ बढ़े हुए पेट की ओर चली गई थी।

इस समय शोभा कला के लिए एक थाली में भोजन ले आई थी। सब लोग खा चुके थे। इस कारण बैठक में ही उसके खाने का प्रबन्ध कर दिया गया था। भूषण अपने माता-पिता के बीच बैठा बातचीत कर रहा था।

जब भाभी से बातचीत हो चुकी तो कला का ध्यान भूषण की ओर चला गया। माता-पिता और भूषण को गम्भीर मुख देख वह कुछ बोली नहीं और उनमें हो रही बातचीत सुनने का यत्न करने लगी। भगवतस्वरूप भूषण को कह रहा था, "यह वास्तव में बहुत ही कठिन परिस्थिति है। अफसरों ने अपने खर्चे इतने बढ़ाये हुए हैं कि केवल मात्र वेतन पर निर्वाह नहीं कर सकते। उनका ठेकेदारों से सीधा सम्पर्क हो नहीं सकता। इस कारण वे चाहते हैं कि छोटे अफसर उनका हिस्सा ठेकेदारों से लेकर दें।"

"जी। ठीक है और मैंने अपने चीफ इन्जीनियर को कह दिया है कि न तो मैं एक पाई किसी से लेता हूँ और न ही मैं किसी को कुछ दे

सकता हूँ। इस पर उसने कहा, 'मुझको बहुत खेद है कि मैं तुम्हारी कुछ भी सहायता नहीं कर सकता। स्थानीय अफसर, यदि तुम्हारे विरुद्ध हो रहे हैं तो तुम्हारा वहाँ रहना असम्भव है।'

"उसने यह भी कहा, 'तुम कहीं भी बदल दिए जा सकते हो परन्तु इस विषय में तुम्हारी परिस्थिति में अन्तर नहीं आ सकता। ये अफसर लोग सब स्थान पर एक समान हैं।'"

कला केवल इतनी बात से ही समझ गई कि कुछ दुर्घटना हो गई है अथवा होने वाली है, जिस कारण से भूषण को एकाएक लाहौर आना पड़ा है।

भगवतस्वरूप ने भूषण के कहने का उत्तर इस प्रकार दिया, "कुछ चिन्ता की बात नहीं है। मेरा पूर्ण जीवन एक इन्जीनियरिंग कम्पनी में काम करते हुए व्यतीत हुआ है। मुझको इमारतों, सड़कों इत्यादि के निर्माण-कार्य का बहुत कुछ ज्ञान है। यदि तुम नौकरी छोड़कर ठेकेदारी करने का विचार रखते हो तो मैं तुम्हारी बहुत कुछ सहायता कर सकूँगा। हाँ कम-से-कम बेईमानी करने के लिए बड़े बड़े सरकारी ठेकों की लालसा छोड़ छोटी-छोटी कम्पनियों और साधारण मालिकों के काम करने होंगे। एकदम धनी बनने की लालसा छोड़ साधारण स्तर पर काम करना होगा।"

भूषण ने कहा, "यदि आप राय दें तो मैं स्वयं ही त्याग-पत्र देकर चला आऊँ। पीछे बदनाम होकर निकलने से तो स्वयं छोड़ आना ही ठीक रहेगा।"

"देखो भूषण! अगले मास मैं रिटायर होने वाला हूँ और मुझे इस अवसर पर लगभग तीस हजार रुपया की ग्रेचुईटि मिलने वाली है। कुछ रुपया और भी मेरे पास है। तुम आकर कार्य आरम्भ कर सकते हो। तुम्हारी बहिनों के विवाह के लिए कुछ रुपया चाहिए, परन्तु मुझको इसकी चिन्ता नहीं। जो इनके भाग्य में है, वह इनके लिए स्वयं चला आवेगा।"

भूषण जानता था कि पिताजी की बात सदैव निर्णयात्मक होती है। जब बात हो गई तो उसने वह मन से निकाल दी। बार-बार किसी विषय पर सोचने का अभ्यास भगवतस्वरूप को नहीं था। इतना निर्णय हो जाने पर भूषण ने बात का विषय बदल दिया। उसने कला से कहा, "कला! कैसी हो? दिन-भर क्या करती रहती हो? कालेज तो तुम जाती नहीं।"

"आप तो अब आ ही रहे हैं। स्वयं ही देख लीजियेगा कि मुझको कालेज जाने के लिए अवकाश ही कहाँ है?"

"पर प्रश्न तो यह है कि कालेज जाने से क्या कोई अधिक उत्तम बात करती हो?"

"यह तो विवाद का विषय खड़ा कर दिया है भैया! शोभा और मेरे में यह संवाद तो पहिले ही चल चुका है और पिताजी ने उसमें यह निर्णय दिया है कि 'मच कैन बी सैड ऑन बोथ दि साईड्स।'

भूषण हँस पड़ा और पूछने लगा, "पर मैं तो तुम्हारे विचार पूछ रहा हूँ। शोभा के नहीं।"

"मैंने स्वेच्छा से कालेज में पढ़ने से न की है और अपनी इच्छा से संगीत सीखती हूँ। इस कारण मेरे विचारों का तो प्रश्न ही नहीं उठता।"

भूषण दिल्ली में रेलवे मेम्बर से मिलकर आया था। उसने भी यही कहा था कि वह उसकी रक्षा नहीं कर सकता। यदि उस पर कोई झूठा मुकद्दमा बनाया जायेगा और वह उसमें निर्दोष सिद्ध न हो सका तो वह हस्तक्षेप नहीं कर सकेगा। इस प्रकार के उत्तर से निराश होकर ही वह अपने पिता से राय करने चला आया था। भगवतस्वरूप ने उसके सम्मुख एक सुझाव रखा था। दो बातें स्पष्ट थीं। एक तो उसको अपने मन में से अफ़सरी की बू निकालनी पड़ेगी और दूसरा सरकारी ठेकों की लालसा का त्याग करना पड़ेगा। भूषण साधारण ढंग से रहना सीखा हुआ था। इस कारण वह इस सुझाव को मान गया।

मीनाक्षि छठे मास में थी। इस कारण उसका लाहौर रहना आवश्यक था। वास्तव में भूषण उसी को छोड़ने आया था और मार्ग में एक दिन दिल्ली ठहर लाहौर पहुँच गया था।

अगले दिन वह और मीनाक्षि विनोद से मिलने गए। उनको उसकी कोठी की अवस्था बहुत ही बिगड़ी हुई प्रतीत हुई। घास की लान में मिट्टी उड़ रही थी। मेहन्दी की बाड़ बेकतरी हुई खड़ी थी। फूलों के पौदे सूख गये थे। गमले प्राय: टूट रहे थे। कोठी की सफेदी हुए कई वर्ष हो चुके थे। भूषण ने कोठी की अवस्था को देखा तो पहले उसको सन्देह हुआ कि शायद वह किसी गलत कोठी में घुस आया है, परन्तु बाहर नाम उसके भाई का ही लिखा था।

भीतर जाकर उसने बैरा को देखा तो पहचान गया। वह पुराना नौकर था। उसने भूषण और मीनाक्षि को पहिचान सलाम की। भूषण के पूछने पर उसने बताया, "साहब तो दफ्तर गए हैं और मेम साहब अपने पिता के घर चली गई हैं।"

"कब तक आने को कह गई हैं?"

"वे नहीं आवेंगी। अपने बच्चों को लेकर वहाँ रहने लगी हैं यहाँ साहब अकेले रहते हैं।"

"साहब किस समय आवेंगे?"

"शाम को चार बजे चाय पीने आते हैं। रात का खाना वे क्लब में खाते हैं और ग्यारह बजे आकर सो रहते हैं।"

"यह कोठी का क्या हो रहा है पचु?" मीनाक्षि ने पूछा।

"हजूर नौकर सब चले गए हैं। कोई देखने वाला नहीं रहा मैं भी यहाँ पड़ा हूँ और अब तबीयत नहीं लगती।"

"यह सब क्यों है?"

"मैं तो जानता नहीं कि असल बात क्या है? एक दिन साहब और मेम साहब में झगड़ा हुआ और मेम साहब अगले दिन अपने पिता के घर चली गईं। इसको एक वर्ष हो चुका है। इसके पश्चात् साहब ने

अपना रहन-सहन बदल दिया है। यह कोठी तो केवल रात के सोने के लिए सराय रह गई है। नौकरों को वेतन मिलना बंद हो गया और धीरे-धीरे सब चले गए। मुझको भी एक वर्ष से वेतन नहीं मिला। मेरा कोई है नहीं इस कारण यहीं पड़ा हूँ।"

इस समय सायंकाल के साढ़े तीन बजे थे। भूषण ने कोठी में लगे टेलीफोन से विनोद को दफ्तर में बुलाया और अपनी तथा मीनाक्षि की कोठी में प्रतीक्षा करने की बात बताई। इस पर विनोद ने कहा, "सेसिल में आ जाओ। वहाँ मैं आपकी प्रतीक्षा करूँगा।"

"घर पर क्यों नहीं?"

"वहाँ कुछ है नहीं। जो कुछ है सब नौकर खा गए होंगे। होटल में चाय पीयेंगे और पीछे सिनेमा देखने चलेंगे।"

भूषण ने विवश होटल जाना स्वीकार कर लिया। वे वहाँ से होटल में जा पहुँचे।

वहाँ विनोद उनसे पहिले पहुँच चुका था। उनके वहाँ पहुँचते ही बैरा चाय लगाने लगा। विनोद ने पहिले ही आर्डर दे रखा था।

भूषण ने अपने मन में उठ रही बात को और अधिक काल तक दबा रखना कठिन पा कहा, "भैया! घर पर भाभी नहीं थीं। कहाँ हैं वे?"

"अपनी माँ के घर।"

"कब से?"

"एक वर्ष से ऊपर हो गया है।"

"पर क्यों?"

"मुझसे लड़कर चली गई थी। उसके जाने के पश्चात् मैंने कोठी में खाना बंद कर दिया है। अब मैं विचार कर रहा हूँ कि सीटोज होटल में एक कमरा लेकर रहने लग जाऊँ। ढाई सौ में बोर्डिंग तथा लॉजिंग मिल जायेगा। इस प्रकार पाँच सौ में सब खर्चा चल जायगा। दो सौ रुपया नलिनी को देता हूँ और सौ रुपया दोनों बच्चों के लिए।"

"पर ऐसा क्यों करते हैं आप ? भाभी को घर ले आओ। इससे खर्चा बच जावेगा।"

"नहीं भूषण ! तुम नहीं जानते। वह नहीं आवेगी और··"

विनोद कहता-कहता रुक गया। वह चाय पीने लग गया। मीनाक्षि को भी नलिनी का माँ के घर जाकर रहना सुन दुःख हुआ। उसने ज्यूँ-त्यूँ कर चाय पेट मे डाली और बोली "जीजा जी ! पिता जी से मिले हैं आप ?"

"नहीं ! उनको व्यर्थ मे कष्ट देना नहीं चाहता था। कोई अच्छी बात होती तो बताने जाता भी।"

"आज चलिए। उनको बताना चाहिए।"

"क्यों ?"

"वे घर के पुरखा हैं। कोई मार्ग सुझा सकते हैं।"

"इस विषय मे वे कुछ नही कर सकते। नलिनी मुझको तलाक देने का यत्न कर रही है। कठिनाई यह है कि रोमन कैथोलिक ढग से मेरा विवाह हुआ था और उसमें तलाक पोप की विशेष स्वीकृति से ही हो सकता है। प्रथा यह है कि पोप सिवाय किसी असाध्य रोग होने की अवस्था के अथवा पुरुष के नपुसक होने की अवस्था के अन्य किसी भी सूरत मे तलाक स्वीकार नहीं करता। न तो मै बीमार हूँ और न ही नपुसक।"

"पर मै पूछता हूँ कि तलाक ही क्यो ? भैया ! तुमने भाभी मे कुछ दोष पाया है क्या ?"

"कुछ दोष होगा भी तो मै मुख से नहीं निकालूँगा।"

चाय समाप्त हुई तो वे उठ खड़े हुए। विनोद ने उनको सिनेमा चलने का निमन्त्रण दे दिया। इस पर मीनाक्षि ने पूछा, "तो क्या आप पिताजी से मिलना नहीं चाहते ?"

"नहीं, यह बात नही। मेरे चाहने का प्रश्न नहीं। बात उनके चाहने की है। मेरी अपनी समस्याएँ उनकी समस्याएँ बन जावेगी और

उनको दुःख तथा क्लेश होगा।"

इस पर भूषण ने कहा, "भैया! जो कुछ मैं कोठी में देखकर आया हूँ उसके पश्चात् हमारा चित्त सिनेमा देखने को नहीं करता। इतना कुछ हो गया और आपने हममें से किसी को बताया नहीं। यह अति खेद की बात है। माना कि आप हम सबसे बड़े और बुद्धिमान् हैं, इस पर भी हम आपके दुःख में साझीदार तो हो सकते हैं।"

"मैं चलने को तैयार हूँ, परन्तु जब दो व्यक्तियों का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हो तो उनके दुख में साझीदार बनने का कुछ अर्थ नहीं। यह केवल मौखिक सहानुभूति ही तो होती है।"

"कुछ भी हो। पिताजी आयु और अनुभव में हम सबसे अधिक हैं। साथ ही उनकी बात यदि आपको पसन्द न आये तो वे आपको विवश नहीं करेंगे। उनके हाथ में कोई दण्ड-विधान नहीं है जो आज्ञा दे सकें।"

विनोद को मीनाक्षि और भूषण खेंच कर घर ले गए। भगवत-स्वरूप विनोद को देखकर उसका मुख देखता रह गया। उसको विनोद से मिले छः वर्ष से ऊपर हो चुके थे। इन छः वर्षों में उसमें भारी अन्तर आ चुका था। एक शराब पीने वाले की आँखें, अति विषय-भोग करने वाले का पीत मुख तथा रात्रि में देर तक जागने वाले की गति में अस्थिरता ये सब विनोद में दिखाई देने लगी थीं। इस पर भी उसने प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा, "आओ विनोद! आखिर तुमने याद तो किया कि यहाँ भी कोई तुम्हारा है।"

विनोद बैठा तो भगवतस्वरूप ने सुशीला को आवाज देकर बुला लिया। माँ भी विनोद को देख प्रसन्न हुई। कला और शोभा भी विनोद का आना सुन अपने कमरे से आ गईं। इस प्रकार पूर्ण परिवार एकत्रित हो गया। सब विनोद को चारों ओर से घेरकर बैठ गए। विनोद की

मा ने पूछा, "नलिनी और बच्चों को नहीं लाये ?"

विनोद ने बात टालने का यत्न किया परन्तु भूषण उसकी सहायता के लिए बोल पड़ा, "भाभी अपनी मा के घर थीं। वे कुछ अस्वस्थ हैं। हम कल उनसे मिलने जायेंगे।"

"क्या कष्ट है ?"

"कुछ है जो डाक्टर भी नहीं जान पाते।" भूषण ने बहुत चिन्ता प्रकट करते हुए कहा।

"तो उसको वैद्य चुनीलाल को दिखाते।" सुशीला ने कहा।

"हम कल उनका हाल पूछेंगे तो फिर यह सुझाव रख देंगे।"

विनोद भूषण को इस प्रकार बात टालता देख मुस्कराकर बोला, "यही चिकित्सा के विषय में मै राय करने आया हूँ।"

"यदि पिताजी हमारे साथ कल भाभी को देखने चलें तो क्या हानि है ?" मीनाक्षि ने कहा।

"हाँ चल सकता हूँ। कब चलोगे ?"

"प्रात. सात बजे टैक्सी लेकर चल देंगे। विनोद भैया वहाँ पहिले ही पहुँच जायेंगे।

"माताजी ! जीजाजी आज भोजन यहीं करेंगे।"

जब विनोद कला और शोभा तथा मीनाक्षि से बातें कर रहा था और सुशीला रसोई में खाना तैयार कर रही थी, उस समय भूषण ने कोठी की अवस्था, जो पचु ने बताई थी और जो विनोद ने की थी, सब कुछ पिताजी को बता दी। भगवतस्वरूप यह सुन अत्यन्त ही दु.खी हुआ और बहुत ही चिन्ता अनुभव करने लगा। उसने कहा, "भूषण ! मैं नलिनी से मिलने नहीं जाऊँगा। तुम मीनाक्षि के साथ जाना और उससे मिलकर सब बात जान लो और फिर उसको यहाँ लाने का यत्न करो। यदि वह नहीं आई तो फिर चलेंगे। एक बात जो मेरे मन में है, वह यह कि पति-पत्नी में सन्धि करा देनी चाहिए। मुझको सन्देह है कि विनोद में कुछ तो दोष अवश्य है और उसका ज्ञान नलिनी से मिलने

पर ही होगा। जब तक दोनों पक्षों की बात पता न चले तब तक समस्या सुलझ नहीं सकती।"

"तो हम कल नलिनी से मिलने जावेंगे। आप विनोद से और जो-कुछ पता चल सके, जानने का यत्न करिये। यह तो था ही कि इनका व्यय आय से अधिक था। विनोद कोठी का खर्चा चला नहीं सका। वह नौकरों को वेतन दे नहीं सका, जिससे सब काम बिगड़ गया है।"

रात भोजनोपरान्त परिवार बहुत देर तक बातें करता रहा। विनोद जब गया तो भगवतस्वरूप कुछ दूर तक उसको छोड़ने गया और जब उसको विदा करके वापिस आया तो उसकी मुद्रा अति गम्भीर थी।

अगले दिन भूषण और मीनाक्षि नलिनी से मिलने गए। पहिले तो अनौपचारिक बातें होती रहीं। पश्चात् भूषण नलिनी को पृथक् उसके कमरे में ले गया और पूछने लगा "भाभी! हम कल आपसे मिलने कोठी पर गए थे। वहाँ जो कोठी की अवस्था देखी वह अति दुख-दायी है।"

"तुम्हारे भैया थे वहाँ क्या?"

"नहीं! वहाँ से उनको दफ्तर टेलीफून किया और वे हमसे गेसिल होटल में मिले।"

"वे अब कोठी में नहीं जाते क्या?"

"रात सोने जाते हैं। वे विचार कर रहे हैं कि कोठी छोड़ दें और नीडोज होटल में जाकर रहें।"

"मैं समझती हूँ कि यही ठीक रहेगा। इस पर भी यदि उन्होंने जूआ खेलने की आदत नहीं छोड़ी तो होटल का बिल भी नहीं दे सकेंगे।"

"तो भैया जूआ भी खेलते हैं?"

"जब बच्चे दूध के लिए तरसने लगे तो मेरे लिए उनको छोड़ यहाँ

आने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। यहाँ आकर मैंने रजिस्टर्ड नोटिस दे दिया कि मुझे खर्चा मिलना चाहिए नहीं तो मैं न्यायालय का द्वार खटखटाऊँगी। इस भय से कि बदनामी होने से नौकरी न चली जाये, वे खर्चा देने लगे हैं।"

इस समय मीनाक्षि भी उनकी वार्तालाप में सम्मिलित होने चली आई। उसने कहा, "दीदी! फिर वापिस जीजाजी के साथ रहना चाहती हो या नहीं?"

"चाहने से क्या होता है? उनको अपने बच्चों का, अपने समाज में स्थिति के अनुसार प्रबन्ध करना चाहिए। वह बिना पैसे के नहीं हो सकता और पैसा उनके पास है नहीं। वेतन तो पहिले पाँच दिन में समाप्त हो जाता है। सब भूषण इत्यादि बिक चुके हैं। इस समय अवस्था यह है कि उनकी जेब में दस रुपए भी हों तो क्लब में चले जाते हैं और जूआ खेल लेते हैं।"

"पर भाभी! तुमने मना नहीं किया उनको?"

"किया तो था, परन्तु वे माने नहीं। यूँ तो क्लब में जाने वाले बहुत लोग जूआ खेलते हैं, परन्तु अन्य सब अपने पर नियन्त्रण रखते हैं। तुम्हारे भैया तो सब कुछ गँवा बैठे हैं।"

"तो इस आदत को छुडाने के लिए यत्न तो करना ही चाहिये। यह वर्तमान प्रबन्ध कुछ अधिक काल तक तो चल नहीं सकता। किसी समय भी यह प्रबन्ध टूट सकता है और फिर कुछ भी नहीं हो सकेगा।"

नलिनी चुप रही। इस पर मीनाक्षि ने सुझाव रख दिया, "यदि तुम पिताजी के पास चलकर यह सब कहो तो वे अपना प्रभाव प्रयोग कर कुछ तो सहायता कर सकते हैं।"

"उनके विचार मुझसे नहीं मिलते। वे मुझसे कुछ ऐसी बात चाहेंगे जो मैं कर नहीं सकूँगी।"

"पहिले ही ऐसी धारणा मन में रखकर तो कुछ बनेगा नहीं।

सम्भव है कि वे कुछ ऐसी सम्मति दें जो तुमको पसन्द आ जावे और जीजाजी मान जावें।"

"विचार करूँगी।"

"इसमें विचार करने की कौन बात है? हम टैक्सी में यहाँ आये हैं। चलो तैयार हो जाओ। बच्चे स्कूल जा रहे हैं। उनको जाने दो और हम पिताजी के घर चलते हैं। दिन-भर वहाँ रहेंगे। सायंकाल बच्चों को भी वहाँ बुला लेंगे। रात को पिताजी के साथ बातचीत कर, तुम चाहो, तो उसी समय चली आना और चाहो तो कुछ दिन के लिए वहाँ रह जाना। वह भी तो अपना घर है।"

नलिनी मुस्कराई और कुछ विचारकर मान गई। वे मध्याह्न के समय के भोजन से पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। भूषण की माँ घर पर थी। शोभा कॉलेज गई थी और कला संगीत का अभ्यास कर रही थी। नलिनी के पहुँचने पर कला अभ्यास छोड़ उसके पास आ बैठी।"

सायंकाल भगवतस्वरूप आया तो उसको नलिनी ने अपनी पूर्ण कथा वर्णन कर दी। भगवतस्वरूप ने बात सुनी और समझकर कहा, "अपने पति को दुर्व्यसनों से बचाने में जो कुछ पत्नी कर सकती है, अन्य कोई नहीं कर सकता। तुमको हमें तुरन्त ही परिस्थिति से अवगत करना चाहिए था। हम तुम्हारे प्रयत्नों का समर्थन करते और सम्भव है यह स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती।"

"उनकी इन आदतों को छुड़ाने का प्रयत्न तो मैंने किया था, परन्तु मैं सफल नहीं हो सकी। जब रोग से ठीक होने की आशा नहीं रही तब ही मैंने घर छोड़ा था।"

"अब तुम पुनः अपना घर बसाना चाहती हो या नहीं?"

"इसमें न की तो बात ही उपस्थित नहीं होती। विवाह किया था और बच्चे पैदा किये हैं तो घर बसाने के लिए ही तो किये थे, परन्तु क्या अब यह सम्भव है? मैं तो निराश हूँ।"

"इस पर भी यत्न करने में क्या हानि है? जो अवस्था तुम समझ

आने के अतिरिक्त कोई चारा न रहा। यहाँ आकर मैंने रजिस्टर्ड नोटिस दे दिया कि मुझे खर्चा मिलना चाहिए नहीं तो मैं न्यायालय का द्वार खटखटाऊँगी। इस भय से कि बदनामी होने से नौकरी न चली जाये, वे खर्चा देने लगे हैं।"

इस समय मीनाक्षि भी उनकी वार्तालाप मे सम्मिलित होने चली आई। उसने कहा, "दीदी! फिर वापिस जीजाजी के साथ रहना चाहती हो या नहीं?"

"चाहने से क्या होता है? उनको अपने बच्चों का, अपने समाज में स्थिति के अनुसार प्रबन्ध करना चाहिए। वह बिना पैसे के नहीं हो सकता और पैसा उनके पास है नहीं। वेतन तो पहिले पाँच दिन में समाप्त हो जाता है। सब भूषण इत्यादि बिक चुके है। इस समय अवस्था यह है कि उनकी जेब मे दस रुपए भी हों तो क्लब में चले जाते हैं और जूआ खेल लेते हैं।"

"पर भाभी! तुमने मना नहीं किया उनको?"

"किया तो था, परन्तु वे माने नहीं। यूँ तो क्लब में जाने वाले बहुत लोग जूआ खेलते हैं, परन्तु अन्य सब अपने पर नियन्त्रण रखते हैं। तुम्हारे भैया तो सब कुछ गँवा बैठे हैं।"

"तो इस आदत को छुड़ाने के लिए यत्न तो करना ही चाहिये। यह वर्तमान प्रबन्ध कुछ अधिक काल तक तो चल नहीं सकता। किसी समय भी यह प्रबन्ध टूट सकता है और फिर कुछ भी नहीं हो सकेगा।"

नलिनी चुप रही। इस पर मीनाक्षि ने सुझाव रख दिया, "यदि तुम पिताजी के पास चलकर यह सब कहो तो वे अपना प्रभाव प्रयोग कर कुछ तो सहायता कर सकते हैं।"

"उनके विचार मुझसे नहीं मिलते। वे मुझसे कुछ ऐसी बात चाहेंगे जो मैं कर नहीं सकूँगी।"

"पहिले ही ऐसी धारणा मन में रखकर तो कुछ बनेगा नहीं।

सम्भव है कि वे कुछ ऐसी सम्मति दें जो तुमको पसन्द आ जावे और जीजाजी मान जावें।"

"विचार करूँगी।"

"इसमें विचार करने की कौन बात है? हम टैक्सी में यहाँ आये हैं। चलो तैयार हो जाओ। बच्चे स्कूल जा रहे हैं। उनको जाने दो और हम पिताजी के घर चलते हैं। दिन-भर वहाँ रहेंगे। सायंकाल बच्चों को भी वहाँ बुला लेंगे। रात को पिताजी के साथ बातचीत कर, तुम चाहो, तो उसी समय चली आना और चाहो तो कुछ दिन के लिए वहाँ रह जाना। वह भी तो अपना घर है।"

नलिनी मुस्कराई और कुछ विचारकर मान गई। वे मध्याह्न के समय के भोजन से पूर्व ही वहाँ जा पहुँचे। भूषण की माँ घर पर थी। शोभा कॉलेज गई थी और कला संगीत का अभ्यास कर रही थी। नलिनी के पहुँचने पर कला अभ्यास छोड़ उसके पास आ बैठी।"

सायंकाल भगवतस्वरूप आया तो उसको नलिनी ने अपनी पूर्ण कथा वर्णन कर दी। भगवतस्वरूप ने बात सुनी और समझकर कहा, "अपने पति को दुर्व्यसनों से बचाने में जो कुछ पत्नी कर सकती है, अन्य कोई नहीं कर सकता। तुमको हमें तुरन्त ही परिस्थिति से अवगत करना चाहिए था। हम तुम्हारे प्रयत्नों का समर्थन करते और सम्भव है यह स्थिति उत्पन्न ही नहीं होती।"

"उनकी इन आदतों को छुटाने का प्रयत्न तो मैंने किया था, परन्तु मैं सफल नहीं हो सकी। जब रोग से ठीक होने की आशा नहीं रही तब ही मैंने घर छोड़ा था।"

"अब तुम पुनः अपना घर बसाना चाहती हो या नहीं?"

"इसमें न की तो बात ही उपस्थित नहीं होती। विवाह किया था और बच्चे पैदा किये हैं तो घर बसाने के लिए ही तो किये थे, परन्तु क्या अब यह सम्भव है? मैं तो निराश हूँ।"

"इस पर भी यत्न करने में क्या हानि है? जो अवस्था इस समय

है, इससे अधिक तो बिगड़ नहीं सकती।"

नलिनी चुप रही। इस पर भगवतस्वरूप ने अपनी योजना बना दी, "मेरी सम्मति है कि कुछ काल के लिये तुम दोनों हमारे घर में रहो। तुम्हारे लिए एक कमरा खाली करवा दूंगा। बच्चों को स्कूल भेजने का प्रबन्ध कर दूँगा।

"मैं मौखिक शिक्षा की इतनी कीमत नहीं मानता जितनी क्रियात्मक उदाहरण की। एक ओर तो तुम हमारे साथ रहोगे, जिससे हम तुम दोनों को अपनी आदत ठीक करने के लिये अवसर देंगे और उदाहरण उपस्थित करेंगे। दूसरी ओर तुम्हारी आर्थिक स्थिति सुधर जावेगी। पश्चात् तुम कोठी में चले जाना। उसको ठीक कराने का प्रबन्ध मैं करवा दूँगा।"

नलिनी जब कोठी में रहती थी, तब तो उसको अपने श्वसुर का घर बहुत छोटा प्रतीत होता था। वहाँ उसके लिए पृथक् गुसलखाना, पृथक् सोने का कमरा, मित्रों से मिलने के लिये पृथक् बैठक घर था और उसके अपने मेहमानों के लिए भी एक पृथक् कमरों का सैट था। अब अपने माता-पिता के घर में वह और उसके दोनों बच्चे एक छोटे से कमरे में सोते थे और दिन के समय उसी को वह बैठक बना लेती थी। गुसलखाना और रसोई घर साँझा था। इस कमरे के लिए वह अपने पिता को तीस रुपया महीना देती थी और अपने तथा बच्चों के भोजन के लिए नब्बे रुपये महीना। इसके मुकाबिले में जो कमरा श्वसुर के घर में उसको मिल रहा था, बहुत बड़ा था और बच्चों के लिये एक पृथक् कमरा था। सबसे बड़ी बात यह थी कि यहाँ न तो उसको कमरे का किराया देने की आवश्यकता थी और न भोजन का दाम।

इस पर भी उसको सन्देह था कि विनोद वहाँ रहना पसन्द नहीं करेगा। वह जो नीडोज होटल में रह सकता है, वह इस गली के

अन्दर मकान में क्यों रहेगा ? इस कारण उसने कह दिया, "मैं तो वहाँ रहने के लिये तैयार हूँ, परन्तु वे नहीं मानेंगे।"

"नहीं मानेंगे तो न सही। तुम तो मान जाओ। इसमें तुम्हारा ही भला है। साथ ही जब तुम अपने पति के माता-पिता के साथ रहोगी तो कोई तुम्हारे चरित्र की आलोचना नहीं करेगा। तुम्हारा मान बढ़ेगा और विनोद को विवश होकर, या तो यहाँ आकर रहना पड़ेगा या तुमको ले जाकर अपने साथ रखना होगा।"

नलिनी को बात समझ आ गई। वह अपने श्वसुर के समझाने पर टैक्सी लेकर गई और अपने कपड़े तथा बच्चों को लेकर वहाँ चली आई। जब तक वह लौटी विनोद भी वहाँ आ चुका था। विनोद को यह पता नहीं था कि नलिनी वहाँ रहने के लिए आ रही है। उसने पिताजी को नलिनी की निन्दा की बहुत सी बातें बताई थीं। उसने यह भी बताया था कि उसके बहुत से मेहमान आते रहते थे और उन पर उसका बहुत-सा व्यय हो जाता था। साथ ही बहुत से मेहमान सन्देहयुक्त चरित्र वाले होते थे।

"विनोद ! तुम आदमी हो या पूर्ण रूप से गधे। जब पति अपनी पत्नी के चरित्र पर सन्देह करे तो वास्तव में पति के चरित्र पर सन्देह करने को स्थान उपस्थित हो जाता है। पत्नी पति के अधीन होती है। वह तब ही पथ से विचलित होती है जब पुरुष स्वयं पथ-भ्रष्ट होता है। तुम बताओ आज तक जुए में कितना रुपया हार चुके हो ?"

विनोद का विचार था कि उसके पिता को उसकी दुर्गति का ज्ञान नहीं। अब इस विषय में चर्चा चलने पर उसने कहा, "बड़ी बड़ी रकमों में जुआ खेलने का स्वभाव नलिनी के एक मित्र रुस्तम स्मिथ से ही सीखा है। वह मुझको खेलने का आग्रह किया करता था और प्रायः हार जाया करता था। मेरे पास जुए का धन एकत्रित होने लगा। इससे जुआ खेलने की मेरी रुचि बढ़ने लगी। वह तो मेरे सामने प्रायः हारता ही था, परन्तु मुझको लत पड़ गई है। जहाँ भी मैं पत्तों की

चरचराहट सुनता हूँ मुझसे रहा नहीं जाता और मैं दाव लगाने लगता हूँ।"

"मैं पूछता हूँ कि कितना रुपया हार चुके हो?"

"लगभग पाँच लाख रुपया। अब तो रुपया है ही नहीं। मैं अपनी कमाई बढ़ाने के लिए छोटे-छोटे दाव लगाता रहता हूँ। जब मैं सौ दो सौ जीत लेता हूँ तब मैं उठ पड़ता हूँ और इस प्रकार निर्वाह कर लेता हूँ।"

"और वेतन का क्या होता है?"

"आधी वेतन तो लेनदार ले जाते हैं और आधी नलिनी के खर्चे और कोठी के किराये में चली जाती है।"

भगवतस्वरूप इस अवस्था से अति चिन्तित था। उसने कहा, "विनोद! तुमको अपने मान अपमान की चिन्ता नहीं तो अपनी नौकरी की तो चिन्ता कर लेनी चाहिए।"

"तो क्या करूँ? मुझको तो और कोई मार्ग नहीं सूझता। कपड़े चाहियें, भोजन चाहिये और अपनी स्थिति को स्थिर रखने के लिए क्लब में जाना और सबके साथ मेल-जोल रखना चाहिये। पहले तो ऊपर से आय हो जाती थी, परन्तु जब से नया चीफ सेक्रेटरी आया है, उसने वही काम जो मैं करता था किसी और से करवाना आरम्भ कर दिया है। दो वर्ष से एक पाई की ऐसी आय नहीं हुई। मैं अपने नित्य का काम चलाने के लिए क्लब में जाता हूँ। आज नहीं गया तो कल फिर जाना आवश्यक हो जावेगा।"

"यह काम तुम छोड़ नहीं सकते?"

"मेरी मोटर में तो कल के लिये पैट्रोल भी नहीं। मुझको कुछ-न-कुछ तो करना ही पड़ेगा।"

"देखो, मैं एक प्रस्ताव तुम्हारे सम्मुख रखता हूँ। नलिनी यहाँ आ गई है। तुम भी हमारे घर में आ जाओ। कुछ महीने यहाँ रहो। अपना पूरा वेतन मुझको दे दिया करो। इस काल में मैं तुम्हारा ऋण

उतारने का और तुम्हारी कोठी को तुम्हारे रहने लायक ठीक करवाने का यत्न करूँगा; तुम को और तुम्हारी स्त्री को जेब खर्चा भी दे दूँगा।"

"यह तो आप कर देंगे, मुझको विश्वास है; परन्तु जो बात आप नहीं कर सकते वह है मेरी 'डिगनिटी' की रक्षा। मैं सेक्रेटरी टू दि पंजाब गवर्नमेन्ट हूँ। मुझ को मोटर चाहिए, कपड़े चाहिएं, होटलों में मित्रों को देने के लिए दावतों का खर्चा चाहिए। क्लब का खर्चा और वहाँ नाचने-खाने और शराब पीने के लिए भी दाम चाहिएँ। वह आप नहीं कर सकेंगे।"

"इस सब के लिये लगभग कितना मासिक तुमको चाहिये?"

"दो से तीन हजार मासिक में काम चल सकेगा। इतना आप दे नहीं सकते। इतना मेरा वेतन भी नहीं है और आजकल ऊपर से आय भी नहीं होती। सिवाय जूआ खेलने के और कोई चारा ही नहीं।

"आजकल के दिन कुछ कठिनाई के हैं, परन्तु ये दिन सदा नहीं रहेंगे। यदि किसी दिन कोई दाँव लग गया तो दो-चार लाख मिल जावेगा। यह भी हो सकता है कि कोई अन्य साधन हाथ में आ जावे।

"पिताजी! मैंने एक बार योग्य ज्योतिषी से अपना भाग्य निकलवाया है। वह कह रहा है कि अगले सप्ताह में मेरे 'स्टार्ज' ठीक मार्ग पर आ जावेंगे और अवश्य भारी आय होने वाली है।"

भगवतस्वरूप को विनोद के कहने में उद्दण्डता प्रतीत हुई थी। जब कोई नाविक मंझधार में जा फंसता है और उस समय जैसी बातें करता है, वैसी ही बातें विनोद की प्रतीत हुई थीं। वह ऐसी मनोवृत्ति को बातों से बदल सकने में अपने को असमर्थ पाता था। इसका उपाय तो वह यह ही समझता था कि विनोद के संस्कार बदले जावें और यह बात बिना विनोद को अपने पास रखे नहीं हो सकती थी। इस कारण उसने पुनः विनोद से कहा, "अच्छा एक बात करो। तुम

रात को कोठी में सोने के स्थान यहाँ सोने को आ जाया करो।"

"यही तो सब से कठिन बात है, पिताजी! मान लीजिये मैं क्लब से रात को यहाँ आऊँ, तो मोटर कहाँ रखूँ? फिर रात के एक बजे शराब पिये हुए गली में से गुजरूँ तो गली के लोग जहाँ मेरी निन्दा करेंगे, वहाँ आपका भी अपमान होगा।"

"यही तो मैं चाहता हूँ। मेरा अपमान हो और तुम को लज्जा आवे, जिससे तुम अपने जीवन को बदल सको।"

"पर मैं यह नहीं चाहता।"

"देखो विनोद! मेरी बात मानने में ही तुम्हारा कल्याण है। मैं तुमको विचार करने का अवसर देता हूँ। तुम दो-तीन दिन तक मेरे प्रस्ताव पर विचार कर लो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि एक-दो वर्ष में तुम फिर वैसे ही सुख सुविधा के स्वामी बन जाओगे जैसे पहिले थे।"

बात यहीं समाप्त हो गई। विनोद ने विचार करने का वचन दिया और वहाँ से विदा हो गया।

विनोद जब गली से बाहर निकला तो रात के साढे दस बज रहे थे। विनोद ने घडी देखी और मोटर की चाबी निकालने के लिए जेब टटोली तो उसको स्मरण हो आया कि अगले दिन के खर्चे के लिए उसके पास रुपया नहीं है। इस कारण उसने विचार किया कि अभी डेढ घण्टा है। एक-दो बाजी तो लगाई ही जा सकती है और क्या जानें आज ग्रह अनुकूल बैठ जावें।

यह विचारकर उसने मोटर बाजार में से निकाल सीधी क्लब की ओर घुमा दी। जब वह क्लब में पहुँचा तो पौने ग्यारह बज चुके थे। इस कारण उसने मोटर सडक के किनारे खड़ी कर दी और क्लब के कार्यालय में जा पहुँचा। वहाँ उसने मैनेजर के पास पचास रुपये जमा करा रखे थे। वह पचास लेकर वह डियोढी के बगल के कमरे में गया, जहाँ बैरा

उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। वह विनोद को देख प्रसन्न हो कहने लगा, "हुजूर! बहुत देरी कर दी है आज आपने। चीफ इन्जीनियर साहब आये हुए हैं और उनके साथ प्रेमनाथ ठेकेदार हैं। बहुत नोट साथ लाये थे। मालूम नहीं अब तक क्या हो चुका है। इन्जीनियर साहब आपको याद कर रहे थे।"

"अच्छा देखो मक्खन! मैं कार्ड रूम में जा रहा हूँ। यदि मैं खेलने लगा तो खास ताश आनी चाहिए। समझ गए हो!"

"हाँ सरकार! परन्तु मेरा......।"

"हाँ, हाँ, तुम्हारा भाग रहेगा। देखो जरा होशियारी से काम करना। चीफ इन्जीनीयर बहुत कार्ईयाँ है।"

बैरा ने सलाम किया और विनोद कार्ड-रूम मे चला गया। वहाँ प्रेमनाथ मेज पर बैठा धड़ाधड जीत रहा था। लगभग सब लोग हार रहे थे। प्रेमनाथ के सामने नोटों का ढेर लगा था। दो तीन बैंकों के चैक भी वहाँ रखे थे, जो उन हारने वालों ने दिये थे, जिनकी जेब मे रुपये नहीं रहे थे।

विनोद को आया देख चीफ इन्जीनियर ने ताली बजाकर अपनी प्रसन्नता प्रकट की। उसने कहा, "हुर्रे! विनोद बाबू आ गये। अब रंग जमेगा।"

प्रेमनाथ ने विनोद को ध्यान से देखा और अनुमान लगाया कि वह लख-पति है। इस पर उसने विनोद को खेलने का निमन्त्रण दे दिया, "आइये! आइये! विनोद जी! मैं आप की ही प्रतीक्षा कर-रहा था। देखिये यह कितना रुपया है। अढाई-तीन लाख से कम नहीं हो सकता। बताओ पत्ते बाँटूँ?"

"नई ताश बदल दीजिये।"

"ठीक है।" प्रेमनाथ ने ताश बैरे की ओर फेंक दी। बैरे ने पत्ते उठाये और साथ के कमरे से नई ताश ले आया।

विनोद ने कहा, "मुझको मालूम नहीं था कि लाला जी आज

गए। नई ताश आने पर विनोद ने फिर पत्ते बांटे। इस बार फिर विनोद की जीत हुई। इस प्रकार प्रत्येक बार विनोद जीतता गया और विनोद जितना उसके पास आता था, सारे की बाजी लगा देता था। चार बार और खेलने पर विनोद के पास साढे बारह हजार एकत्रित हो गया। इस समय विनोद ने प्रश्न-भरी दृष्टि से प्रेमनाथ की ओर देखा और प्रेमनाथ ने फिर ताश बदलने के लिए कहा। वह बदली गई। विनोद जीता हुआ था। नियमानुसार ताश बाटना विनोद का अधिकार था। उसने बाटी। प्रेमनाथ हारता ही गया। तीन और बाजियों में प्रेमनाथ एक लाख हार चुका था। खेल में तीखापन आ गया था। इससे प्रेमनाथ कुर्सी से उठ खडा हुआ और ताश नई लाने के लिए बोला। बैरा फिर नई ताश लाया। प्रेमनाथ ने भली भाँति फेंटी और विनोद के हाथ मे बाटने के लिए दे दी। उसने कहा, "एक लाख के साथ एक लाख लगाता हूँ।"

प्रेमनाथ का साथी चीफ इंजीनियर अपने मित्र के दुर्भाग्य पर विस्मय कर रहा था। एकाएक वह अपने स्थान से उठा और उसने विनोद का हाथ पकड लिया। विनोद ने ताश बाटनी बन्द कर, पत्ते जो उसने प्रेमनाथ के सामने रखे थे उठाने चाहे, परन्तु चीफ इञ्जीनियर ने कहा, "यह फ्राड है!" इतना कह उसने विनोद की आस्तीन मे से दो छिपे हुए पत्ते निकाल दिये। वे चिडिये का बादशाह और बेगम थे। विनोद ने ताश फेंक दी और कहा, "यह बदमाशी है। हारने के पश्चात् यह नहीं चल सकती।"

इस पर भी प्रेमनाथ ने विनोद को पकड लिया और दर्शकों में से एक को कहा, "मिस्टर कपूर! तनिक देखना। ताश में कितने चिडिये के बादशाह और बेगमें है?"

कपूर ने ताश को इकट्ठा कर देखा। वास्तव मे चिडिये के बादशाह और बेगमें दो-दो थे। बस फिर क्या था। बहुत हल्ला हुआ और विनोद को पुलिस के हवाले कर दिया गया। उसी समय वहाँ तीन-चार

दर्शकों ने शान्ति कर दी। विनोद से बयान देने को कहा गया। उसने कह दिया कि वह अपने बयान न्यायालय में देगा। इस पर पुलिस उसको पकड़कर हवालात में ले गई।

अगले दिन समाचार-पत्रों में यह समाचार प्रसारित हो गया, 'पंजाब सरकार के एक सचिव जूआ खेलते और उसमें धोखा देते पकड़ लिये गए।' इस शीर्षक के नीचे एक लम्बा-चौड़ा वक्तव्य था।

भगवतस्वरूप ने यह समाचार पढ़ा और स्तब्ध रह गया। दस मिनट तक उसको सुध-बुध नहीं रही। भूषण ने पिताजी का पीत-वर्ण मुख देखा तो समीप आ पूछा, "क्या बात है, पिताजी ?"

भगवतस्वरूप ने समाचार-पत्र उसके सामने कर दिया। भूषण ने समाचार पढ़ा तो समाचार-पत्र को लपेटकर कहा, "नलिनी तथा बहिनों को यह पढ़ने को नहीं देना चाहिए।"

"हाँ।" भगवतस्वरूप ने तरल आँखों से कहा, "मेरे जीवन में यह प्रथम घटना है, जिसको मैं अपने बच्चों से छुपाकर रखना चाहता हूँ। कितने शोक की बात है!"

"अभी आज तो इसको छुपाना ही चाहिए। मेरा विचार है आप शीघ्र तैयार हो जाइये। हमको जमानत का प्रबन्ध करना चाहिये।"

"हाँ! इस समाचार-पत्र को छुपा लो।"

भूषण ने पत्र को लपेटकर अपने सूटकेस में रख ताला लगा दिया। भगवतस्वरूप ने अपने बैंक की किताबें, मकान के कागजात निकाले और कपड़े पहिन भूषण के साथ पुलिस थाने जाने को तैयार हो गया।

सब इन्स्पैक्टर पुलिस को जब पता चला कि वे विनोद के पिता और भाई हैं तो उसने पृथक् में ले जाकर कहा, "अभी-अभी इन्सपैक्टर जैनरल पुलिस आया था और विनोद को अपने साथ मोटर में बैठाकर कहीं ले गया है।"

इस पर भगवतस्वरूप और भूषण टाँगे में सवार हो इन्सपैक्टर जैनरल पुलिस के घर जा पहुँचे। अभी दफ्तर का समय नहीं हुआ था।

इस पर भी वह अपने घर पर नहीं था। चपरासी को दो रुपये देने का लालच दिया गया तो वह घर से पता लाया कि गवर्नर बहादुर का टेलीफोन आया था, वहीं गये मालूम होते हैं।

भगवतस्वरूप ने दो रुपये चपरासी को दिये और गवर्नर की कोठी पर जा पहुँचे। फाटक पर खड़े सिपाहियों से पता चला कि इन्सपैक्टर पुलिस एक और आदमी के साथ भीतर गये हैं। इस समाचार को पा वे फाटक पर खड़े प्रतीक्षा करने लगे।

आधा घण्टे की प्रतीक्षा के पश्चात् विनोद अकेला बाहर आया। वह अपने भाई और पिता को वहाँ खड़ा देख विस्मय में उनके सामने आकर खड़ा हो गया। शायद वह यह विचार कर रहा था कि उनको कैसे इस घटना का पता चला है। उसके साथ पुलिस नहीं थी। इससे पिता ने अनुमान लगाया कि वह छूट गया है। अतएव उसने कहा, "विनोद! चलो तांगे में बैठो।"

विनोद अन्यमनस्क भाव में खड़ा रहा। इस पर भूषण ने बांह पकड़कर तांगे की ओर ले जाते हुए कहा, "भैया! चलो।"

अभी विनोद तांगे में बैठा ही था कि इन्सपैक्टर अपनी मोटर में बाहर निकला। उसने विनोद को दो आदमियों के साथ तांगे में बैठे देख उनसे पूछा, "कहाँ ले जा रहे हो इसको?"

भगवतस्वरूप ने उत्तर में कहा, "मैं विनोद का पिता हूँ। हमें पता चल गया था कि यह यहाँ लाया गया है। हम यहाँ चले आये। क्या यह छूट गया है?"

"हाँ! इनके विरुद्ध कोई मुकद्दमा नहीं चलेगा। गवर्नर बहादुर की यही आज्ञा है। अब यह आप के हवाले हैं। बहुत घबड़ा गए प्रतीत होते हैं। मैंने इनको कहा था कि मोटर में छोड़ आता हूँ, परन्तु ये खिलखिला कर हंस पड़े और पैदल ही बाहर चले आये। मुझको भय है कि इन के मस्तिष्क को भारी आघात पहुँचा है।"

इन्सपैक्टर गाड़ी लेकर चला गया तो भगवतस्वरूप भी तांगे में

सवार हो कर घर की ओर चल पड़ा। मार्ग में ही उनको पता चल गया कि विनोद का मस्तिष्क बिगड़ चुका है। वह अन्ट सन्ट बातें कर रहा था।

घर पर पहुँच वे उसको मकान की ऊपर की मंजिल पर ले गए और उसको अपने कमरे में लिटा दिया गया। विनोद मे पागल पन के लक्षण प्रकट हो गए थे।

सरकार की एक विज्ञप्ति छपी, "विनोद कुमार सैक्रेटरी टू दि पंजाब गवर्नमेन्ट के विरुद्ध धोखा देही का मुकद्दमा साक्षियों के अभाव मे नहीं चल सका, परन्तु एक बड़े सरकारी अफसर का क्लब में जूआ खेलने को सरकार ने पसन्द नहीं किया। इससे उसको नौकरी से पृथक किया जाता है।"

यह समाचार भगवतस्वरूप के लिए कोई भारी महत्ता नहीं रखता था। उसके लिए विनोद के स्वास्थ्य का प्रश्न अधिक आवश्यक था। इसके लिए पूर्ण परिवार प्रयत्न कर रहा था। नलिनी दिन रात विनोद की सेवा में लगी हुई थी। फिर लक्ष्मी, मीनाक्षि, कला और शोभा थीं। बारी-बारी से सब विनोद का मन बहलाने के लिए आती रहती थीं। विनोद के माता पिता कमरे के बाहर का काम करते थे।

भगवतस्वरूप का विचार था कि विनोद को आराम मिलना चाहिए। स्वच्छ पौष्टिक भोजन और मन बहलाने के साधनो से वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाएगा।

कला दिन में तीन बार कभी उस के कमरे में बैठ कर और कभी कमरे के बाहर संगीत में भगवत भजन करती थी। 'हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे।' यह समयानुसार भिन्न-भिन्न रागों में गाया जाता था। इससे विश्राम का सा प्रभाव हुआ और एक मास में विनोद को चेतनता हो गई। वह समझने के योग्य हो गया कि क्या हो गया है।

इस एक महीने में भगवतस्वरूप ने अपने दोनों लड़कों के विषय में गम्भीरता पूर्वक विचार कर लिया। भूषण अहमदाबाद चला गया था। उसने एक मास का नोटिस देकर नौकरी छोड़ दी और नोटिस की अवधि समाप्त होते ही लाहौर में आ पहुँचा।

इस समय कान्ता भी उन के घर में आई हुई थी। उसके भी बच्चा होने वाला था। इस कारण जहाँ भूषण के काम काज का प्रश्न था, वहाँ परिवार के रहने का भी प्रश्न उपस्थित हो गया। वह गली वाला मकान सब के रहने के लिए पर्याप्त नहीं था। अभी विनोद अस्वस्थ ही था। भगवतस्वरूप ने नलिनी से पूछा, "मैं समझता हूँ कि विनोद अभी पृथक रहने योग्य नहीं है और इस मकान में पूर्ण परिवार के लिए स्थान नहीं है। कान्ता भी आ गई है और उस के साथ सुरेश की दोनों बहिनें भी हैं। वे अकेली अपने घर में रह नहीं सकतीं। इस कारण मैं तुम लोगों की कोठी में चल रहूँ, तो कैसा रहे?"

"हम तो अब उस कोठी को रख नहीं सकेंगे। जैसा आप का मन करे, कर लीजिए।"

भगवतस्वरूप उसी दिन कोठी की सफेदी कराने और लान को ठीक करवाने वहाँ जा पहुँचा। एक माली वहाँ रख दिया गया। पन्नू चपरासी को पिछला वेतन दे कर रहने दिया गया। राजगीर और मजदूर कोठी की मरम्मत और सफेदी करने के लिए लगा दिये गए।

जब तक भूषण आया विनोद भी बहुत सीमा तक स्वास्थ्य लाभ कर चुका था और पूर्ण परिवार रेस कोर्स रोड वाली कोठी में जा पहुँचा था। वहाँ भूषण और मीनाक्षि को पृथक तथा नलिनी और विनोद को पृथक कमरे मिल सके थे। कान्ता और उस की ननदों को रहने के लिए पृथक स्थान मिल गया था। कला और शोभा के लिए भी पृथक कमरे थे।

इस प्रकार रहने की समस्या सुलझ गई, परन्तु इस समस्या का एक अंग कोठी का किराया और नौकरों का वेतन भी था। कोठी में एक माली और एक लड़का उसकी सहायता के लिए रख दिये गए। एक चपरासी

भी रखना आवश्यक हो गया। इस प्रकार कोठी का खर्चा साढ़े चार सौ रुपया महीना हो गया।

भूषण ने अपने पिता को इतना खर्चा अपने सिर पर लेते देखा तो नगर में उसने आर्किटेक्ट्स से सम्पर्क पैदा करना आरम्भ कर दिया। अभी नई कोठी में गये एक मास भी नहीं हुआ था कि भूषण को माल पर एक तिमजली कोठी बनाने का ठेका मिल गया। इस इमारत पर डेढ़ लाख रुपया खर्च होने का अनुमान था। इस प्रकार इस में से पच्चीस हजार का लाभ होने की आशा थी।

भगवतस्वरूप को भी अपने दफ्तर से छुट्टी हो गई और वहाँ से पृथक होने के दिन उसको ग्रेच्युटी का तीस हजार रुपया मिल गया।

विनोद अब सर्वथा स्वस्थ था। वह भी देख रहा था कि पूर्ण परिवार के लिए भारी खर्चे की आवश्यकता है। इस कारण एक दिन वह पिता जी के पास पहुँच कर कहने लगा :

"मैं अब स्वस्थ हूँ और समझता हूँ कि मुझको अब आप पर बोझा नहीं बनना चाहिए।"

"ठीक है। मैं यही आशा करता था। देखो भूषण का कार्य तो अभी आरम्भ हुआ है। वह इन्जीनीयर अवश्य है परन्तु ठेकेदारी उसके लिए एक नई बात है। साथ ही वह यत्न कर रहा है कि ईमानदारी से काम करे। मैं भी अब नौकर नहीं हूँ। इससे अब तो आप दोनों के कमाने का समय है और मुझ को आराम कर निर्वाह करने का। इस पर भी प्रश्न तो यह है कि तुम क्या करोगे?"

"कहीं नौकरी ढूँढूँगा।"

"व्यर्थ है। पहिले तो जिस प्रकार तुम पहली नौकरी से निकाले गए हो, उससे कोई अच्छी नौकरी मिल सकनी बहुत कठिन है। फिर यदि नौकरी मिल भी गई तो तुम अपना गुजर उसमें कर नहीं सकोगे। तुम को अपनी डिगनिटी का बहुत विचार है। परिणाम यह होगा कि पुनः नौकरी में वेतन से अतिरिक्त आय करने का यत्न करोगे। रिश्वत लोगे

या जूआ खेलोगे। ये दोनों करके देख चुके हो। तुम अब ये बातें कर नहीं सकते।

"यदि मेरा कहा मानो तो भूषण के साथ काम पर जाया करो। उसकी नेशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी के तुम भी पत्तीदार बन जाओगे। मैं यत्न कर रहा हूँ कि एक-आध काम और ले लूँ। जब तक वह मिलता है, तब तक तुम अनुभव प्राप्त करने में लग जाओ।

"देखो हम परिवार में तीन पुरुष हैं और यदि तीन मिलकर भी एक साधारण से परिवार का खर्चा नहीं निकाल सकते तो अति खेद की बात है। ऐसी अवस्था में हमको मानना पड़ेगा कि हम सर्वथा अयोग्य लोग हैं।"

"मुझ को सन्देह है कि मैं यह काम कर भी सकूँगा या नहीं।"

"मुझ को विश्वास है कि तुम इसमें नौकरी से अधिक सफल होगे।"

नेशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी का कार्यालय रेस कोर्स वाली कोठी में ही खोल दिया गया। भगवतस्वरूप उसमें बैठ चिट्ठी-पत्री और हिसाब-किताब तथा काम में नियन्त्रण रखता था। भूषण निर्माण कार्य करता था। अब विनोद भी उसका हाथ बटाने लगा। इस प्रकार जब तक एक दूसरा काम मिला विनोद इसकी ऊँच नीच समझने लगा।

कान्ता का प्रसवकाल आया और उसके एक दूसरा लड़का हुआ। इस प्रसव काल में सुरेश भी कोठी में आकर रहने लगा था। प्रातः वह स्नानादि से छुट्टी पा दूकान पर चला जाता। पीछे कमलेश उसके खाने के लिये ले जाता। दिन भर दोनों भाई दूकान पर रहते थे। सायं आठ बजे दुकान बन्द कर वे कोठी में आ जाते थे।

लड़का तेरह दिन का हुआ तो उसका जात कर्म संस्कार किया गया। उसका नाम नवीन रखा गया। अब लड़के और उसकी माँ कान्ता को सब प्रकार से स्वस्थ देख सुरेश को नित्य कोठी में आकर रहने की आवश्यकता नहीं रही। उसने अपने श्वसुर से कहा। "अब हम

रात को नहीं आवेंगे।"

"हम शब्द से क्या मतलब ?"

"मैं और कमलेश। इतने दिन आप को कष्ट दिया है। अब आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।"

"अभी कुछ दिन और रह जाते तो ठीक नहीं क्या ? यहाँ स्थान खुला है। बच्चों के खेलने के लिये मैदान है। फिर कान्ता तो अभी यहाँ रहेगी ही।"

"यह तो ठीक है, पिता जी ! परन्तु आखिर में तो हम को शहर वाले मकान में जाना ही है। क्या यह ठीक नहीं कि इस खुली जगह पर रहने की आदत पड़ने से पूर्व ही यहाँ से चले जाएँ।"

"तो सदा के लिये यहाँ ही रह जाओ।"

"यहाँ ही रह जाऊँ ? आप हंसी कर रहे हैं या केवल मुख सामने की बात ?"

"क्या कभी पहले भी तुमने मुझको अपने साथ हँसी करते देखा है ? देखो सुरेश ! जब मैं अपने परिवार के सदस्यों को एक स्थान पर एकत्रित हुआ देखता हूँ तो कितना आनन्द अनुभव करता हूँ, तुम जान नहीं सकते।"

"आप का कथन सत्य ही है। मैं भी पिछले पन्द्रह दिन यहाँ रह कर एक विशेष प्रकार का सन्तोष और सुविधा अनुभव करता रहा हूँ। परन्तु परिवार के यह अर्थ तो है नहीं कि सब बोझ एक आदमी पर जा पड़े। क्या मैं यह नहीं देख रहा कि तेरह प्राणी यहाँ पर हैं। अब एक चौदहवाँ आ पहुँचा है और वह अपना भाग रो-रो कर मांगने लगा है। फिर मीना भाभी के भी तो बच्चा होने वाला है और कला, शोभा, रामो और मोहिनी का विवाह नहीं होना क्या ? यह तो एक बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है, जो एक के मान का नहीं।"

"यह तो ठीक है, परन्तु मेरा बोझा हलका करने वाले आप भी तो हैं।"

"एक समय मैंने इस बात पर विचार किया था, परन्तु यदि हम अपना खर्चा आप को दें तो, मैं समझता हूँ कि यह ठीक नहीं होगा। आप ने कोई होटेल तो खोला नहीं हुआ और न ही मैं यहाँ होटेल समझ कर रहना चाहता हूँ। तो कैसे यह हो सकता है? इसके लिए एक ही मार्ग है। वह यह कि मैं भी आप के परिवार का सदस्य बन जाऊँ। परन्तु इसको भूषण और विनोद स्वीकार करेंगे या नहीं, कह नहीं सकता। किसी परिवार में सम्मिलित होने का उपाय तो केवल यह है कि पूर्ण परिवार एक जीवित व्यक्ति की भाँति एक इकाई हो कर रहे। इसके लिए सब सदस्यों का कारोबार परिवार का कारोबार हो। सब का सुख दुख तथा हानि-लाभ परिवार का सुख-दुःख और हानि लाभ हो। तब ही तो परिवार बन सकता है।

"ऐसा करने के लिये कितने उत्तरदायित्व और उदारता की आवश्यकता है? यह केवल अनुमान ही किया जा सकता है, और फिर परिवार के सब सदस्यों की इस भावना में विश्वास और अनुमति चाहिए।"

सुरेश एक पढ़ा-लिखा युवक था और उसने युक्ति से अपने कारोबार की रक्षा की थी। अब उसको परिवार के विषय में यही धारणा प्रकट करते देख, जो भगवतस्वरूप स्वयं रखता था, वह बहुत प्रसन्न हुआ। साथ ही उसने जो कठिनाई वर्णन की थी, वह भी वास्तविक थी। परिवार के सब सदस्यों का परिवार के इस लक्षण पर विश्वास आवश्यक था। सुरेश स्वयं भी तो इसमें दोष समझ सकता है। इस कारण भगवतस्वरूप ने कहा, "परिवार का आज इस काल में चलना कठिन तो है, परन्तु असम्भव नहीं। तुम क्या समझते हो कि यह भावना, जिसका होना परिवार के लिए तुमने आवश्यक माना है, उत्पन्न नहीं हो सकती?"

"हो क्यों नहीं सकती? इस पर भी कठिन अवश्य है।"

"आओ हम यत्न करें। शायद हमारे परिवार की विशेष परिस्थिति

में यह सम्भव हो जाय।"

सुरेश का कोठी मे आना जारी रहा।

एक दिन भगवतस्वरूप ने पूर्ण परिवार को एकत्रित कर लिया। विनोद, नलिनी, मीना, भूषण, सुरेश, कान्ता, कला, शोभा, रामप्यारी, मोहिनी, कमलेश और सुशीला सब उपस्थित थे। नलिनी के बच्चे भी वहाँ आ बैठे। उनको यह समझ आया कि कोई तमाशा होने वाला है।

भगवतस्वरूप ने कहा, "हम सब इस कोठी मे रहते हैं। मै आप से पूछना चाहता हूँ कि किसी को यहाँ रहने से कोई कष्ट होता है क्या?"

"कष्ट की बात छोडिये पिताजी!" कान्ता ने कहा, "हम तो सब बड़े मजे मे हैं। शहर का मकान बहुत गन्दा था। गली मे पडोसियों के बच्चे नाली में टट्टी कर जाते थे।"

"क्यों भूषण! तुम क्या कहते हो? उस गली वाले मकान में चलें या यहाँ ही रहें?"

"यदि यहाँ रह सकें तो ठीक ही है।"

"सुशीला! तुम क्या कहती हो?" भगवतस्वरूप ने अपनी स्त्री से पूछा।

"मुझसे मत पूछिये। मेरे लिए तो जहाँ आप रहेंगे वहीं स्थान उपयुक्त है।"

"शीला! यह मतलब नहीं। मैं तो कह रहा हूँ कि मैं यहाँ रहूँ अथवा गली वाले मकान में।"

सबकी सम्मति एक ही थी। विनोद ने भी कहा, "मैं तो यहाँ रहता ही था, परन्तु इस परिवर्तित परिस्थिति मे यदि आप सहायता करने न आ जाते तो फिर यह कोठी छोडने ही वाला था।"

"जब आप सबका ऐसा ही मत है, तो यह भी तो सबको पता होगा कि कोठी मे रहने का खर्चा पाँच सौ रुपया महीना से ऊपर ही पडता है। इतना व्यय करना किसी एक के मान का तो है नहीं।"

विनोद और भूषण इस प्रश्न का अभिप्राय नहीं जान सके। भूषण ने कहा, "अब तो मै और विनोद भैया इकट्ठे काम कर रहे हैं और हम समझते हे कि हम इतना खर्चा तो निकाल ही सकेंगे।"

"मेरा पूछने का अभिप्राय यह है कि जब आय होगी, विनोद और तुम खर्चा बाँट कर दोगे अथवा कैसे करोगे?"

विनोद ने अपनी योजना रख दी। "मै भूषण से कह रहा हूँ कि हम पाँच-पाँच सौ रुपया महीना निकाल लिया करेंगे और जब वर्ष अथवा दो वर्ष के पश्चात् लाभ-हानि गिनेंगे तो अपने-अपने भाग में से यह पाँच-पाँच सौ मुजरा कर लेंगे। अपने पाँच पाँच सौ मे से कोठी का किराया और अन्य खर्चा दे दिया करेंगे।"

सुरेश हँस पड़ा। इस पर सब उसका मुख ताकने लगे। सुरेश ने उनका विस्मय निवारण करने के लिये कहा, "विनोद भैया! यह तो इस प्रकार हो जावेगा जैसे पिताजी ने आपको धन दिया है। मानो उन्होने बैंक खोला हुआ है। आप उनको सूद ऐसे दे देंगे जैसे बैंक को दिया जाता है। फिर पिताजी ने हमारे लिए होटल खोल दिया है और आप और हम उसमें किराया देकर रह रहे हैं।"

"नहीं, यह बात नहीं। हम तो पिताजी का बोझा बाँटना चाहते हैं।"

कान्ता को इस सभा का प्रयोजन या तो सुरेश ने पहिले ही बता रखा था या वह अब समझ गई थी। उसने कहा, "आप अपना, भाभी का और अपने बच्चों का खर्चा दे देंगे। भूषण अपना और मीना भाभी का खर्चा दे देगा। तो कला और शोभा को भी कहीं नौकरी करनी चाहिये, जिससे वे भी पिताजी को खर्चा दे सकें।"

"नहीं, उन दोनों का खर्चा भी हम दोनों लोग बाँटेंगे।"

"क्यों, आपको क्या आवश्यकता पड़ी है?"

"वे हमारी बहिनें हैं।"

"तो यह सिद्ध हुआ कि आप पिताजी को धन इस कारण नहीं देंगे कि आपको रोटी और रहने को स्थान मिला हुआ है, प्रत्युत इस कारण कि इस कोठी में आपका परिवार रहता है।"

"हाँ! हाँ! यही तो मैं कह रहा हूँ।"

"एक बात मैं पूछती हूँ?" कला ने कहा।

"किससे पूछना चाहती हो?" भगवतस्वरूप ने पूछा।

"जो भी उत्तर देना पसन्द करे। मै यह पूछना चाहती हूँ कि पिता जी ने यह जो साठ हजार कन्स्ट्रक्शन कम्पनी में लगाया है, क्या सूद के लोभ मे लगाया है अथवा किसी अन्य कारण से?"

इस पर सुरेश ने कला के आशय का समर्थन करते हुए कहा, "हाँ विनोद भैया! तनिक विचार कर कहना, मैं भी यही विचार कर रहा हूँ कि पिताजी ने कठिनाई के समय हमारी दुकान में भी पन्द्रह-बीस हजार रुपया डाल दिया था। क्या वह सूद लेने के प्रयोजन से था अथवा किसी अन्य कारण से?"

"मैं तो समझता हूँ," भूषण ने, जो इस वार्तालाप का कुछ-कुछ अर्थ समझने लगा था, कहा, "पिताजी यह सब कुछ कर रहे हैं क्योंकि वे पिताजी हैं।"

"और आप दोनों भाई हमारा खर्चा देंगे क्योंकि हम आपकी बहिनें हैं। तो इससे यह सिद्ध हुआ कि हम सब यहाँ इसलिए रहते हैं, क्योंकि हम सब एक परिवार के सदस्य हैं।"

"यह तो है ही।" भूषण का उत्तर था।

"पिताजी ने कारोबार के लिए धन दिया है, इसलिए कि वे पिता हैं। तो क्या आप यह कारोबार इसलिए नहीं कर रहे कि आप पिताजी के पुत्र हैं। अर्थात् हम सब अपना-अपना काम क्या इसलिए नहीं कर रहे कि हम सब एक परिवार के सदस्य हैं?"

विनोद अभी भी इस सब वार्तालाप का अर्थ समझने में लगा था। इस समय कमलेश बोल उठा, "मैं भैया के कहने का अर्थ समझ गया हूँ। भैया ने कहा है कि हम परिवार के सब लोग, जो भी आय करते हैं, वह परिवार के लिए करते हैं और उसका व्यय भी परिवार के लिए करते हैं। जब कोई विपत्ति आती है तो सब एक-दूसरे की सहायता करते हैं और जब प्रसन्नता का अवसर आता है तो वह प्रसन्नता भी सब को बाँट लेनी चाहिए।"

इस पर विनोद ने कहा, "कमलेश! जो कह रहे हो इसका अर्थ भी समझते हो क्या? इसका अर्थ यह है कि हमारा परिवार एक कम्पनी है, जिसमें हम सबकी आय परिवार की आय है और सबका व्यय परिवार का व्यय है। परन्तु, क्या तुम यह नहीं समझते कि कम्पनी के प्रत्येक हिस्सेदार के लिए कुछ शर्तें होती हैं? यहाँ परिवार में कोई ऐसी बात नहीं। अर्थात्, परिवार एक कम्पनी है जिसमें सब सदस्यों के अधिकार तो हैं, परन्तु उत्तरदायित्व किसी का नहीं। मैं इस प्रकार के आयोजन का उत्तरदायित्व अपने माथे-पर नहीं ले सकता।"

कला ने फिर वार्तालाप में भाग लेते हुए पूछा, "यही तो पूछ रही हूँ कि पिताजी ने हम सबका और आपका उत्तरदायित्व क्यों अपने पर ले रखा है?"

"मुसीबत के समय तो परस्पर सहायता करना मनुष्य का कर्तव्य है।"

"ठीक। पर संसार में और भी तो मनुष्य रहते हैं। उन्होंने भी आपको ऋण दिया था, जो आपकी नौकरी छूटते ही पिताजी को तुरन्त देना पड़ा था। यदि वह ऋण न दिया जाता तो लेनदार आपको न्यायालय में घसीटने वाले थे।"

बात सबके मस्तिष्क में स्पष्ट हो रही थी। इस पर सुरेश ने अपने मन की बात कह दी। उसने कहा, "जब पिताजी ने मेरी सहायता की थी तो मैंने इस विषय का मन्थन किया था। मेरी सहायता हुई थी इस

कारण कि मैं आपका कुछ लगता हूँ। मुझको कष्ट और दुःख हुआ था तो आपको और पिताजी को भी दुःख हुआ था। इस प्रकार विचार करने पर मैं इस परिणाम पर पहुँचा था कि परिवार एक सजीव वस्तु है। जैसे जीवनयुक्त प्राणी का प्रत्येक अंग प्राणी के अन्य अंगों का सहकारी होता है, वैसा ही परिवार का प्रत्येक सदस्य होना चाहिए। जब तक परिवार के सदस्यों में यह भावना रहती है तब तक परिवार सजीव है। अन्यथा वह मृत मानना चाहिये।

"एक जीवित प्राणी में भोजन किया जाता है तो पूर्ण शरीर के लिए और जीवन-सामग्री उपार्जित की जाती है तो पूर्ण शरीर के लिए। वैसे ही परिवार में होना चाहिये। हम धन पैदा करें तो परिवार के लिए और व्यय करें तो परिवार के लिए। सुख उपार्जन किया जाय तो परिवार के सब सदस्यों के लिए और यदि कहीं कोई विपत्ति आये तो पूर्ण परिवार उसका भोग करे।"

सबसे पहले कमलेश ने इसका समर्थन किया और फिर कहा, "मुझको यह स्वीकार है।"

विनोद ने माथे पर त्योरी चढ़ाकर कहा, "क्या स्वीकार है? बच्चों की सी बातें करते हो। अपनी दुकान इत्यादि, क्या सब कुछ हमारे परिवार की सम्पत्ति बना दोगे?"

"हाँ, और आपकी पूर्ण सम्पत्ति का भी भागीदार बन जाऊँगा।"

"मैं इसको इस प्रकार नहीं मानता।" सुरेश ने कहा, "ऐसी अवस्था में आपके परिवार और मेरे परिवार का प्रश्न ही नहीं रह जाता। बात केवल हमारे परिवार की रह जाती है। इस भावना का सबसे बड़ा गुण यह है कि हम तेरह प्राणी एक हृदय की गति से स्पन्दन करेंगे। यह एक महान् बात होगी।"

"सुरेश! कहने में तो यह बात ठीक ही प्रतीत होती है, परन्तु कार्य में लाने के समय कठिनाई अनुभव होगी। जो आय करने वाले हैं वे आय करने में उत्साह खो बैठेंगे और फल सबको भोगना पड़ेगा।"

अब भूषण ने अपने मन में दृढ़ संकल्प कर कहा, "पर भैया! जब तुम अकेले थे तब भी तो विपत्ति आ ही गई थी। तुम्हारा उत्साह और साहस कुछ नहीं कर सका था। उस समय यदि किसी भावना ने नौका को मझधार से निकाला था तो वह परिवार की ही भावना थी। पिताजी आपको अपना पुत्र समझ ही तो आपको घर पर ले आये थे और उन्होंने पुनः आपको अपने पाँव पर खड़ा कर दिया है।"

"तो फिर क्या होगा?" विनोद का प्रश्न था।

अब भगवतस्वरूप ने पूर्ण वाद-विवाद का निष्कर्ष निकालकर सब के समक्ष रख दिया। उसने कहा, "हम यहाँ इतनी सुन्दर कोठी में रहते हैं और सब यहाँ के स्वच्छ जलवायु का सेवन करते हैं। विनोद यहाँ ईमानदारी की कमाई कर नहीं रह सका। उसको रिश्वत लेनी या जूआ खेलना पड़ा था। मैं समझता हूँ कि यदि हमको यह सुखभोग करना है, जो अकेला व्यक्ति नहीं कर सका तो हमको संयुक्त परिवार बनाकर रहना पड़ेगा। जो बात एक उँगली नहीं कर सकी, वह मुक्का कर सकेगा।

"परन्तु मुक्का बाँधने की एक विधि होती है। तब ही वह कार्य कर सकता है। इस प्रकार परिवार बनाने की भी एक विधि है। विधि बिना कार्य नहीं होता। इस विधि में एक आवश्यक कार्य यह है कि परिवार के प्रत्येक सदस्य के मन में परिवार के एक होने की भावना उत्पन्न हो। साथ ही सदस्य अपने को एक जीवित प्राणी के अंगों की भाँति परस्पर निर्भरता अनुभव करें।

"यदि तुम सब इस प्रकार अनुभव कर सकते हो, तब तो तुम परिवार के सदस्य बन सकते हो। अन्यथा हम सब ऐसे होंगे जैसे कुछ व्यक्ति अपने-अपने स्वार्थ के हेतु यहाँ एकत्रित हो रहे हैं।

"शरीर में एक मस्तिष्क है, एक हृदय है और एक पेट है। ये और प्रत्येक अंग अपने-अपने कार्य को पूर्ण शरीर के लाभ के लिए करता है। मस्तिष्क पूर्ण शरीर पर नियन्त्रण पूर्ण शरीर के लाभ के लिए करता

है। इसी प्रकार हृदय का रक्त सञ्चार के लिए प्रयत्न भी प्राणी के पूर्ण शरीर के लिए है।

"यदि तुमने इस रूप मे रहना है तो फिर परिवार का एक विधान बनाना चाहिये।"

विनोद ने इस योजना को नहीं माना। इस पर भी उसने कहा, "पहले विधान बन जाये। पीछे विचार कर लेंगे।"

तीन

गोविन्दप्रसाद एक अच्छा युवक था। उसका परिवार भी नगर में विख्यात था। इस कारण भगवतस्वरूप इस सम्बन्ध के बन जाने को अच्छा ही समझता था। वह इस प्रतीक्षा में था कि कब वे दोनों आ कर इस विषय में कुछ कहते हैं। कला ने अपने विवाह के विषय में कोई अनुमान बनाने का अवसर नहीं दिया था।

जिस दिन परिवार के विधान-निर्माण के लिए तीन सदस्यों की एक समिति बनी, उसका अगला दिन शनिवार था। भगवतस्वरूप नैशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी के कार्यालय में बैठा हिसाब लिख रहा था, जब गोविन्द अपनी मोटर में वहाँ आ पहुँचा। वह मोटर से उतर सीधा भगवतस्वरूप के पास चला आया और नमस्ते कर कुशल समाचार पूछने लगा। भगवतस्वरूप ने पूछा, "आज शनिवार है क्या ?"

"जी हाँ। आज कलादेवी का प्रोग्राम है। इसमें कुछ देरी हो जाने की सम्भावना है।"

"भाई! तुमको उसको लाने और ले आने में बहुत कष्ट करना पड़ता है।"

"पिताजी!" गोविन्द अति प्रसन्न वदन था। उसने कहा, "कला जी का गाना जो सुन लेता है, वह जन्म-जन्मान्तर के लिए उसका दास बन जाता है।"

"यह तुम कहते हो या वहाँ की सभा वाले भी कहते हैं?"

"मैं वहाँ के संगीतज्ञों की सम्मति ही आपको बता रहा हूं। कई सप्ताह से कला के आज के कार्यक्रम की प्रतीक्षा हो रही थी। आज सभा में दुगने से अधिक लोग होंगे और सभा एक घण्टे के स्थान तीन घण्टे चलेगी।"

भगवतस्वरूप अपनी लड़की की प्रशंसा सुन अति प्रसन्न था। इस पर उसने सामने छत की ओर देखते हुए कहा, "हम को तो कला और उसका संगीत पसन्द आता ही है। मेरा विचार था कि यह केवल इस-लिए है कि अपनी होने से ही हमको अच्छी प्रतीत होती है।"

"जी यह बात नहीं। वास्तव में ही वह बहुत अच्छी है।"

"होगी। देखें उसको पसन्द करने वाला कब कोई मिलता है?"

गोविन्द इसके अभिप्राय को समझता था। कला के पिता के इस कहने पर वह मन में यह समझा था कि उसको कला से विवाह का प्रस्ताव करने के लिए सुझाव दिया जा रहा है। इस कारण उसने भी संकेत से कह दिया,

"कलादेवी तो किसी भी घर की शोभा होगी।"

इस समय कला दूध के समान श्वेत कपड़े पहने हुए और अपना तानपूरा लिये अपने कमरे से निकल वहाँ आ गई। उसने आते ही कहा, "गोविन्द जी! चलिये। पहले ही बहुत देर हो गई है।"

गोविन्द ने भगवतस्वरूप को नमस्ते कही और कला के साथ मोटर पर सवार हो चल पड़ा। कला सदा पिछली सीट पर बैठती थी और गोविन्द स्वयं गाड़ी चलाता था। अब उसको अगली सीट पर बैठे-

बैठे कला से बातें करने का अभ्यास हो गया था। जब वे कोठी से बाहर निकल आये तो गोविन्द ने कला के पिता के कथन से प्रोत्साहित हो आज बात को किसी निर्णय तक पहुँचाने के लिए कहा, "कलादेवी! आपके पिता आपके संगीत की प्रशंसा सुन विस्मय करते थे। वे कहते थे कि कला अभी बच्ची ही तो है। लोग उसको नादान समझ उसकी प्रशंसा किया करते हैं।"

"वे ठीक ही तो कहते हैं। मैं अभी बालिका मात्र ही तो हूँ।"

"हाँ, अभी दूध पीती बच्ची ही हो। तभी तो तुम्हारे घर वालों को अभी तुम्हारे विवाह की चिन्ता नहीं हो रही।"

"और गोविन्द भैया को मेरे विवाह की बहुत चिन्ता हो रही है। उसके विचार में मैं बूढ़ी हो रही हूँ। ठीक है न?"

गोविन्द के विचारों पर कला द्वारा कहे गये 'भैया' शब्द ने तुषारपात कर दिया। वह चुप कर गया। कला खिलखिलाकर हँस पड़ी। उसने पूछा, "चुप क्यों कर गये भैया? क्या मैंने गलत कहा है?"

गोविन्द ने मोटर को सड़क के किनारे खड़ा कर दिया और घूमकर कहा, "यह तुमने क्या कहा है कला? मैं तुमसे यह आशा नहीं करता था।"

"क्या कर दिया है मैंने और क्या आशा नहीं करते थे आप?" कला ने गम्भीर होकर पूछा।

"देखो कला! मैं तुमसे प्रेम करने लगा हूँ। मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूँ। मुझको ऐसा विश्वास हो गया था कि तुम मुझको नापसन्द नहीं करती। परन्तु यह तुमने आज क्या कह दिया है?"

"गोविन्द जी! मैं आप से भगिनी समान स्नेह करती हूँ। इसी कारण अनायास ही मेरे मुख से भाई शब्द निकल गया है। यह स्वाभाविक ही था।"

"तो क्या यह स्नेह प्रेम में बदल नहीं सकता?"

"मैंने तो अपने मन की वर्तमान अवस्था का वर्णन किया है।

कल क्या होगा मैं स्वयं नहीं जानती और बता भी नहीं सकती।"

"तो अभी आशा के लिए स्थान है?"

"आशा तो जीवन का लक्षण है। इसकी पूर्ति के लिए इसका युक्तियुक्त होना आवश्यक है।"

"तो क्या तुमसे विवाह युक्ति संगत नहीं है?"

"इस विषय में मैं कुछ नहीं कह सकती। आप पढ़े-लिखे विद्वान हैं और किसी बात के युक्ति संगत होने का ज्ञान मुझसे आपको अधिक होना चाहिये।"

गोविन्द ने मोटर चला दी और कहा, "मुझको तो अपना व्यवहार युक्ति संगत ही प्रतीत होता है।"

"तो फिर आशा करिये कि आपके व्यवहार का फल निकलेगा।"

इसके पश्चात् विद्यालय पहुँचने तक परस्पर बातचीत नहीं हुई। दोनों अपने-अपने विचारों में लीन थे।

आज कला का संगीत बहुत ही श्रेष्ठ रहा। दो घन्टा भर श्रोतागण मन्त्रमुग्ध हुए बैठे रहे। गोविन्द को भी कुछ ऐसा अनुभव हुआ कि कला का मन बहुत प्रसन्न है। वह बहुत अच्छा गा रही है। वह अपने मन में विचार करता था, 'यह क्यों है? क्या उसको मेरे विवाह का प्रस्ताव स्वीकार है, जिससे उसके मन में उल्लास भर रहा है?' पूर्ण समय भर वह मन में यही विचार कर रहा था कि भगवान करे उसके मन में उसके लिए अनुराग उत्पन्न हो जाए।

घर लौटते समय उसने पुनः अपने मन की बात करते हुए कहा, "कला! आज तो तुम्हारा संगीत सर्वथा अलौकिक रहा है। अभी अभी विद्यालय के अध्यक्ष कह रहे थे कि तुमने इतनी उन्नति कर ली है कि तुमसे आगे निकल सकना असम्भव हो गया है।"

"हाँ, आप ठीक कह रहे हैं। संगीत आत्मा की प्रेरणा से चलता है और आज मेरी आत्मा अति आनन्दित है।"

"क्या मैं जान सकता हूँ कि ऐसा क्यों है? क्या मैं भी उस आनन्द

का भागीदार बन सकता हूँ ?"

"निस्सन्देह आप ही की तो बात है।"

यह सुन गोविन्द का मन धक-धक करने लगा। उसको विश्वास हो रहा था कि यह आनन्द उसके विवाह के प्रस्ताव से ही सम्बन्ध रखता है। इस पर भी वह उसके मुख से ही सुनने के लिए उत्सुक था। परन्तु कला चुप थी। गोविन्द कुछ काल तक उसके कहने की प्रतीक्षा करता रहा। जब कला ने आगे कुछ नहीं कहा तो उसने पुनः पूछा, "यदि यह बात मुझसे सम्बन्ध रखती है तो मैं जान भी सकता हूँ। क्या मैं इस बात की आशा करूँ कि ... ?" वह कहता-कहता रुक गया।

बात कला ने पूर्ण कर दी। उसने कहा, "अब रक्षा-बन्धन दिवस आ रहा है और मैं आपको राखी बाँधने पहुँचूँगी।"

गोविन्द चुप कर गया। कला ने अपनी बात चालू रखी "मैं आपको अपने मन के भाव बताने का विचार चिरकाल से रखती थी, परन्तु कोई अवसर ही नहीं मिल रहा था। आज अवसर मिला है और मैं बहुत प्रसन्न हूँ। मेरा चित्त बहुत हलका हुआ अनुभव कर रहा है।"

जब मोटर कोठी पर पहुँची, तो गोविन्द ने अपनी सीट पर बैठे-बैठे ही पिछला द्वार खोल दिया और कला के उतरते ही गाड़ी भगाकर ले गया। कला मुस्कराई और चुपचाप अपने कमरे की ओर चली गई।

सब भोजन कर चुके थे। आज भोजनोपरान्त कोई गम्भीर विषय वार्तालाप के लिए उपस्थित नहीं हुआ था, इस कारण सब अपने-अपने कमरे में चले गए थे। कला और शोभा एक ही कमरे में रहती थीं। जब कला वहाँ पहुँची तो शोभा ने पूछा, "दीदी! भोजन लाऊँ?"

"ले आओ।"

शोभा भागती हुई गई और रसोईघर में परसी हुई थाली भोजन की ले आई। कला हाथ धो खाने बैठी तो उसको कुछ ऐसा लगा कि आज शोभा नित्य से कुछ अधिक प्रसन्न है। जब कला भोजन कर रही

थी, शोभा तानपूरे के तार, जो मेज पर रखा था, छेड़ रही थी। कला को उसका यह चुलबुलापन अखर नहीं रहा था, कारण वह स्वयं भी बहुत प्रसन्न थी।

कला ने भोजन समाप्त किया और शोभा से पूछा, "पिताजी सो गए हैं क्या?"

"नहीं। आज परिवार की विधान समिति बैठी विचार कर रही है कि विनोद भैया सब परिवार का इकट्ठा रहना पसन्द नहीं करते।"

"तब क्या होगा?"

"पिताजी का कहना है कि यदि कोई परिवार में रहना नहीं चाहता तो उसको विवश नहीं किया जा सकता। यह तो स्वेच्छा से सबके सुख दुःख में एक होकर रहने की बात है। आज भोजन के समय कुछ अधिक वार्तालाप नहीं हुआ।"

"तुम क्या चाहती हो शोभा?"

"कुछ ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए कि जब भी कोई चाहे, इस संगठन से निकल सके। तब कम-से-कम झगड़ा होगा। साथ ही यह भी नियम होना चाहिए कि परिवार के जो आय न करने वाले सदस्य हों, उनका क्या हो। यदि उनका प्रबन्ध न किया गया तो आय करने वाले सदस्य न आय करने वालों को मझधार में छोड़ चले जावेंगे।"

"सबसे कठिन यही समस्या है। उदाहरण के रूप में मैं विवाह नहीं करना चाहती। मेरे लिए परिवार कुछ करेगा अथवा नहीं, यह एक विकट प्रश्न है।"

"तुम विवाह नहीं करोगी दीदी?"

"अभी तक तो यही निश्चय है। आशा है मेरा निश्चय स्थिर रहेगा।"

"पर पिताजी तो कहते थे कि तुम्हारा विवाह गोविन्दजी से हो सकेगा।"

"नहीं, यह नहीं होगा। उनको किसी कारण से भ्रम हो गया प्रती

होता है।"

"पर दीदी! कमलेश जी कैसे हैं?"

"किस काम के लिए? वह मुझसे दो वर्ष छोटा है।"

"तुम्हारे साथ विवाह के लिए नहीं, मैं तो यूं ही पूछ रही थी।"

कला को कुछ सन्देह हुआ तो उसने शोभा के मुख की ओर देखा। वह अभी भी मेज के समीप खड़ी तानपूरे के तारों को छेड़ रही थी।

जब कला ने शोभा के मुख की ओर देखा तो शोभा की आँखें झुक गईं और उसका मुख लाल हो गया।

कला ने ध्यान से शोभा की ओर देखा तो समझ गई। इस पर उसने पूछा, "कुछ बात हुई है कमलेश से?"

शोभा ने सिर हिला दिया। कला ने आगे पूछा, "उसने विवाह के विषय में कुछ कहा है?"

"हाँ! वे कहते थे कि कल अपने भाई द्वारा पिताजी से कहलवावेंगे।"

"ठीक तो है। फिर भी पिताजी जैसा कहें वैसा ही होना चाहिए।"

कला सोच रही थी कि विवाह के लिए राजी हो जाना कितना सुगम है। विवाह को इन्कार करने के लिए कितना साहस दिखाना पड़ता है।

अगले दिन रात के भोजनोपरान्त परिवार की समस्या पर बात होने की आशा सब लोग रखते थे, इस कारण सब चुपचाप भोजन कर रहे थे। कोई नहीं चाहता था कि उसके कुछ कहने अथवा करने से बात समय से पूर्व ही चल पड़े।

भगवतस्वरूप गम्भीर था। विनोद और भूषण सुरेश से इधर-उधर की बातें कर रहे थे। शोभा कला के समीप कुर्सी बैठी थी।

वह समझती थी कि शायद वह भी उस रात बातचीत का विषय बन जाये। कमलेश कुछ अधिक खोया-खोया-सा भोजन कर रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसको खाने का अधिक स्वाद आ रहा है और वह प्रत्येक ग्रास को अच्छी तरह चबा-चबाकर स्वाद ले रहा है। वह अपने पास बैठे हुओं में कुछ भी रुचि रखता प्रतीत नहीं होता था।

ज्यू-त्यू कर भोजन समाप्त हुआ। सब हाथ मुख धो चुके तो भगवतस्वरूप ने आरम्भ किया, "हमने इस परिवार को संयुक्त रखने के लिए कुछ नियम बनाये हैं। वे मैं आप सबको सुना देना चाहता हूँ।

"जो भी सम्बन्धि परिवार में रहना चाहेगा वह रह सकेगा। परिवार के सदस्य दो प्रकार के होंगे। एक वे जो धनोपार्जन करेंगे। दूसरे वे जो सब सदस्यों के खाने पहिरने तथा सुख सुविधा का प्रबन्ध करेंगे। स्कूल कालेज जाने वालों के अतिरिक्त कोई भी ऐसा सदस्य नहीं होगा जो नित्य के कार्यक्रम में परिवार के लिए कुछ न कुछ न करता हो। बेकार रहने वाला परिवार का सदस्य नहीं माना जाएगा। इस विषय का निर्णय कि कोई सदस्य ऐसा कार्य करता है या नहीं, जो परिवार के लिए उपयोगी है, परिवार का मुखिया करेगा। परिवार का मुखिया परिवार में वयोवृद्ध व्यक्ति होगा, या वह व्यक्ति होगा जिसको वह वयोवृद्ध नियुक्त करे।

"सब सदस्यों की सम्पत्ति परिवार की सम्पत्ति होगी। कोई भी सदस्य परिवार की सम्पत्ति के अतिरिक्त सम्पत्ति नहीं रख सकेगा। जितनी आय होगी वह परिवार के सदस्यों में बाँट दी जायेगी। आवश्यकता से अधिक कोई भी नहीं ले सकेगा।

"लड़कियों के विवाह पर व्यय सब सदस्यों की स्वीकृति से किया जायेगा। यदि कोई सदस्य परिवार से पृथक होना चाहेगा तो वह अपनी इच्छा से हो सकेगा, परन्तु उसको परिवार की सम्पत्ति का भाग सबकी स्वीकृति से दिया जायेगा, जो उस धन राशि से कम नहीं होगा जो परिवार की पूर्ण सम्पति को सदस्यों की संख्या से भाग देने पर बनेगी।

"ये सब नियम हैं, जो हमने विचार कर बनाए हैं। इनमें दो बातें विशेष हैं। एक तो सदस्य होने के लिए सदस्य की इच्छा और दूसरा परिवार से कोई सम्बन्ध होना आवश्यक है। अब आप इन नियमों को एक दो दिनों तक विचार कर लें। पीछे हम इस पर निर्णय करेंगे।"

विनोद ने तो उसी समय कह दिया "मैं इसमें सम्मलित नहीं होना चाहता।"

"क्यों ?" भूषण ने पूछा।

"मैं स्वेच्छा से विचरन करना चाहता हूँ। इस योजना में खर्चों पर नियन्त्रण परिवार के मुख्य पुरुष का होगा। इसमें मेरी स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लग जायेगा।"

"पर दादा ! हम सब प्रत्येक की उन्नति और सुख सुविधा के लिए सोचेंगे तो हम सब की उन्नति होगी। यह कोई कम बात है क्या ?"

"उन्नति तो एक दो के प्रयत्न से ही होती है। शेष तो 'पेरासाईट्स' ही होंगे।"

"पेरासाईट्स हों या कुछ और हों, जो कुछ भी हैं, वह तो हैं ही। उनका खर्चा तो हमें देना ही पड़ेगा। तुम्हारे एक लड़का और लड़की है। उनको क्या "पेरासाईट्स' कहोगे ? क्या नलिनी भाभी या कला को पेरासाईट् कहोगे ?"

"भूषण ! तुम नहीं समझते। ये सब आज से सौ वर्ष पूर्व के विचार हैं। संसार इनको गलत समझ कर छोड़ चुका है। हम इन पर आज के युग में आचरण नहीं कर सकते। आज मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत सीमा तक बदल चुकी हैं।"

"देखो भूषण ! आज इस पर विवाद की आवश्यकता नहीं है। कोई भी सदस्य परिवार में सम्मिलित होने से न कर सकता है।" भगवतस्वरूप ने विवाद बंद करते हुए कहा।

"पर पिता जी ! सब धनोपार्जन करने वाले सदस्य परिवार बनाने से इन्कार कर देंगे तो क्या होगा ?"

"तब परिवार नहीं बन सकेगा। परिवार के वे लोग जो धनोपार्जन नहीं करते वे उन उन के साथ हो जायेंगे, जिनसे उनका स्नेह है और जिनका आश्रय उनको स्वाभाविक रूप में चाहिए।"

उसी रात नलिनी और विनोद में पुनः झगड़ा खड़ा हो गया। नलिनी का कहना था कि परिवार में सम्मिलित हो जाना चाहिए। विनोद ने पूछा, "क्यों, तुमको इससे क्या लाभ है?"

"मेरा उत्तरदायित्व जोसफ और ऐमिलीन के विषय का बहुत सीमा तक परिवार के लोगों में बट जायेगा। यदि बच्चे योग्य हुए तो उनको उच्च शिक्षा दी जा सकेगी। आप के अकेले से तो मुझ को कुछ अधिक आशा नहीं रही।"

इस कथन ने विनोद के माथे पर त्योरी चढ़ा दी। उसने क्रोध में कहा, "यदि तुमको मुझ पर विश्वास नहीं तो मुझको छोड़कर चली क्यों नहीं जाती?"

"छोड़ नहीं सकती तभी तो कह रही हूँ कि कुछ समझ कर बात करो। पिता जी ने इतना अच्छा काम करवा दिया है। उनके आदर के लिए ही यह मान जाओ।"

"तुम मुझको बेवकूफ समझती हो? मुझे यह पसन्द नहीं। मेरा तुम्हारा सम्बन्ध इस प्रकार नहीं चल सकता। जब एक पत्नी के मन में पति के लिए मान ही न रहे तो फिर किस प्रकार इकट्ठा रहा जा सकता है?"

"आप कौन सा मेरा मान करते हैं?"

"तुम कौन मेरी ही पत्नी बन कर रही हो?"

"यह सब झूठ है।"

"तो जो तुम कहती हो वह भी झूठ है। तुम तो बदमाश हो ही।"

"तुम तो अव्वल दर्जे के झूठे, शराबी और जुवारी हो।"

"मैं तुमको आज मार ही डालूँगा। तब तो तुमसे छुटकारा मिल ही जावेगा।"

विनोद हाथ उठा नलिनी की ओर बढ़ा और नलिनी जो विनोद के स्वभाव से परिचित थी, भाग कर कमरे से बाहिर निकल गई।

कला के कमरे में तानपूरे के बजने का शब्द हो रहा था। नलिनी उधर ही भागी और कमरे में घुस कला के पीछे खड़ी हो गई।

कला नलिनी का भयभीत मुख देख रही थी। इसी समय विनोद हाथ में छड़ी लिये हुए आ गया। कला ने सब कुछ एक क्षण में समझ लिया और ताड़ना के भाव से हाथ से वहीं खड़े रहने का संकेत कर कहा, "भैया! यह क्या कर रहे हो?"

"तुम्हारी भाभी को शिक्षा दे रहा हूँ।"

"वह गाय-भैंस है क्या? यह यहाँ नहीं होगा भैया! अपने कमरे में लौट जाओ।"

"अच्छा फिर सही। बकरे की माँ कब तक खैर मनायेगी!" इतना कह विनोद वापस कमरे को लौट गया। कला ने भाभी को बैठ जाने के लिए कहा, "बैठो भाभी! देखो कैसा सुन्दर गाना है!"

कला ने गाना आरम्भ कर दिया,

"गई बीत उमरिया हरि नाम बिना, हरि नाम बिना।
बालापन है खेल गँवाया,
यौवन में रही विषय वासना,
वृद्ध भये तो कुछ नहीं भाये,
उमरिया बीत गई, हरि नाम बिना।
कौड़ी कौड़ी जोड़त थक गया,
मनुआ मन नहीं माना,
मरन समय कोई संग गया न
तब कौन बना हरि नाम बिना। उमरिया बीत……।"

नलिनी के मन में धीरे धीरे शान्ति व्याप्त हो रही थी। कला गा रही थी और नलिनी अपने पूर्व कर्मों पर विचार कर रही थी। उसको अपने बचपन का काल स्मरण हो आया। वह गिरजाघर में जाकर धर्म-

गीत गाया करती थी। एक गीत की अस्थाई होती थी,

"माई लार्ड ! यू आर माई मेन स्टे !"

आज उसी भाव का गीत कला को गाते सुन उस समय की भावनाएँ स्मरण होने लगीं। आज उसको अपने पूर्ण जीवन पर पश्चाताप होने लगा। वह विचार कर रही थी कि विवाह से पूर्व उसके मन मे यह इच्छा थी कि किसी योग्य धनी मानी युवक से विवाह होना चाहिए। जब उसकी दृष्टि विनोद पर पड़ी तो उसने उस पर मोह का जाल बिछाना आरम्भ कर दिया। वह मन मे विचार करती थी कि किस प्रकार विनोद से मिलने जाने से पूर्व वह घण्टों शृङ्गार और सजधज किया करती थी। जब वह उससे मिलने जाती थी तो उसमे अपने प्रति प्रेम जगाने के लिए वह कितनी योजनाएँ बनाया करती थी और अपनी अनुभवी सखियों से राय किया करती थी। जब वह विवाह हुआ तो वह कितनी प्रसन्न थी। परन्तु यह विवाह तो एक सुविधा की बात थी। उसमें प्रेम का कितना अश था, वह आँक नहीं सकी।

अब वह विचार करती थी कि कितना प्रेम है उसका विनोद के साथ और वह भी उससे थक चुका है। जीवन व्यर्थ गया। न ससारिक प्रेम मिला और न ही भगवान का आश्रय।

जब कला ने गाना समाप्त किया तो उसने पूछा, "कला बहन ! अब तो खेल सब समाप्त हो चुका है। जब सब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ चुकी हैं, तब प्रभु का नाम लेने से क्या हो सकता है ?"

कला ने कहा, "बैटर लेट दैन नैवर ! और फिर इस जन्म का ही तो कुछ भाग गया है। अभी न जाने कितने जन्म और हैं और उनका समय भी तो प्रभु भजन में लगाया जा सकता है।"

उस रात नलिनी कला के कमरे में ही सोई।

जब परिवार के विषय में पुन. चर्चा चली तो विनोद ने स्पष्ट कह दिया कि वह परिवार में रहना नहीं चाहता। इस पर नलिनी ने पूछ लिया, "पिताजी ! मैं यह जानना चाहती हूँ कि यदि मैं आपके परि-

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

गीत गाया करती थी। एक गीत की अस्थाई होती थी,

"माई लार्ड ! यू आर माई मेन स्टे !"

आज उसी भाव का गीत कला को गाते सुन उस समय की भावनाएँ स्मरण होने लगीं। आज उसको अपने पूर्ण जीवन पर पश्चाताप होने लगा। वह विचार कर रही थी कि विवाह से पूर्व उसके मन में यह इच्छा थी कि किसी योग्य धनी मानी युवक से विवाह होना चाहिए। जब उसकी दृष्टि विनोद पर पड़ी तो उसने उस पर मोह का जाल बिछाना आरम्भ कर दिया। वह मन में विचार करती थी कि किस प्रकार विनोद से मिलने जाने से पूर्व वह घण्टों शृङ्गार और सजधज किया करती थी। जब वह उससे मिलने जाती थी तो उसमें अपने प्रति प्रेम जगाने के लिए वह कितनी योजनाएँ बनाया करती थी और अपनी अनुभवी सखियों से राय किया करती थी। जब वह विवाह हुआ तो वह कितनी प्रसन्न थी। परन्तु यह विवाह तो एक सुविधा की बात थी। उसमें प्रेम का कितना अंश था, वह आँक नहीं सकी।

अब वह विचार करती थी कि कितना प्रेम है उसका विनोद के साथ और वह भी उससे थक चुका है। जीवन व्यर्थ गया। न संसारिक प्रेम मिला और न ही भगवान का आश्रय।

जब कला ने गाना समाप्त किया तो उसने पूछा, "कला बहन ! अब तो खेल सब समाप्त हो चुका है। जब सब इन्द्रियाँ शिथिल पड़ चुकी हैं, तब प्रभु का नाम लेने से क्या हो सकता है ?"

कला ने कहा, "बैटर लेट दैन नैवर ! और फिर इस जन्म का ही तो कुछ भाग गया है। अभी न जाने कितने जन्म और हैं और उनका समय भी तो प्रभु भजन में लगाया जा सकता है।"

उस रात नलिनी कला के कमरे में ही सोई।

जब परिवार के विषय में पुनः चर्चा चली तो विनोद ने स्पष्ट कह दिया कि वह परिवार में रहना नहीं चाहता। इस पर नलिनी ने पूछ लिया, "पिताजी ! मैं यह जानना चाहती हूँ कि यदि मैं आपके परि-

वार में सम्मिलित होना चाहूँ तो आप स्वीकृति देंगे या नहीं ?"

यह अति विकट समस्या थी। क्या पत्नी पति के अतिरिक्त किसी परिवार में सम्मिलित हो सकती थी ? भगवतस्वरूप ऐसी परिस्थिति की आशा नहीं करता था और उसने इस प्रकार की परिस्थिति पर विचार भी नहीं किया था। इस कारण उसने कहा, "नलिनी बेटी ! तुम विनोद के परिवार में नहीं रहना चाहतीं क्या ?"

"नहीं ! यह बात नहीं पिताजी ! वे मेरे परिवार मे नहीं रहना चाहते। पहले भी जब मै घर छोड़ कर गई थी, उन्होंने बच्चों को अपने साथ नहीं रखा था। उनको अपने पास रखने की इच्छा भी प्रकट नहीं की थी।"

"तो फिर वही स्थिति आज उत्पन्न हो गई है ?"

"नहीं ! हुई तो नहीं ! पर उत्पन्न कभी भी हो सकती है।"

"जब होगी तो पति का आश्रय छोड़ हमारे परिवार मे सम्मिलित हो सकती हो।"

"मैं तीन दिन से कला के साथ उसके कमरे मे सो रही हूँ।"

यह एक अति दुरूह परिस्थिति थी। सब चुपचाप पिता के निर्णय की प्रतीक्षा करने लग गए। भगवतस्वरूप ने पूछा, "क्यों ?"

"हमारा झगड़ा तो शायद इस समय सुलझाया नहीं जायगा। इस समय मेरा प्रश्न सिद्धान्तात्मक है। क्या आपकी बहू आपके परिवार का आश्रय ले सकती है जब कि आपका लड़का परिवार से बाहर रहना चाहे ?"

"हाँ एक अवस्था में !" भगवतस्वरूप ने विचार कर कहा, "यदि उनके बच्चे माँ के साथ हों।"

"यदि बच्चे पिता द्वारा छीन लिए जायें तो ?"

"तब दोनों में विग्रह का कारण जानना आवश्यक हो जावेगा। उस जाँच मे यदि बहू निर्दोष सिद्ध हुई तो उसकी रक्षा करना और उसको आश्रय देना हमारा कर्तव्य हो जावेगा।"

"और यदि," विनोद ने बात में दखल देते हुए कहा, "बच्चे मा के पास रहें तो फिर झगड़े की जाँच की आवश्यकता क्या नहीं?"

"बच्चों का मा के पास रहना मात्र ही मा को रक्षा और आश्रय प्राप्त करने का अधिकार दे देता है।"

"तो ठीक है। न नलिनी मेरे पास रहेगी न बच्चे। मैं अकेला ही रहना चाहता हूँ।"

"देखो विनोद! यदि भूषण परिवार मे सम्मिलित होना चाहेगा और मैं भी परिवार में सम्मिलित हुआ तो नैशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी परिवार की सम्पत्ति हो जावेगी और तुम केवल वेतनधारी कार्यकर्ता। कम्पनी तुमको पाँच सौ रुपया महीना दे सकेगी। अब बताओ तुम अपनी पत्नी और बच्चों के खर्चे के लिए क्या दे सकोगे?"

"पाँच सौ मे से डेढ सौ तक दे सकूँगा।"

"यह बहुत कम है पिताजी!" नलिनी ने कहा।

"देखो बेटा नलिनी! परिवार मे कोई भी बात दूसरों को विवश कर नहीं की जा सकती।"

"मैं जिस प्रकार की शिक्षा अपने बच्चों को देना चाहती हूँ, वह इतने खर्चे से नहीं दी जा सकती।"

"यदि तुम परिवार में सम्मिलित हो जाओगी तो बच्चों की शिक्षा तुम्हारे अकेले की जिम्मेदारी नहीं रह जायेगी। यह परिवार का काम है कि देखे कि कौन कितनी शिक्षा के योग्य है। इसका तुम्हारे खर्चे की धन राशि से कोई सम्बन्ध नहीं होगा।"

नलिनी को बात समझ आ गई। वह चुप कर गई। विनोद ने आपत्ति उठाई, "यदि मैं आपके परिवार का अंग नहीं रहूँगा तो फिर कहाँ और किसकी नौकरी करूँगा, पीछे विचार कर लूँगा। साथ ही नलिनी का खर्चा भी मेरे वेतन पर निर्भर है।"

"यह तो है ही। पाँच सौ मासिक से अधिक कहीं मिलेगा तभी तो यह काम छोड़ कर जाओगे। कहीं अधिक वेतन पर गये तो नलिनो

को भी अधिक खर्चा मिलेगा ही।"

"यह भी तो हो सकता है कि अच्छी नौकरी कम वेतन पर मिल जाये।"

"हाँ, तब कम खर्चा दे देना।"

बात इस प्रकार निश्चय हो गई। अन्य सबने परिवार बनाने का निर्णय कर लिया और अगले दिन से सुरेश की दुकान और नैशनल कन्स्ट्रक्शन का लेन-देन परिवार का काम हो गया। भगवतस्वरूप दोनों का हिसाब-किताब देखने लगा और उसमें से नलिनी और उसके बच्चों के लिए डेढ सौ रुपया मासिक विनोद के वेतन में से काट कर निकाला जाने लगा।

नलिनी ने परिवार की आय बढाने के लिए पिताजी से कहीं नौकरी कर लेने की स्वीकृति माँगी, परन्तु भगवतस्वरूप ने कहा, "मैं आवश्यकता नहीं समझता। यदि कोई ऐसी दुर्घटना हो गई कि तुमको घर से बाहर कहीं काम करना पड़ा तो मैं स्वयं कह दूँगा। तुमको अभी बच्चों की देख-भाल भी करनी है। वह कुछ कम काम नहीं है।"

एक दिन विनोद पिताजी के पास आकर बोला, "मैं अब कोठी में नहीं रहना चाहता।"

"क्यों?"

"यहाँ कोई सोशल लाईफ नहीं है। मैं होटल में जाकर रहूँगा।"

"तो पहली सोशल लाईफ का स्वाद भूल गये हो विनोद! जो अब फिर उस ओर भागने लगे हो?"

"मैं पहिले अनुभव से अब लाभ उठाऊँगा।"

भगवतस्वरूप चुप रहा और अगले दिन विनोद नीडोज होटल में जाकर रहने लगा। नलिनी इस परिस्थिति से अति निराश थी। यदि वह कहीं अकेली रहती होती तो शायद आत्म-हत्या कर लेती, परन्तु वह कान्ता, कला इत्यादि को देखती थी और सन्तोष अनुभव करती थी।

सबसे विचित्र बात, उसको, सुरेश का अपना सब कुछ देकर भगवत-स्वरूप के परिवार में सम्मिलित होना प्रतीत हुई। एक दिन उसने कान्ता से कह ही दिया, "मैं समझती हूँ कि आपको परिवार में सम्मिलित होने की आवश्यकता नहीं थी। भगवान की कृपा से आपका कारोबार चलता था।"

"देखो भाभी!" कान्ता ने कहा, "मैंने प्रदीप के पिता से नहीं कहा था कि वे इस प्रकार परिवार में सम्मिलित हो जाएँ। यह उनके अपने मन की ही बात थी। मैंने कहा था, 'आपको इस प्रकार घाटे का सौदा करने की क्या आवश्यकता है?'

"इस पर वे बोले, 'कई बार ऐसे काम भी करने पड़ते हैं जिनमें धन लाभ के विचार से नहीं दिया जाता। प्राय लोग बीमा कराते हैं। जितना वे देते हैं उससे कम ही वापिस मिलता है। फिर भी लोग अपना बीमा कराते हैं। इसमें कारण है। उनका, जीवन काल में किसी दुर्घटना से, पत्नी और बच्चों के निस्सहाय रह जाने का भय कुछ सीमा तक मिट जाता है। बीमा कम्पनी को लोग अपने निर्भय होने की कीमत लाखों रुपये देते हैं। मैं भी परिवार में इसी विचार से सम्मिलित हुआ हूँ। यह बीमा से अधिक लाभदायक बात बन गई है। इसमें न केवल मैं निर्भय ही हुआ हूँ, प्रत्युत मेरे इसमें सम्मिलित होने से तेरह-चौदह अन्य प्राणियों को भी निर्भयता प्राप्त हुई है।"

"मुझको उनकी बहुत चिन्ता रहती है।" नलिनी ने गम्भीर हो कहा। वह विचार करती थी कि इतनी सरल बात भी उसके पति को समझ नहीं आती।

कान्ता ने कहा, "मैं समझती हूँ कि तुमको उनसे सम्पर्क बनाये रखना चाहिए।"

"जब वे यहाँ थे तब कई बार मैंने उनसे सुलह करने का यत्न किया था, परन्तु वे मारने को दौड़ते थे।"

"इस पर भी, कभी-कभी उनसे मिलने जाने में क्या हानि है? कभी

कला को साथ लेकर चली जाया करो। कला के सम्मुख वह तुम्हारा अपमान नहीं कर सकेंगे।"

नलिनी ने यह प्रस्ताव कला के सम्मुख रखा। कला विनोद की ओर से सर्वथा निराश थी, परन्तु भाभी के लिए वह जाने को तैयार हो गई।

जब से विनोद होटल में जाकर रहने लगा था, उसके पुराने मित्र और साथी उसके चारों ओर एकत्रित होने लगे थे। यह ठीक था कि वह अब जूआ और शराब के समीप नहीं जाता था। इस पर भी पाँच सौ मासिक में डेढ़ सौ तो नलिनी ले जाती थी। शेष साढ़े तीन सौ में से दो सौ बीस रुपया तो होटल के बोर्ड और लौजिंग पर व्यय हो जाता था। शेष एक सौ तीस रुपये में उसका पाकेट खर्च, कपड़े, धोबी इत्यादि का खर्च कठिनाई से चलता था। मोटर तो उसको कंस्ट्रक्शन कम्पनी की ओर से मिली हुई थी।

इस प्रकार रहते हुए उसको कई मास हो चुके थे। इन महीनों में यद्यपि उसको ऋण लेने की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, तो भी वह एक पैसा भी बचाकर रख नहीं सका था।

उसका एक मित्र था पीटर सिबेस्चियन। वह गोआ का रहने वाला था। जब विनोद सरकार का सचिव था, तब ही इससे परिचय हुआ था। विनोद ने पीटर की कभी सहायता की थी, इस कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए वह कभी-कभी विनोद से मिलने आया करता था। वह देख रहा था कि विनोद उतनी उदारता से उसकी और अन्य मित्रों की आवभगत नहीं कर सकता था, जितनी वह पहिले किया करता था।

एक दिन वह आया और कहने लगा, "विनोद! मैं देख रहा हूँ कि आजकल तुम मस्जिद के चूहे की भाँति कंजूस हो रहे हो। शायद आजकल अतिरिक्त आय का कोई साधन नहीं है।"

"मिस्टर पीटर! मैंने कसम खाई हुई है कि मैं अब जुआ नहीं खेलूँगा। रिश्वत का तो प्रश्न ही नहीं उठता। इन दो उपायों से अतिरिक्त कोई आय का स्रोत हो सकता है, मैं नहीं जानता।"

"इसी प्रयोजन से मैं आज आया हूँ। एक योजना है जिससे मैं तुम्हारी कुछ सहायता करना चाहता हूँ। क्रिसमस आ रही है और इन दिनों मेरा एक मित्र, किला गूजरसिंह के बाहर मैदान में एक कार्निवल लगाना चाहता है। उसको इस धंधे का बीस वर्ष का अनुभव है। उसको कुछ थोड़े से प्रारम्भिक व्यय के लिए रुपये की आवश्यकता है। यदि तुम यह लगा दो तो मैं तुमको एक तिहाई का भागीदार उसमें बनवा दूँगा। एक मास तक यह कार्निवल चल सकेगा और आशा है कि इस एक मास में दो-तीन लाख रुपये की टिकट की बिक्री हो जायेगी और फिर ऊपर से भी आय होगी। खर्चा निकालकर हमको डेढ़-दो लाख के आय की आशा करनी चाहिए। उसमें से एक तिहाई तुम्हारी होगी।"

"कौन है वह तुम्हारा मित्र?"

"एक रहीमबख्श है। बम्बई में इसके थियेटर चलते थे।"

"कितने रुपये की आवश्यकता होगी?"

"दस हजार पेशगी चाहिए। पश्चात् तो आय बीच में होने लग जायेगी।"

"इतना रुपया तो मेरे पास है नहीं।"

"आप अपने पिता से ले दीजिये। हम उसका सूद दे देंगे।"

"उस व्यक्ति को पहिले मिला दो। सब योजना सुनकर ही कुछ विचार कर सकता हूँ।"

"कल उसको लाऊँगा। रात का भोजन यहीं करेंगे।"

विनोद इन्कार नहीं कर सका। दो मेहमानों का अभिप्राय था, दस रुपये। वह इतना भी व्यर्थ में व्यय करने से हिचकिचाता था।

अगले दिन रहीमबख्श और पीटर दोनों आये। रहीमबख्श बहुत

ही सभ्य भाषा बोलने वाला और खुले दिल से बात करने वाला व्यक्ति था। भोजन पर बैठ बातचीत प्रारम्भ हो गई। रहीमबख्श ने बताया, "अभी तो मैदान साफ करना है। टीन की हदबन्दी करनी है। फाटक बनवाने होंगे। झण्डियाँ, फानूस और बिजली इत्यादि सजावट का सामान लगवाना है। एक नाचने का रिंक बनवाना होगा। कुछ लड़कियाँ पुरुषों के साथ नाचने के लिए किराये पर लेनी होंगी। इतना कुछ तो हमको करना है। इसके अतिरिक्त खेल कूद, झूले, जुए के बूथ, ये हम दूसरों को किराए पर दे देंगे। प्रत्येक भीतर आने वाले के लिए चार आना टिकट रहेगा। अन्दर खाने-पीने की दुकानें, एक छोटा-सा सिनेमा और हो सका तो थिएटर के लिए भी स्थान बनवाने होंगे। इस सबके लिए दस हजार नकद और एक तम्बू कनातों वाले से परिचय रखने वाला व्यक्ति चाहिए।

"मुझको विश्वास है कि लाभ का तीसरा भाग जो आपका होगा, वह साठ-सत्तर हजार रुपए से कम नहीं होगा। यह सब एक मास में प्राप्त होगा।"

विनोद लोभ में फँस गया और बोला, "कल तक इसका उत्तर दे सकूँगा।"

दुर्भाग्य से अगला दिन वेतन देने का दिन था। मजदूरों, राज-गीरों, तरखानों को, जो कन्स्ट्रक्शन कम्पनी में काम करते थे, वेतन देना था। वेतन का चिट्ठा भगवतस्वरूप ने बनाकर विनोद को दे दिया और साथ ही चिट्ठे के अनुसार दस हजार पाँच सौ छियासठ रुपए का चैक दे दिया।

"विनोद चैक लेकर गया और बैंक से कैश करवा लिया। उसके मन में रहीमबख्श की योजना चक्कर काटने लगी। उसने बैंक से रुपया निकलवाया और लंच के लिए होटल चला गया। वहाँ रहीमबख्श और पीटर पहिले से ही बैठे थे। पीटर ने कहा, "मिस्टर विनोद! आज प्रातःकाल एक और पार्टी रुपया लगाने के लिए आई थी, परन्तु

आपसे मेरा पुराना परिचय है और फिर आपसे पहिले बातचीत हो चुकी थी। यदि आप आज ही सकेत दें तो हमारा-आपका वचन पक्का रह सकता है, नहीं तो कल प्रातःकाल हम दूसरी पार्टी से सम्बन्ध कर लेंगे।"

"देखिये मिस्टर पीटर!" विनोद ने गम्भीर होकर कहा, "आपको सब रुपया एकदम तो चाहिए नहीं। पाँच हजार मैं इसी समय दे सकता हूँ और शेष पाँच हजार अगले सप्ताह दे दूँगा। क्या यह ठीक नहीं होगा?"

"यूँ तो रुपया एकदम चाहिए, परन्तु आपने मेरी कई बार सहायता की है और मैं आपका कृतज्ञ हूँ, इस कारण यदि शेष रुपया अगले सप्ताह भी दे दें तो ठीक रहेगा।"

विनोद ने जेब से नोटों के बंडल निकाले और पाँच हजार रुपया पीटर के हाथ में दे एक रसीद लिखवा ली और उस पर पीटर और रहीमबख्श दोनों के हस्ताक्षर करवा लिए। यह रुपया क्राउन कार्निवल के साझीदार के हिसाब में पेशगी था।

जब रहीमबख्श और पीटर चले गये तो विनोद को उस दिन की वेतन चुकाने की चिन्ता लगने लगी। बहुत देर तक वह हिसाब बनाता रहा। अन्त में उसको यह योजना सूझी कि वह सब काम करने वालों को कहे कि आज आधा वेतन दिया जायेगा, शेष अगले सप्ताह में दे दिया जायेगा। यह विचारकर वह काम पर जा पहुँचा। मुंशी को उसने बताया कि आधे-आधे वेतन का चिट्ठा तैयार करे। ऐसा ही कर दिया गया। मजदूर और कारीगर सब इस कम्पनी की वेतन देने में सतर्कता के लिए सन्तुष्ट थे, इस कारण यह समझ कि रुपये की कुछ कठिनाई है, चुप कर रहे।

इस समय तो बात चल गई, परन्तु अगले सप्ताह इतना रुपया और चाहिये था और साथ ही चिन्ता की बात यह थी कि क्या यह बात दो मास तक चोरी रह सकेगी।

प्रतिदिन सायंकाल वह कार्निवल की भूमि पर जाता और वहाँ पर हो रही तैयारी को देखकर संतोष अनुभव करता था। अधिकारियों से उचित स्वीकृति ले ली गई थी और भूमि समतल कर उस पर टीन की चारदीवारी खड़ी की जा रही थी। लकड़ी और कपड़े के ढाँचे पर फाटक तैयार होने लगा था। एक सप्ताह पश्चात् इस भूमि पर एक छोटा-सा नगर बसने के लक्षण दिखाई देने लगे थे।

अगले सप्ताह विनोद ने पुनः आधा-आधा वेतन देकर पाँच हजार बचा लिया। इस सप्ताह कर्मचारियों को समझाने में कुछ कष्ट हुआ; परन्तु विनोद के कहने पर कि अगले सप्ताह उसका बिल पास हो जाने पर उनको कोई कष्ट नहीं रहेगा, सब मान गये। यह पाँच हजार एक और रसीद लिखाकर पीटर और उसके साथी को दे दिया गया।

अब कार्निवल की भूमि पर सजावट होने लगी। बिजली लग गई और खाने-पीने के स्टाल तथा जूए के बूथ, झूले तथा अन्य खेल-तमाशे के अड्डे बन गए। इनसे जो रुपया आया वह भी सब बीच में ही खर्च हो गया। एक बहुत ही सुन्दर नाचघर बनाया गया। इसका फर्श लकड़ी का बनाया गया। लगभग दो दर्जन लड़कियाँ पाँच-पाँच और दस-दस रुपये नित्य पर नाचने के लिए लाई गईं और समय के पूर्व सब काम 'टिप टॉप' हो गया।

तीसरे सप्ताह विनोद ने केवल एक सप्ताह का वेतन बाँटा। इस सप्ताह भी विनोद को कर्मचारियों को बहुत समझाना पड़ा। कर्मचारियों ने वेतन ले लिया परन्तु वे बुरबुराते रहे।

इस दिन एक बात यह हो गई कि जब वेतन बँट चुका, भूषण मोटर में वहाँ आ पहुँचा। विनोद ने तुरन्त रजिस्टर बन्द करवा दिया और भूषण को जाकर काम दिखाने लगा। अगले दिन इमारत के मालिकों ने पैमाइश के लिए आना था। भूषण ने उनको काम दिखा कर कुछ रुपया लेना था।

विनोद सब काम दिखा कर भूषण को साथ लेकर चला गया।

मार्ग में दोनों एक दूसरे से विदा हो गए। भूषण जब घर पहुँचा तो उसको अपना पोर्टमैन्ट्यू स्मरण हो आया। वह काम पर जाते समय उसके पास था। उसको स्मरण हो आया कि काम देखने से पहले उसने वह मेज पर रखा था। आते समय वह उसको उठाना भूल गया था। इसमें काम के आवश्यक पत्र थे, इस कारण भूषण ने मोटर उलटे पाँव लौटा ली और पुन काम पर जा पहुँचा।

मुन्शी ने वह बैग देख लिया था और उसको उठाकर अपनी कुटिया में, जो ईंटों को जोडकर अस्थायी रूप में बनाई हुई थी, ले गया था। भूषण की मोटर आई तो मुन्शी समझ गया कि वह अपना बैग लेने आया है। वह बैग लेकर मोटर के पास आ गया। बैग देते हुए उसने कहा, "हुजूर! वेतन पूरा न मिलने से मजदूरों मे असन्तोष फैल रहा है। इसका प्रबन्ध हो जाना चाहिए।"

भूषण एक दूसरे काम में व्यस्त था और इधर के वेतन के विषय मे कुछ नहीं जानता था। उसने मजदूरों और मुन्शी को सान्त्वना देने के लिये पूछ लिया, "अन्तिम वेतन कब मिला था?"

"मिला तो आज ही था, परन्तु एक-एक सप्ताह का सबका शेष रहता है।"

"कुछ हानि नहीं। कुछ रुपये की दिक्कत हो गई होगी। कल मालिकों से रुपया मिलने वाला है। एक-दो दिन में सबका बकाया चुका देंगे।"

इससे मुन्शी को सन्तोष हो गया और भूषण अपना बैग लेकर घर लौट आया। मार्ग में वह विचार कर रहा था कि बैंक में रुपया तो था। पिताजी को वेतन रोकना नहीं चाहिये था। कौनसी ऐसी आवश्यकता आ पडी थी कि एक सप्ताह का वेतन रोक लिया गया है?

जब वह कोठी मे पहुँचा तो पिताजी टहल रहे थे। इस कारण वह वहाँ ही उनसे पूछने के लिए जा पहुँचा। उसने पूछा, "पिताजी बैंक मे बैलैन्स नहीं है क्या?"

"क्यों नहीं ? मेरा विचार है कि लगभग पच्चीस हजार अभी भी होगा। परसों ही तो साठ हजार का चैक मिला था और वह अवश्य वसूल हो गया होगा।"

"पुरानी अनारकली वाले काम पर लगे हुए कर्मचारियों को एक सप्ताह का वेतन नहीं मिला।"

"कौन कहता है ?"

"मैं आज वहाँ गया था। मुन्शी ने बताया है कि मजदूरों में एक सप्ताह का वेतन रुक जाने से असन्तोष फैल रहा है।"

"पर मैं तो प्रति सप्ताह बिल पास कर चैक काट दिया करता हूँ।"

भगवतस्वरूप कार्यालय मे जाकर रजिस्टर देख भूषण से बोला, "मैं कल तक के काम का सब हिसाब दे चुका हूँ। पश्चात् उसने चैक बुक देख कर बताया कि जब से काम चालू हुआ है प्रति सप्ताह शुक्र-वार तक की मजदूरी शनिवार को दे दी जाती रही है।"

भूषण कुछ समय तक विचार करता रहा और फिर कहने लगा, "कल जाकर पता करूँगा।"

अगले दिन वह वहाँ विनोद के काम पर पहुँचने से पहिले ही जा पहुँचा और मुन्शी की किताब, जिसमें मजदूरी वितरण का हिसाब लिखा जाता है, देख ली। पता चल गया कि दस हजार से अधिक रुपया गबन हो चुका है। दो-चार लोगों से पूछा भी। पूर्व इसके कि विनोद वहाँ आता, वह चला आया। घर पर पहुँच उसने पूरा वृत्तान्त पिताजी को बता दिया।

"अच्छी बात है," भगवतस्वरूप ने कहा, "तुम अपने काम पर जाओ। मैं इसका प्रबन्ध करता हूँ।"

भूषण जब चला गया तो भगवतस्वरूप ने एक पत्र विनोद को लिखा, "विनोद ! वेतन बाँटने के रजिस्टर लेकर सायंकाल यहाँ चले आओ।" यह पत्र पन्नू चपरासी के हाथ विनोद को भेजा गया।

कई दिन से नलिनी विनोद से मिलने जाने के लिए कला को कह रही थी, परन्तु किसी न किसी कारण से जाना टलता जाता था। कभी कला को अवसर नहीं होता था और कभी नलिनी किसी सीने-पिरोने के काम में लगी होती थी। आखिर एक दिन दोनों कोठी से निकलीं और टाँगा ले नीडाज होटल में जा पहुँचीं। होटल के कार्यालय से विनोद के कमरे का नम्बर पूछ उधर चल पड़ीं। जब वे उस ब्लाक में पहुँचीं, जिसमें विनोद का कमरा था, तो उनको उस ओर से पन्नू चपरासी आता दिखाई दिया। पन्नू ने दोनों को देखा तो सलाम कर मुस्कराता हुआ पास से निकल गया। कला इस मुस्कराहट का अर्थ नहीं समझी। उसने नलिनी की ओर प्रश्न-भरी दृष्टि से देखा। नलिनी ने कहा, "लक्षण कुछ अच्छे प्रतीत नहीं होते।"

"क्यों?"

"मैं पन्नू के स्वभाव को जानती हूँ। कुछ अनियमित बात है, अन्यथा वह मुस्कराया नहीं करता।"

इस पर भी दोनों कमरे के बाहर जा खड़ी हुईं। कला ने यह देखने के लिए कि वह बन्द है अथवा खुला हुआ, धीरे से खोलने का यत्न किया। पता चल गया कि भीतर से बन्द है। कला ने दरवाजे को खट-खटा दिया। उसका अनुमान था कि भीतर विनोद सो रहा होगा। वह सोने को उपयुक्त समय तो नहीं था। इस कारण उसको जगाने के लिए उसने कुछ प्रतीक्षा कर जोर से दरवाजा खटखटा दिया। भीतर से आवाज आई, "कौन है?"

"हम हैं।" कला ने कहा।

"हम कौन?"

"मेहमान।"

"हैल विद दि गैस्टस।" विनोद ने क्रोध में भीतर से कहा। इसके दो मिनट के पश्चात् भीतर से दरवाजा खुला और होटल की एक वेट्रैस माथे पर त्योरी चढ़ाये हुए कमरे से निकल गई।

कला के पाँव तले से मिट्टी खिसक गई। वह, जहाँ थी, वहीं जड़वत खड़ी रह गई। नलिनी का माथा भी ठनका। उसने समझ लिया कि वे ठीक समय पर नहीं आई। यह विचार कर नलिनी ने कहा, "चलो लौट चलें। फिर आयेंगे।"

कला लौटने के लिए घूमी ही थी कि विनोद ने भीतर से आवाज दी, "अब लौटने से क्या मतलब है? आओ बताओ, किस लिए आई हो?"

दोनों भीतर जा पहुँचीं। विनोद ने उनको बैठने को नहीं कहा। वह स्वयं उनके समीप आ खड़ा हुआ और पूछने लगा, "पिताजी ने भेजा है तुमको?"

"नहीं तो।" नलिनी ने कहा।

"झूठ बोलती हो?"

"नहीं, भैया!" कला ने नम्र स्वर में कहा, "हम तो केवल आप से मिलने आई हैं। पाँच महीने हुए हैं और आप इधर आये ही नहीं।"

"तुम भी इसके साथ रहकर झूठ बोलना सीख गई हो? क्या पिताजी ने नहीं कहा कि विनोद को बुला लाओ?"

"दादा! तुम ज्यों-ज्यों बड़े होते जाते हो असभ्य बनते जाते हो। किन मूर्खों की संगत में रहते हो कि जिससे छोटी बहिन के साथ बात करने की सभ्यता भूल गये हो? अब हम चलते हैं।"

कला कमरे के दरवाजे की ओर घूमी और विनोद मार्ग रोककर खड़ा हो गया। वह जोर से बोला, "क्या कहने आई थीं? बताओ न पिताजी ने क्या कहकर भेजा है?"

"हम पिताजी से मिलकर नहीं आईं। हम नहीं जानतीं कि आपको किस बात का भय लग रहा है?"

"मैं भयभीत नहीं। मैं किसी की परवाह नहीं करता। जाकर कह देना जो मन में आये कर लें।"

नलिनी को वहाँ आने का पश्चाताप होने लगा। इससे उसने हाथ जोड़कर कहा, "आप इतना हल्ला क्यों करते हैं? हम चली जाती हैं। आप निश्चिन्त हो, जो मन में आये, करिये।"

विनोद ने समझा कि नलिनी होटल की वेट्रेस की उपस्थिति की ओर संकेत कर रही है। इस कारण उसने एक चपत नलिनी के मुख पर दे मारी और कहा, "स्वाईन।"

कला ने देखा कि बात बहुत बढ़ गई है। इस कारण पूर्व इसके कि वह दूसरी चपत नलिनी के मुख पर मारे वह भाई को धकेलकर दोनों के बीच में खड़ी हो गई और नलिनी के लिये उठा हाथ कला के सिर पर लगा। कला को चपत लगी तो उसका मस्तिष्क चकराने लगा। इस पर भी उसने साहस बाँधकर कहा, "भैया! ध्यान करो। देखो क्या कर रहे हो?"

कला को चपत लगने पर विनोद डर गया। उसका कला को पीटने का आशय नहीं था। इससे उसने अपना हाथ रोक लिया और बितर-बितर उनको देखने लगा। नलिनी इस दुर्व्यवहार पर रोने लगी थी। यूं तो कला की आँखों में भी आँसू आ गये थे, परन्तु वह अपने क्रोध को भीतर-ही-भीतर पीकर भाई को मार्ग से एक ओर कर नलिनी से बोली, "भाभी! चलो। न जाने किस पशु से वास्ता पड़ा है।"

दोनों बाहर निकलीं और उधर जहाँ उनका टाँगा खड़ा था चल पड़ीं। नलिनी आँखों से आँसू पूँछती हुई चुपचाप चली जा रही थी। जब टाँगा लारेंस गार्डन में पहुँचा तो वे उसको वहाँ खड़ा कर बाग में जा बैठीं। वहाँ एकान्त में बैठ अपने को शान्त करने लगीं। कला का कहना था कि पिताजी को पता नहीं लगना चाहिए कि वे यहाँ आई थीं और उनसे दुर्व्यवहार हुआ है।

"हमने उस लड़की को कमरे में देख लिया था। इसी कारण उसने हमको पीटा है। पर वह पिताजी का नाम बार-बार क्यों लेता था?"

"अवश्य कोई गड़बड़ की प्रतीत होती है। कुछ पिताजी से

चोरी वे अवश्य कर रहे हैं।" नलिनी ने यह कहा और गम्भीर विचार में लीन हो गई।

एक घण्टा-भर वे वहाँ चुपचाप बैठी रहीं। जब उन्होंने अनुभव किया कि वे शान्त हैं और उनको देखकर कोई उनके मन की दुखित अवस्था का अनुमान नहीं लगा सकता, तो वे उठीं और घर को चल दीं।

जब घर पहुँचीं तो भगवतस्वरूप उनकी प्रतीक्षा करता हुआ कोठी के फाटक के समीप खड़ा था। उनके पहुँचते ही उसने उनसे पूछा, "विनोद नहीं आया क्या ?"

"तो आपने बुलाया है उनको ?" कला ने पूछा।

"हाँ मैंने पचू के हाथ बुला भेजा था। उसने उसको कहा था कि वह आ रहा है। पचू ने ही बताया था कि तुम वहाँ गई थीं। इससे मैंने समझा था कि वह तुम्हारे साथ ही आ जावेगा।"

"भैया शायद नहीं आयेंगे।" कला ने आँखें नीचे किये हुए कहा।

"क्यों ?"

"उनकी तबीयत ठीक नहीं है।"

"बीमार है ? क्या बीमारी है ?"

नलिनी ने उत्तर दिया, "पिताजी ! शरीर तो स्वस्थ है पर मन अस्वस्थ प्रतीत होता है। आज" " वह कहती-कहती रुक गई। उसकी आँखों से फिर आँसू निकल आये। वह जब अपने आँसू छुपाने में असमर्थ अनुभव करने लगी तो भागकर अपने कमरे में चली गई। भगवतस्वरूप अवाक् खड़ा रह गया।

जब नलिनी चली गई तो भगवतस्वरूप ने कला से पूछा, "क्या हुआ है कला ! तुम वहाँ क्यों गई थीं ?"

इस पर कला ने अपने वहाँ जाने का कारण और वहाँ जो-कुछ हुआ सब सुना दिया। भगवतस्वरूप यह सुन क्रोध से लाल हो गया।

उसने कहा, "तो तुम्हारे सामने उसने नलिनी को पीटा है। बहुत निर्लज्ज है।"

कला अपने कमरे में गई। उसको शोक और अपमानित किये ज से भूख नहीं रही थी। इस कारण वह भोजन करने नहीं आई। नलि भी अपने कमरे से बाहर नहीं निकली।

आज दूसरी बार भगवतस्वरूप ने अपने बच्चों से विनोद की श कहने में लज्जा अनुभव की। भोजनोपरान्त वह भूषण और सुरेश अपने कमरे में ले गया और वहाँ बैठाकर उसने उनको बताया कि उ पन्नू के हाथ विनोद को बुला भेजा था। वह नहीं आया। उसने भी बताया कि कला और नलिनी वहाँ गई थीं और उसने उन दोनों पीटा है। वह अपने कमरे का दरवाज़ा बन्द कर एक लड़की के स बैठा था। मैं समझता हूँ कि कम्पनी के रुपये से गुलछर्रे उड़ा रहा है

"यह तो ठीक नहीं हुआ पिताजी! अब तो यह केवल मेरा श आपका धन नहीं है। यह पूर्ण परिवार के धन पर डाका है।"

"इसीसे तो आपसे राय लेना चाहता हूँ कि क्या करना चाहि मेरा मन तो करता है कि उसको पुलिस के हवाले कर दूँ।"

"नहीं पिता जी!" सुरेश का कहना था, "इससे बात अ बिगड़ेगी। मेरी सम्मति है कि कल प्रातःकाल से उसको काम से पृ कर दीजिए और उसको कहा जाये कि घाटा पूरा करे। मैं इस वि को पुलिस और न्यायालय में ले जाना हितकर नहीं समझता। इ हमारे कारोबार की बदनामी होगी।"

भूषण का कहना था कि परिवार के सब सदस्यों से राय तो ही लेनी चाहिए।

अगले दिन भूषण ने विनोद के काम पर जा कर मुन्शी को दिया कि विनोद को काम से हटा दिया गया है। उसका इस काम अब कोई सम्बन्ध नहीं है। मुन्शी को बकाया वेतन दे देने का आश्वासन दे दिया गया।

भगवतस्वरूप स्वयं विनोद के होटल पर गया। वह अभी सोकर नहीं उठा था। दरवाज़ा खटखटाया तो वह जागा और पिताजी को बाहर खड़ा देख कहने लगा, "तो आप आ गये हैं। पुलिस साथ लाए हैं क्या ?"

"मूर्ख ! भीतर चलो। मैं तुम को पकड़वाने नहीं आया।"

विनोद को भीतर ले जाकर पिता ने बैठाया और स्वयं उसके सामने बैठ पूछा, "कितना रुपया गबन किया है ?"

"दस हज़ार पाँच सौ अस्सी रुपये मैंने अपने एक काम में लगा लिये हैं। जब होंगे, दे दूँगा।"

"किस काम में लगाये हैं ?"

"मैंने दो मित्रों से मिलकर किला गूजरसिंह वाले मैदान में कार्निवल लगाया है। बीस दिसम्बर से वह चलेगा और एक महीने में आप का सब रुपया दे दूँगा।"

"कार्निवल ! अच्छा तो कौन कार्निवल में तुम भी पत्तीदार हो ? वहाँ जूआ होगा, लड़कियां नाचने को मिलेंगी और शराब पीने को मिलेगी। यही न ! विनोद ! यह तुमने अच्छा नहीं किया। देखो हमने निश्चय किया है कि आज से तुम कन्स्ट्रक्शन कम्पनी के काम से पृथक् कर दिये गए हो। रुपया जो तुमने अपने काम में लगा लिया है वापिस करोगे तो फिर तुम्हें पुनः काम पर लेने का विचार किया जा सकेगा।"

"कार्निवल के पश्चात् मुझको नौकरी करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"अच्छी बात। वहाँ काम पर मत जाना। अन्यथा तुम्हारा अपमान हो जावेगा।"

विनोद ने समझा कि अब वह कार्निवल के प्रबन्ध में सक्रिय भाग

उसने कहा, "तो तुम्हारे सामने उसने नलिनी को पीटा है। बहुत ही निर्लज्ज है।"

कला अपने कमरे में गई। उसको शोक और अपमानित किये जाने से भूख नहीं रही थी। इस कारण वह भोजन करने नहीं आई। नलिनी भी अपने कमरे से बाहर नहीं निकली।

आज दूसरी बार भगवतस्वरूप ने अपने बच्चों से विनोद की बात कहने में लज्जा अनुभव की। भोजनोपरान्त वह भूषण और सुरेश को अपने कमरे में ले गया और वहाँ बैठाकर उसने उनको बताया कि उसने पच्चू के हाथ विनोद को बुला भेजा था। वह नहीं आया। उसने यह भी बताया कि कला और नलिनी वहाँ गई थीं और उसने उन दोनों को पीटा है। वह अपने कमरे का दरवाजा बन्द कर एक लड़की के साथ बैठा था। मैं समझता हूँ कि कम्पनी के रुपये से गुलछर्रें उड़ा रहा है।"

"यह तो ठीक नहीं हुआ पिताजी! अब तो यह केवल मेरा और आपका धन नहीं है। यह पूर्ण परिवार के धन पर डाका है।"

"इसीसे तो आपसे राय लेना चाहता हूँ कि क्या करना चाहिये। मेरा मन तो करता है कि उसको पुलिस के हवाले कर दूँ।"

"नहीं पिता जी!" सुरेश का कहना था, "इससे बात और बिगड़ेगी। मेरी सम्मति है कि कल प्रातःकाल से उसको काम से पृथक कर दीजिए और उसको कहा जाये कि घाटा पूरा करे। मैं इस विषय को पुलिस और न्यायालय में ले जाना हितकर नहीं समझता। इससे हमारे कारोबार की बदनामी होगी।"

भूषण का कहना था कि परिवार के सब सदस्यों से राय तो कर ही लेनी चाहिए।

अगले दिन भूषण ने विनोद के काम पर जा कर मुन्शी को कह दिया कि विनोद को काम से हटा दिया गया है। उसका इस काम से अब कोई सम्बन्ध नहीं है। मुन्शी को बकाया वेतन दे देने का भी आश्वासन दे दिया गया।

भगवतस्वरूप स्वय विनोद के होटल पर गया। वह अभी सोकर नहीं उठा था। दरवाजा खटखटाया तो वह जागा और पिताजी को बाहर खड़ा देख कहने लगा, "तो आप आ गये हैं। पुलिस साथ लाए है क्या ?"

"मूर्ख! भीतर चलो। मै तुम को पकड़वाने नहीं आया।"

विनोद को भीतर ले जाकर पिता ने बैठाया और स्वय उसके सामने बैठ पूछा, "कितना रुपया गबन किया है ?"

"दस हजार पॉच सौ अस्सी रुपये मैने अपने एक काम में लगा लिये हैं। जब होगे, दे दूँगा।"

"किस काम मे लगाये है ?"

"मैने दो मित्रों से मिलकर किला गूजरसिंह वाले मैदान में कार्नि-वल लगाया है। बीस दिसम्बर से वह चलेगा और एक महीने में आप का सब रुपया दे दूँगा।"

"कार्निवल ? अच्छा तो कौन कार्निवल मे तुम भी पत्तीदार हो ? वहाँ जूआ होगा, लडकियां नाचने को मिलेंगी और शराब पीने को मिलेगी। यही न ? विनोद ! यह तुमने अच्छा नहीं किया। देखो हमने निश्चय किया है कि आज से तुम कन्स्ट्रक्शन कम्पनी के काम से पृथक् कर दिये गए हो। रुपया जो तुमने अपने काम मे लगा लिया है वापिस करोगे तो फिर तुम्हे पुनः काम पर लेने का विचार किया जा सकेगा।"

"कार्निवल के पश्चात् मुझको नौकरी करने की आवश्यकता नहीं रहेगी।"

"अच्छी बात। वहाँ काम पर मत जाना। अन्यथा तुम्हारा अप-मान हो जावेगा।"

विनोद ने समझा कि अब वह कार्निवल के प्रबन्ध मे सक्रिय भाग

ले सकेगा। उसको किसी अन्य स्थान पर कुछ भी काम नहीं था।

विनोद नित्य कार्निवल पर जाने लगा। रहीमबख्श का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। उसने बीसियों नौकर-चाकर रखे हुए थे और बीसियों अन्य दुकानदार और ठेकेदार काम कर रहे थे। ये सब लोग विनोद को आदर की दृष्टि से देखते थे परन्तु कोई भी उसको किसी प्रकार के खर्च तथा आमदनी की बात नहीं बताता था।

बीस दिसम्बर को कार्निवल खोल दिया गया। उस दिन दर्शकों की बहुत भीड-भाड़ थी। दोपहर से रात के बारह बजे तक आने-जाने वालों का ताता सा लगा था। चालीस हजार ने भीतर जाने का टिकट खरीदा। कौन्टर पर रुपयों का ढेर लग गया। विनोद की इच्छा थी कि उसमें से कुछ तो उसको मिल जाना चाहिए। उसने पीटर को एक ओर ले जाकर कहा, "खर्च किया हुआ रुपया पहिले अदा कर देना चाहिए।"

"यही तो कर रहे हैं। कल आप दिन के समय आ जाइये। सब आपके सम्मुख ही बाँट दिया जायेगा।"

अगले दिन प्रात: दस बजे लेनदार आये हुए थे। तम्बू कनातों वाले, बढई, राजगीर, नौकर, पुलिस वाले, म्युनिसिपैलिटी के जमादार, इन्स्पेक्टर इत्यादि सबको दिल खोलकर दिया गया। बारह बजे तक अडतीस हजार बाँट दिया गया।

इस प्रकार दिन के पीछे दिन में यही काम होता रहा। प्रतिदिन दो हजार पुलिस वालों को दिया जाता था। पाँच सौ म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों को। एक हजार के लगभग महकमा आबकारी वालों को, पाँच सौ के लगभग उन लड़कियों को जो नाचने वालों का साथ देती थीं। नित्य हिसाब देखा जाता। कभी पाँच-छ: सौ बच जाता, कभी कम पड जाता। ज्यू ज्यू दिन व्यतीत होते गये विनोद का सुख-स्वप्न विलीन होता गया। तीन सप्ताह के पश्चात् विनोद को यह पता चला कि केवल सात-आठ हजार बचा है। अब उसको यह आशा होने लगी

थी कि कर्ज लिया दस हज़ार एकत्रित हो जायेगा और वह अपने पिता का कर्जा उतार देगा।

डिप्टी कमिश्नर के समक्ष प्रार्थना की गई कि कार्निवल को एक मास तक और चलाने की स्वीकृति दी जाये। दुर्भाग्य से इस समय समाचार-पत्रों में कार्निवल की विशेषकर उसके नाच घर की निन्दा होने लगी। समाचार पत्रों का कहना था कि वह तो स्पष्ट रूप में वेश्यागार बना हुआ है। इस कारण डिप्टी कमिश्नर ने कार्निवल का और अधिक दिन चालू रखना उचित नहीं समझा। इकतीस जनवरी इस काम के लिए स्वीकृति की अन्तिम तिथि थी। इस दिन तो प्रारम्भ के दिन से भी अधिक भीड थी। आज विनोद कार्यालय में बैठा था। उसका विचार था कि कार्निवल के समाप्त होते ही वह लाभ में भाग मांगेगा। कम-से-कम वह दस हजार, जो उसने उधार दिया हुआ है, उसका कहना था कि उसको अवश्य मिलना ही चाहिए।

इस समय दूर सिनेमा हाल की ओर बहुत कोलाहल सुनाई दिया। विनोद ने बाहर आकर देखा तो उसको सिनेमा हाल जलता दिखाई दिया। भारी भगदड मच रही थी। लोग बेतहाशा भागते हुए दिखाई देने लगे। आग चारों ओर फैल रही थी। सिवाय चार-दीवारी के सब कुछ कपड़े और काठ का बना हुआ था।

विनोद कार्यालय में पहुँचा तो पीटर रुपयों को थैली में बन्द कर रहा था। वह उसके पास जाकर खड़ा हो गया। पीटर ने रुपया वहाँ से लेकर बाहर निकल जाना ही उचित समझा। उसने विनोद को कहा, "मैं करीम बख्श की प्रतीक्षा करता, परन्तु इस समय यहाँ ठहरना भय से रिक्त नहीं है। चलो चलें। घर चलकर देख लेंगे।"

परन्तु जाना इतना सुगम काम नहीं था। ज्यूँ ही वे कार्यालय से निकले कि भीड में फँस गये। विनोद पीटर से पृथक् हो गया और फिर वह उसको नहीं पा सका। देखते-देखते कार्निवल जलकर राख हो गया और कुछ नहीं बचा।

विनोद कार्निवल से बाहर तो निकल आया, परन्तु न तो उसको पीटर मिला और न ही करीम बख्श। जब कार्निवल जलकर राख हो गया तो वह पीटर के घर पहुँचा। वह वहाँ नहीं था। उसने समझा कि वह करीम बख्श के घर गया होगा। वह वहाँ गया तो उसको पता चला कि वह घर से दिन का निकला हुआ वापिस नहीं पहुँचा। विवश होकर वह अपने होटल मे आकर लेट रहा। अगले दिन प्रातःकाल समाचार-पत्रों मे कार्निवल मे आग का समाचार निकला। उसमें यह भी लिखा मिला कि कार्निवल के दोनों मालिक आग की लपेट मे आ गये। उनकी हड्डियाँ कार्यालय की राख ठण्डी हो जाने पर मिली हैं। इस समाचार को पढकर विनोद को बहुत भारी आघात पहुँचा। वह पलग पर लेट गया और उसमें उठने की हिम्मत नहीं रही।

अगले दिन होटल वालों को पता चला कि विनोद बीमार पडा है। उन्होंने उसको उठवाकर हस्पताल भेज दिया। विनोद ने अपने कार्निवल में भागीदार होने की बात किसी को नहीं बताई थी। इस कारण उसके बीमार होने की बात का कारण होटल में किसी को पता नहीं चला। भगवतस्वरूप और उसके घर वालों को तो उसके इस कारोबार का ज्ञान था। इस कारण उनको समाचार मे कार्निवल का अन्त पढकर बहुत चिन्ता लग गई। उनका विचार था कि विनोद उनके पास अपनी कठिनाई लेकर आयेगा, परन्तु जब वह नहीं आया तो उन्होंने नीडोज होटल से पता किया। वहाँ से उनको पता मिला कि वह बीमार होकर हस्पताल में पडा है।

इस समाचार को सुनकर नलिनी तो अन्यमनस्क भाव में बैठी रही। वह समझ नहीं सकी कि उसको क्या करना चाहिए। वह अभी तक अपने और कला के पीछे जाने को भूली नहीं थी। सबसे पहले भूषण को यह विचार आया कि हस्पताल जाकर पता करना चाहिए कि उसको क्या कष्ट है? उसको भय था कि कार्निवल की आग में वह घायल न हो गया हो। उसने मोटर निकाली और हस्पताल को चल दिया।

भूषण को यह देखकर अति विस्मय हुआ कि सुरेश और कमलेश वहाँ पहिले ही उपस्थित थे। जब उनको पता चला था कि विनोद हस्पताल में पड़ा है, हस्पताल के समीप होने से, उन्होंने यही उचित समझा कि उनको वहाँ जाना चाहिए और उसका समाचार लेना चाहिए।

भूषण और सुरेश ने देखा कि विनोद का मस्तिष्क पुनः खराब हो गया है। वे उसको प्राईवेट वार्ड में रखना चाहते थे, परन्तु उनको सन्देह हो रहा था कि कोई उसकी सेवा के लिए उसके पास आकर रहेगा अथवा नहीं। कला के पीटे जाने पर सब उससे रुष्ट थे।

जब वे घर आये तो उनको पता चला कि घर पर सब अनिश्चित मन थे। वे यह विचार कर रहे थे कि विनोद को हस्पताल में देखने जायें अथवा नहीं। भूषण ने विनोद की अवस्था का वर्णन किया और बताया कि जनरल वार्ड में वह रह नहीं सकेगा। हस्पताल के अधिकारी उसको पागलखाने में भेज देंगे। वह प्राईवेट वार्ड में रखने का प्रबन्ध कर आया है, परन्तु वहाँ जाकर उसकी सेवा के लिए रहेगा कौन?

सब एक दूसरे का मुख देखने लगे। भगवतस्वरूप ने कहा, "मेरे लिए विनोद मर चुका है।" ये वाक्य पिता के मुख से सुन सबके आँसू निकल पड़े। इस समय रात हो गई थी और कुछ किया नहीं जा सकता था। इस कारण सब अपने-अपने कमरे में जाकर सो रहे। कान्ता और कला विचार करती रहीं कि नलिनी को जाना चाहिए; परन्तु उनको भय था कि विनोद पागलपन में कहीं उसका अनिष्ट न कर दे। इस कारण उनको नलिनी से कुछ कहने का साहस नहीं होता था।

रात बिना किसी प्रकार का निर्णय हुए व्यतीत हो गई। भूषण तैयार होकर काम पर जाने के लिए मोटर निकालने चला तो उसकी माँ उसके साथ चल पड़ी। उसने भूषण से पूछा, "भूषण! किधर जा रहे हो?"

"मुझको हस्पताल छोड़ते जाओ।"

"तुम जाओगी माँ ? यदि उसने तुम पर हाथ उठा

"तो मार डालेगा न ? बस इतनी सी बात के लिए डूँ क्या ?"

"पिताजी से राय की है मा ?"

"उनसे पूछने की आवश्यकता नहीं।"

"तो चलो।"

अभी मोटर स्टार्ट हुई ही थी कि नलिनी आई और बैठ गई। भूषण ने उसको मना नहीं किया। वह मोटर गया। वहाँ विनोद को नींद लाने की औषधि दी गई थी अभी भी सो रहा था। भूषण ने डाक्टर से कहकर उसको प्र में ले जाने का प्रबन्ध कर दिया।

विनोद को हस्पताल में गये डेढ महीने से ऊपर हो गया पर भी वह अभी सर्वथा स्वस्थ नहीं हुआ था। वह अब झगड़ा नहीं करता था। इस पर भी वह अभी मस्तिष्क का कर सकता था। न तो दस-पन्द्रह मिनट से अधिक पुस्तक प था और न ही किसी विषय पर दो-चार मिनट से अधिक बात सकता था। वह बच्चों के साथ खेलकर प्रसन्न होता था।

डेढ महीने में एक हजार रुपया के लगभग व्यय कर वे वि घर ले आये। यहाँ वह अपने कमरे में पड़ा रहता था अथ कभी लान में घूम लेता था।

नलिनी उसकी सेवा-शुश्रूषा में लगी रहती थी। वह देख कि वह स्वयं और उसका पति परिवार पर बोझा रूप ही हैं। व में विचार करती थी कि उसको परिवार का एक उपयोगी अंग

रहना चाहिए।

एक रात विनोद के विषय में बात चल पड़ी। भूषण और सुरेश का कहना था कि जब तक परिवार में शक्ति है विनोद के बच्चों का पालन-पोषण होना ही चाहिए। इस बात पर तो सब सहमत थे। परन्तु मतभेद था विनोद के अपने विषय में। भगवतस्वरूप का कहना था विनोद का अब इस परिवार की कमाई में से कुछ भी लेने का अधिकार नहीं रहा। जो कुछ उसकी बीमारी पर व्यय हुआ है अथवा अब उसके निर्वाह पर खर्च होगा वह केवल दान-दक्षिणा के रूप में ही समझा जा सकता है। वह परिवार का एक आश्रित व्यक्ति ही हो सकता है, परन्तु वह परिवार का अंग नहीं हो सकता।

नलिनी इस बात का अर्थ समझती थी। विनोद परिवार के आश्रय पलने वाला एक अपाहज मात्र है। वह मन में विचार करती थी कि ठीक ही है। परिवार के मुखिया को सब सदस्यों के हितों की रक्षा करनी है, इस कारण उसको कहना पड़ रहा है।

नलिनी परिवार में अपनी स्थिति भी अनिश्चित पाती थी। उसके मन में कई बार यह प्रश्न उठता था कि वह क्या है और क्यों है ? नियम से तो उसको और उसके बच्चों को उस दिन ही परिवार से बाहर हो जाना चाहिए था, जिस दिन विनोद ने परिवार से पृथक् हो पाँच सौ रुपया मासिक वेतन स्वीकार किया था। उस समय एक बात थी कि विनोद के वेतन के साथ नलिनी का भी वेतन नियत हो गया था। उसको मिलने वाला डेढ़ सौ रुपया परिवार को मिलता था। अब तो वह बात भी नहीं रही थी। न विनोद का वेतन रहा था और न नलिनी का खर्चा। इस समय तो वह परिवार पर केवल बोझा मात्र रह गई थी। उसने पूछा, "पिताजी ! परिवार में मेरी स्थिति क्या है ?"

"तुम्हारी स्थिति एक परिवार के उस सदस्य की भाँति है, जिसका काम छूट गया हो और वह बेकार हो।"

"क्या परिवार को अपने एक सदस्य को बेकार पड़े रहने देना

उचित है ?"

"जब तक विनोद बीमार है, हम यह समझते हैं कि तुमको काम नहीं मिल रहा।"

"पर यह कब तक चल सकता है ?"

"जब तक परिवार के पास एक विवशता मे हो रहे बेकार सदस्य को खिलाने-पिलाने के लिए साधन है।"

"मुझको यह बात बहुत बुरी प्रतीत हो रही है।"

"बेकार रहना कोई अच्छी बात नहीं है, परन्तु जब मनुष्य विवश हो जाता है तो बुरी बातें भी करनी पड़ जाती हैं।"

नलिनी को यह देखकर अति लज्जा लगती थी कि उसका पति परिवार में एक बोझा बन रहा है और साथ ही अपने अपाहजपन मे उसको भी बेकार बनाये हुए है। उसने इस लज्जा की बात को कम-से-कम करने के लिए कटिंग का काम सीखना आरम्भ कर दिया और शीघ्र ही पहले बाल बच्चों के और अभ्यास हो जाने पर बड़ों के भी कपड़े घर सीने आरम्भ कर दिए।

विनोद स्थायी रूप से मस्तिष्क रोग का रोगी हो गया और डाक्टरों की सम्मति के अनुसार जीवन-भर के लिए अपाहज हो गया। इस पर भी उसके बच्चों का पालन-पोषण परिवार के अन्य बच्चों के साथ होता रहा।

सबको रेस कोर्स रोड की कोठी में आये हुए एक वर्ष हो चला था। नैशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी का काम भली भाँति चल रहा था। दूसरी ओर सुरेश की दुकान भी पर्याप्त लाभ दिखा रही थी। इस काल में रामप्यारी का विवाह सियालकोट के एक कपड़े के व्यापारी के पुत्र विश्वामित्र से हो गया। अब कमलेश के विवाह का प्रश्न परिवार के विचार का विषय बन गया।

कमलेश का जन्मदिन था। उस समय जहाँ उसके जीवन की अन्य बातों पर बातचीत हुई, वहाँ उसके विवाह का प्रश्न भी

विचाराधीन हो गया। भगवतस्वरूप ने उस दिन सायंकाल के भोजन के समय इस विषय पर चर्चा चला दी। उसने कहा, "कमलेश! तुम्हारे भाई तुम्हारे विवाह के विषय में कह रहे हैं। क्या चाहते हो तुम?"

कमलेश का मन इस बात के आरम्भ होने से अति प्रसन्न था। उसने तुरन्त कह दिया, "पिताजी! मैं वही चाहता हूँ जो कोई भी युवक इस विषय में चाहेगा।"

सब हँस पड़े। भगवतस्वरूप ने कहा, "तो यह निश्चय हुआ कि कमलेश के विवाह का प्रबन्ध किया जावे, परन्तु किससे?"

"इस पर सुरेश ने अपनी सम्मति, जो उसने कमलेश के कहने पर बनाई थी, कह दी। उसने कहा, "यदि किसी प्रकार की आपत्ति न हो तो हम शोभा को आपसे माँगते हैं।"

सब शोभा की ओर देखने लगे। वह आँखे नीचे किये बैठी थी। कला उसकी सहायता के लिए बोल उठी, "यदि घर के बड़े लोग इस बात को नपसन्द नहीं करते तो शोभा कैसे इन्कार कर सकती है।"

कान्ता ने व्यंग के भाव में कहा, "जैसे तुम इन्कार कर रही हो।"

"मेरी बात दूसरी है। मैंने संगीत से अपना नाता जोड रखा है।"

भगवतस्वरूप ने कला की सहायता करने के लिए कह दिया, इस समय प्रश्न तो कमलेश के विवाह का उपस्थित है। कला की बात करने की स्वीकृति मैं नहीं देता।"

कमलेश के शोभा से विवाह की बात में किसी को आपत्ति नहीं हुई और यह बात निश्चय हो गई। एक सप्ताह में विवाह की तिथि का निर्णय हो गया और विवाह उचित समारोह से हो गया।

इस विवाह के पश्चात् कमलेश के लिए परिवार की ओर से एक और कपड़े की दुकान लाहौर नगर के अन्दर 'बजाजे' में खुलवा दी गई।

समय व्यतीत होता गया और परिवार में वृद्धि होती गई। इससे

ऋद्धि-सिद्धि उपलब्ध होती गई।

परिवार की दो कपड़े की दुकानें चलती थीं। कमलेश की दुकान पर थोक का काम होता था और सुरेश की दुकान पर परचून का। नेशनल कन्स्ट्रक्शन कम्पनी ने लाहौर से बाहर दो शाखाएँ खोल दी थीं। एक बम्बई में और एक कलकत्ता में। अब तो यह कम्पनी करोड़ों रुपए के ठेके लेती थी। इसमें भूषण चीफ इन्जीनियर के रूप में काम करता था। विनोद का लड़का जोजफ जो अब यश के नाम से बुलाया जाता था, बम्बई शाखा का प्रबन्ध करता था और सुरेश का लड़का प्रदीप कलकत्ता की शाखा का। भूषण का लड़का सुमन एकौन्टैन्सी पास कर आया था और वह परिवार के पूर्ण कारोबार का हिसाब रखता था।

विनोद की लड़की प्रमिली का विवाह भारत सरकार के सेक्रेटेरिएट के एक अफसर से हो गया था और वह अपना दहेज लेकर परिवार छोड़ गई थी। सुरेश की लड़की देवकी का विवाह कलकत्ता में बसे एक पंजाबी युवक नरेन्द्र से हो गया और वह परिवार में सम्मिलित हो गया। वह कलकत्ता में बिसाती की दुकान करता था। इसी प्रकार परिवार के अन्य सदस्य जब आयु के हो जाते थे और किसी काम पर लग जाते थे तो उनके सामने परिवार से बाहर जाने की स्वतन्त्रता के विषय में नियम स्पष्ट कर दिये जाते थे। जो परिवार छोड़ना चाहते थे, उनको सहायतार्थ कुछ धन देकर स्वतन्त्र काम करने की स्वीकृति दे दी जाती थी और जो परिवार में सम्मिलित रहना चाहते थे उनके लिए स्थान बना दिया जाता था।

भगवतस्वरूप की अस्सीवीं वर्षगाँठ थी। इस समय उसकी उत्कट इच्छा थी कि इस अवसर पर पूर्ण परिवार को लाहौर बुला लिया जावे। वह आनन्द, जो वह अपने विवाह के तुरन्त पश्चात् अपने परिवार के एकमात्र सदस्य, अपनी धर्मपत्नी को भोजन के समय अपने समीप बैठाकर अनुभव करता था, वही भावना उसके मन में अब भी

विद्यमान थी। इसी भावना की प्रेरणा से ही उसने अपने पूर्ण परिवार को अपने जन्म-दिवस के दिन बुलाने की इच्छा प्रकट की थी।

सब परिवार के सदस्य, इस सरल चित्त वृद्ध, परिवार के पितामह को अपनी अस्सीवीं वर्षगाँठ के अवसर पर बधाई देने के लिये उसके चारों ओर एकत्रित हो गए। रेस कोर्स रोड वाली कोठी भी अब इस परिवार के निवास के लिए पर्याप्त नहीं थी और उनमें से कुछ के रहने के लिए लान में टेन्ट लगवा दिये गए थे।

सुशीला यद्यपि भगवतस्वरूप से आयु में छोटी थी, परन्तु देखने में वह अधिक वृद्धता को प्राप्त प्रतीत होती थी। उसकी कमर झुक गई थी और वह लाठी लेकर ही टहल सकती थी। भगवतस्वरूप अभी भी सीधा खड़ा होता था और अपने प्रतिद्वन्दी की आँखों में देखने की क्षमता रखता था।

इस अवसर पर परिवार के लोग जो यहाँ इस कोठी में एकत्रित हुए थे, वे संख्या में चालीस से ऊपर हो चुके थे। भगवतस्वरूप सुशीला के साथ लॉन में बैठा था और सब बाल-युवा-प्रौढ़ उसके चारों ओर बैठे उनसे हँसी-मज़ाक कर रहे थे। दोनों वृद्ध इसमें अतुल आनन्द अनुभव कर रहे थे। बच्चे जो भगवतस्वरूप के तथा सुशीला के चारों ओर उनसे सटकर बैठे हुए थे, भाँति-भाँति के अनर्गल प्रश्न पूछ रहे थे। कभी-कभी सब एकदम दस बातें पूछ लेते थे। भगवतस्वरूप हँस देता था और कह देता, "पहले यह निर्णय करो कि किसकी बात का उत्तर पहिले दूँ।"

"मेरी·· मेरी·· मेरी···।" मेरी सब कहने लगते। इस पर सब हँसने लगते।

"देखो। तुम सब यहाँ एकत्रित बैठे हुए हो और इस बात का अनुमान नहीं लगा सकते कि तुमको इस प्रकार एकत्रित रखने में मैंने क्या-क्या यत्न किया है। वे सब बताऊँ तो मैं समझता हूँ कि बताते-बताते सारी रात व्यतीत हो जायगी। इस कारण सब बातों को छोड़कर

केवल एक बात तुमको बताना चाहता हूँ। मेरे इतने बड़े होने का रहस्य केवल यह है कि जब मुझको पता चलता है कि मैंने कोई भूल की है तो मैं उसको सुधारने का यत्न करता हूँ। भूल सुधारने का सबसे सहज उपाय यह है कि अपनी भूल को छुपाने का यत्न न किया जाये, प्रत्युत जहाँ-जहाँ भी उचित हो उसको प्रकट कर सुधारने का यत्न किया करना चाहिये।"

बच्चों को इस शिक्षा का स्वाद नहीं आया और उनका जोश बाबा से बातें करने को टटा पड गया। एक ने तो यह कह ही दिया, "बाबा! हम में से यह तो किसी ने भी नहीं पूछा कि आपने कहाँ और क्यों भूल की है।"

"तो तुमने क्या पूछा था?"

"हमने पूछा था कि आपने अच्छा काम कौन किया है?"

"यही तो बताया है। मैंने अपनी भूलों को स्वीकार कर अपने जीवन का सबसे अच्छा काम किया है?"

"बस! यह तो कुछ भी नहीं।"

"तो तुम क्या सुनना चाहते हो?"

"आपने कला बूआ का विवाह क्यों नहीं किया?"

"यह भूल नहीं थी। मुझको इसका पश्चात्ताप कभी भी नहीं हुआ।"

"क्या लाभ हुआ है इससे?"

"यह तो तुम कला बूआ से पूछो। मैंने विवाह न कर भली बात यह की है कि उसकी इच्छा की पूर्ति में सहायक हुआ हूँ।"

"बूआ तो कहती थी कि उसका विवाह बाबा ने नहीं किया।"

"हाँ, मैंने नहीं किया। इस कारण कि उसकी ऐसी इच्छा थी।"

इस पर एक और ने पूछ लिया, "बाबा! तुम कब तक और जियोगे?"

"जब तक भगवान् की इच्छा होगी। मैं तो जाने के लिए तैयार

।" बैठा

"कहाँ जाओगे बाबा ?"

"जहाँ वह ले जाए।"

"तुम यहीं रह जाओ न ?"

"मुझको रखकर क्या करोगे ?"

"हम आपसे खेलेंगे।"

"बस ? यह तो कुछ भी नहीं।"

वास्तव में भगवतस्वरूप भी अनुभव करता था कि अब उसका कोई प्रयोजन नहीं रहा। इस रात वह बहुत देर तक अपने लडके-लडकियों, पोते-दुहितों और परपोतों से खेलता रहा। हँसी-मजाक करता रहा और उनको अपने लम्बे जीवन में से मजेदार बातें बताता रहा। जब सब सोने लगे तो वह भी उठा और अपने कमरे में सोने के लिए चला गया। मार्ग में सुशीला ने कहा, "आज तुम बातें ही करते रहे हो। खाया-पिया कुछ नहीं।"

"बहुत खा लिया है। पेट भरा हुआ मालूम होता है।"

वह अपने पलग पर जाकर लेट रहा। सुशीला कुछ देर तक उसके पास बैठी रही। पीछे अपने पलंग पर जा लेटी।

प्रातःकाल सुशीला उठी तो नियम विरुद्ध भगवतस्वरूप अभी भी सो रहा था।

सुशीला ने आवाज दी, "आज उठियेगा नहीं ?"

कोई उत्तर नहीं मिला। इस पर वह भगवतस्वरूप के पलग के समीप आ उसको उठाने के लिए हिलाने लगी, परन्तु उसका शरीर अकड चुका था। उसने प्रकाश किया तो उसको ऐसा प्रतीत हुआ कि वह आँखें मूँदे हुए मुस्करा रहा है। वह सब कुछ समझ गई।

* समाप्त *